3-1

स्वप्न-दर्शन

(स्वप्नावस्थाका मनोविज्ञान)

लेखक

राजाराम शास्त्री

प्रोफ़ेसर मनोविज्ञान तथा समाजविज्ञान

काशी विद्यापीठ

भूमिका-लेखक

श्री सम्पूर्णानन्द

प्रकाशक

काशी विद्यापीठ, बनारस

351

समर्पण

श्रद्धेय गुरुवर

डा० भगवान्‌दासजीको

जिन्होंने मुझे दृष्टिदान दिया

विषय-सूची

विषय			पृष्ठ
समर्पण, भूमिका	...	...	आदि में
आरम्भ	...	...	क से ड तक
पहला अध्याय—स्वप्नका स्वरूप	...	...	१
दूसरा अध्याय—स्वप्नकी कार्य प्रणाली		...	२१
—स्वप्नकी दृश्यात्मक वृत्ति		...	३१
तीसरा अध्याय—स्वप्न और प्रतीक ...		...	४९
—विनियोग, अनुयोजना		...	८७
चौथा अध्याय—भयानक स्वप्नकी समस्या		...	९१
पाँचवां अध्याय—स्वप्नके शारीरिक तथा मानसिक निमित्त			११७
छठवां अध्याय—अतीन्द्रिय स्वप्न			१३२
—स्वप्नमें दिव्य दृष्टि		...	१४२
सातवां अध्याय—रचनात्मक स्वप्न		...	१४८
आठवां अध्याय—सामान्य स्वप्न		...	१६७
नवां अध्याय—रोगभावि स्वप्न		...	१९२
ग्रन्थ सूची	...	...	२१७
पर्याय सूची	...	...	२१८

भूमिका

स्वप्न-दर्शनके सम्बन्धमें पुस्तक लिखकर श्री राजाराम शास्त्रीने गम्भीर विषयोंके जिज्ञासुओंपर बड़ा उपकार किया है। तुरीयावस्था योगशास्त्रका विषय है, इसलिए यह कह सकते हैं कि संस्कृतके योगसम्बन्धी वाङ्मयके अनुवादके रूपमें हिन्दीमें भी इस असाधारण अवस्थाके विषयमें यत्किञ्चित् पाठ्य सामग्री मिल जाती है। कुछ स्वतंत्र रचनाएँ भी हैं। इनके अतिरिक्त अरविन्द घोष जैसे साधकोंकी अंग्रेजी रचनाओंके थोड़े बहुत अनुवाद भी हो गये हैं। यद्यपि यह साहित्य स्वतः मनोविज्ञानका निरूपण नहीं करता, फिर भी तुरीयावस्थाके वैज्ञानिक अध्ययनके लिए सामग्री तो प्रदान करता ही है। जाग्रत् अवस्थाका अध्ययन कुछ तो न्यायवेदान्तादि दर्शन ग्रन्थोंमें हो सकता है, कुछ उन पुस्तकोंमें उपलब्ध है जो पाश्चात्य विद्वानोंकी रचनाओंके आधारपर लिखी गयी हैं। सुषुप्ति अवस्थामें चित्त-निरुद्ध तो नहीं हो जाता फिर भी निश्चेष्ट रहता है। वह अवस्था साधारण बोलचालमें अनुभूतिशब्दवाच्य भी नहीं कही जा सकती। इसलिए तद्विषयक अध्ययन सामग्री प्रभूतमात्रामें कहीं भी नहीं मिलती।

तीसरी अवस्था स्वप्न है। यह तुरीयकी भांति असाधारण अर्थात् थोड़ेसे मनुष्योंके यत्नसाध्य अनुभवका विषय नहीं है।

कुछ लोगोंको, जो वायुप्रधान प्रकृतिवाले कहे जाते हैं, स्वप्न अधिक देख पड़ते हैं। परन्तु ऐसा स्यात् ही कोई मनुष्य होगा जिसने कभी स्वप्न न देखा हो। कुछ स्वप्नोंका कारण तो इतना सीधा है कि उनके विषयमें विशेष जिज्ञासा नहीं होती। अजीर्ण या अन्य व्यतिक्रमके कारण मस्तिष्कके क्षुब्ध होनेपर जाग्रत्की कुछ अनुभूतियां न्यूनाधिक उसी रूपमें दुहरा दी जाती हैं। इनकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं देता। विद्वानोंमें प्रचलित शब्दावलीसे अपरिचित व्यक्ति भी इनके तत्वको बहुत कुछ समझ लेता है। परन्तु सब स्वप्न एकसे नहीं होते। ऐसे भी स्वप्न होते हैं जिनको पेटके विकार जैसे सुबोध कारणोंका नाम लेकर नहीं समझा जा सकता। ऐसे अपेक्षया दुर्बोध स्वप्नोंका चर्चा राजारामजीने अतीन्द्रिय स्वप्नोंके नामसे किया है। ऐसे स्वप्नोंको समझनेकी चेष्टा मनुष्य बराबर करता रहा है। स्वप्नोंसे रोगोंके निदानमें तो सहायता ली ही गयी है, उनके भीतर भविष्यत्की सूचना भी ढूंढ़ी जाती है। संस्कृतमें भी इसका विस्तृत वाङ्मय है।

अब तक पाश्चात्य विद्वानोंने स्वप्नकालीन चित्तके अध्ययनकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया था, इसलिए भारतमें भी इस सम्बन्धमें कुछ विचार करना सभ्यसमाजमें प्रशस्य नहीं समझा जाता था। फ्रायड और उनके अनुयायियोंने स्वप्नमीमांसाको भी शिष्ट शास्त्रोंमें स्थान दिया है। भारतमें भी इस ओर अभिरुचि बढ़ी है। प्रस्तुत पुस्तकमें राजारामजीने अब तककी पाश्चात्य खोजको हिन्दी पढ़नेवालोंके लिए सुलभ कर दिया है। उनके पाठकोंको इतना तो विदित हो जायगा कि यह विषय गम्भीर अध्ययनके योग्य है। मैं आशा करता हूं कि मनोविज्ञानके प्रेमी कमसे कम दो बातोंकी ओर शीघ्रही ध्यान देंगे। एक तो वह इस

पर विचार करेंगे कि नव्य मनोविज्ञानकी अँधेरी काठरियोंमें पुनर्जन्मवाद कहां तक प्रकाश पहुँचा सकता है। दूसरे, भारतीय स्वप्न मीमांसाकी प्रयोगात्मक परीक्षाकी जायगी।

राजारामजी चाहते हैं कि मैं दो शब्द उन असाधारण स्वप्नोंके सम्बन्धमें लिखूं जिनको सुगमतासे इच्छापूरक कोटिमें नहीं रक्खा जा सकता तथा जिनसे अनागतकी सूचना मिलती है। यदि दूर रहते हुए एक मनुष्यका प्रज्ञान दूसरेके मस्तिष्कमें संक्रमण कर जाता है तो यह हग्विषय भी जल्दीसे समझमें नहीं आता।

आरम्भमें ही मैं यह कह देना चाहता हूं कि किसी भी स्वप्नको वस्तुतः अतीन्द्रिय नहीं कहा जा सकता। स्वप्न देखा जाता है; जो लोग आँखें खो बैठते हैं, वह भी ज्योंका त्यों स्वप्न देखते हैं। देखना चक्षुरिन्द्रियका काम है, अतः बाहरी अधिष्टान, आंख के निष्क्रिय होते हुए भी स्वप्नकी अवस्थामें यह इन्द्रिय काम करती है।

प्राचीन आचार्य्योंने स्वप्नके सम्बन्धमें जो विचार किये हैं उनका दिग्दर्शन वृहदारण्यक उपनिषद्के कुछ अंशोंसे अच्छा होता है। चतुर्थ अध्यायके तृतीय ब्राह्मणके दशम मंत्रमें यह कहा गया है कि आत्मा स्वप्नावस्थामें स्वयं भोग सामग्रीकी सृष्टि कर लेता है, वस्तुतः वह रथादि सत्ता नहीं रखते। फिर ग्यारहवें मंत्रमें यह बतलाया गया है कि यह सृष्टि किस प्रकार होती है। याज्ञवल्क्य कहते हैं;

स्वप्नेनशारीरमभिप्रहत्यासुप्तः सुप्तानभिचाकशीति।
शुक्रमादायपुनरैति स्थानं हिरण्मयः पुरुष एकहंसः॥

(आत्मा स्वप्नके द्वारा शरीरको निश्चेष्ट कर स्वयं न सोता

हुआ समस्त पदार्थोंको प्रकाशित करता है। वह शुद्ध इन्द्रिय मात्रा रूपको लेकर पुनः जागरित-स्थानमें आता है। हिरण्मय (ज्योतिस्वरूप) पुरुष अकेला ही (दोनों स्थानों अर्थात् जागरित और स्वप्नमें) जानेवाला है।

इसपर शङ्कराचार्य्य यों भाष्य करते हैं: स्वप्नेन स्वप्नभावेन, शारीरं शरीरम् अभिप्रहत्य निश्चेष्टमापाद्य, असुप्तः स्वयमलुप्तदृगादिशक्तिस्वाभाव्यात्, सुप्तान् वासनाकारोद्भूतान्तः करणवृत्त्याश्रयान्, वाह्याध्यात्मिकान् सर्वानेवभावान् स्वेनरूपेण प्रत्यस्तमितान् सुप्तान् अभिचाकशीति अलुप्तया आत्मदृष्ट्या पश्यत्यवभासयतीत्यर्थः। शुक्रं शुद्धं ज्योतिष्मदिन्द्रियमात्रारूपम् आदाय गृहीत्वा, पुनः कर्मणे जागरितस्थानम्, ऐति आगच्छति इत्यादि। अर्थात् स्वप्नभावसे शरीरको निश्चेष्ट कर स्वयं अलुप्तज्ञानादि शक्ति स्वरूप होनेके कारण असुप्त रहकर सुप्त अर्थात् वासनारूपसे उद्भूत अन्तः करण वृत्तिके आश्रित वाह्य और आध्यात्मिक सभी भावोंको, जो अपने स्वरूपसे प्रत्यस्तमित, अर्थात् सोये रहते हैं, प्रकाशित करता है। तात्पर्य्य यह है कि उन्हें अपनी अलुप्त आत्मदृष्टिसे देखता अर्थात् अवभासित करता है। तथा शुद्ध ज्योतिष्मान् इन्द्रियमात्रारूपको ग्रहण कर वह पुनः कर्म अर्थात् जागरितस्थानमें आ जाता है।

इसका तात्पर्य्य यह है कि स्वप्नावस्थामें जीव (अन्तःकरण युक्त आत्माकी जीव संज्ञा है) मनोमयकोशसे मुख्यतया वेष्टित रहता है। सांस चलती रहती है, साधारण सात्विक क्रियाएँभी होती रहती हैं, क्योंकि इन क्रियाओंका संयमन प्राणोंसे ही होता है, परन्तु जिस प्रकार कछुआ अपने अंगोंको सिकोड़ लेता है उसी प्रकार जीव अपनेको मनोमय कोशमें समेट सा लेता है। इस

लिए न तो ज्ञानतन्तु बुद्धिको क्षुब्ध कर पाते हैं, न क्रिया तन्तुओं को बुद्धि प्रेरित करती है। अतः शरीर निश्चेष्ट पड़ा रहता है। प्रज्ञानों अर्थात् विविध प्रकारकी अनुभूतियोंका ही नाम चित्त है। चूंकि बाह्य जगतसे सम्बन्ध विछिन्न हो जाता है इसलिए संवित् नहीं होते, ऊहापोह नहीं होता; स्थूल रूपसे यों कह सकते हैं कि जाग्रत् अवस्था वाले जगत्के सम्बन्धमें कोई नयी अनुभूति नहीं होती। तो फिर उस समय जीव पुरानी अनुभूतियोंके संस्कारों-के बीचमें रहता है। यह संस्कारतो अनेक जन्मोंसे अर्जित हैं। सब तुल्यबल नहीं होते, सबका एक साथ साक्षात्कार नहीं होता। यों कह सकते हैं कि सब स्मृतियां एक साथ नहीं जागतीं। जो संस्कार प्रबल होते हैं उनसे संबन्ध रखनेवाली वासनाएंभी प्रबल होती हैं। इन्हीं वासनाओंके अनुरूप बाह्य और आध्यात्मिक जगत्की रचना होती है अर्थात् जीव स्वप्नावस्थामें ऐसे जगत्की सृष्टि करता है जिसमें उसकी प्रबुद्ध वासनाओंकी तृप्ति होसके। तृप्तिके अनुकूल बाह्य उपकरण घर, संवारी, धन, कलत्र, सन्तान तथा आध्यात्मिक उपकरण वात्सल्य, क्रोध, शोक आदि आविर्भूत होते हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि शाङ्कर वेदान्तके अनुसार विश्व अर्थात् जाग्रत् अवस्थाका जगत्भी मनोराज्य है, अन्तःकरणकी सृष्टि है। उसकी रचनाभी वासनाओंकी तृप्तिके लिए होती है। किस समय कौनसी वासना प्रबुद्ध होगी, वासनाओंके संघर्षसे कौनसी वासना प्रसुप्त, कौनसी तनु, कौनसी उदार अर्थात् पूर्ण रूपसे उद्बुद्ध होगी, यह जीवके संस्कारादि पर निर्भर करता है। यहाँ उसका विस्तृत विवेचन अप्रासङ्गिक और अनावश्यक होगा। अस्तु, वासनाओं, अनुभूतियों और संस्कारोंका आकर चित्त एकही है इसलिए यह स्वाभाविक है कि वह वासनाओंकी तृप्तिके लिए जिन जगतोंका निर्माण करे वह एक दूसरेके सदृश

हों। जागरितावस्थाकी अपेक्षा स्वप्नावस्था अल्पकालीना होती है, इसलिए स्वप्न जगत्का जागरित जगत्की अनुकृति होना अनन्यगतिक है। जिस प्रकार जीव स्वप्नावस्थामें प्रवेश करता है उसी प्रकार इन्द्रियमात्राओंको लिए हुए लौट कर जागरित अवस्थामें पुनः प्रवेश करता है और शरीर व्यापार फिर चलने लगता है। यह बात तर्कसंगत है कि जो वासनाएं किसी कारण जाग्रत् अवस्थामें तृप्त नहीं होसकती होंगी उन्हींकी तुष्टिके लिए स्वप्न जगत्की सृष्टिकी जाती होगी।

यदि विचार किया जाय तो यह बात निर्विवाद रूपसे सिद्ध होती है कि इस मंत्रमें जो कुछ संकेतमें कहा गया है उसीकी व्याख्या फ्रायड आदि पाश्चात्य विद्वानोंने की है। थोड़ेसे शब्दों में यहां उन सब स्वप्नोंकी मीमांसा की गयी है जो इच्छापूरक बतलाये जाते हैं। वासनाके वास्तविक या कल्पित आघातसे ही भय, क्रोध आदि भावोंका जन्म होता है। शास्त्रीय दृष्टिसे यह सब वासनाके अन्तर्गत है। सच पूछिये तो इच्छाकी अपेक्षा वासना कहीं अच्छा शब्द है।

इसके बादवाले मन्त्रमें एक दूसरे प्रकारके स्वप्नका वर्णन है।

> प्राणेन रक्षन्नवरं कुलायं बहिष्कुलायादमृतश्चरित्वा ।
> स ईयतेऽमृतो यत्र कामं हिरण्मयः पुरुष एक हंसः ॥

(इस निकृष्टशरीरकी प्राणसे रक्षा करता हुआ वह अमृतधर्म्मा शरीरसे बाहर विचरता है। वह अकेला विचरनेवाला हिरण्मय अमृत पुरुष जहां काम (वासना) होता है, वहां जाता है।)

इस स्वप्नकी अवस्थामें भी शरीर निश्चेष्ट पड़ा रहता है, परन्तु प्राणके नियंत्रणमें पाचनादि सात्विक क्रियाएं होती रहती हैं।

जीव अपनी वासनाओंकी प्रेरणासे इस निकृष्ट शरीरके वाहर विचरता है और वासना जहां लेजाती है वहां जाता है। यहां पर 'जाना' और उसके पर्य्याय 'शरीरके वाहर विचरना' का प्रयोग दो अर्थोंमें हुआ है। साधारणतः दिक् प्रदेश पार करके स्थानसे स्थानान्तर पर पहुँचनेको जाना कहते हैं। यदि किसी स्थल या घटना या व्यक्ति विशेषके प्रति वहुत उत्कट वासनाहो तो इस प्रकारका गमनभी संभव है। यह गमन लिङ्ग शरीरसे होगा, लिंग शरीर सूक्ष्म भूतोंका वना होता है, इसलिए उसका वेग तीव्र होता है, लम्बी दूरीको जल्दी पार करता है। लिंग शरीर स्थूल शरीरका समाकार होता है। उसमें इन्द्रियाँ होती हैं, इसलिए देख सुन सकता है। लिंग शरीर वाहर निकल कर भी स्थूल शरीरका नियन्त्रण करता रहता है। परन्तु कभी ऐसा हो सकता है कि पुनः स्थूल शरीरमें प्रवेश न कर सके। यदि स्वप्न देखने वालेको जोरसे हिलाडुला दिया जाय और उस समय उसका लिंग शरीर वाहरहो तो प्राणकी डोरके टूट जानेकी आशंका होती है। यदि ऐसा हुआ तो मृत्युहो जायगी। स्पप्नद्रष्टाको धीरेसे ही जगाना चाहिये। वासना प्रेरित जीव सुदूर देश या कालान्तरमें घटने वाली घटनाकी लिंग शरीरमें प्राप्त अनुभूतिके संस्कारको जब स्थूल देहके मस्तिष्कमें उतारता है तो स्वप्न देख पड़ता है।

किसी किसी अवस्थामें लिंग शरीरसे काम लेना अनिवार्य हो जाता है। यदि किसी सद्योमृत (तत्काल मरे) प्राणीका चित्त किसीके प्रति उत्कट रूपसे लगा है तो वह लिंग शरीरसे ही उसके पास पहुंच सकता है। पहुंचनेमें देर भी नहीं लगती। वहां पहुंच कर वह या तो उसको जाग्रत् अवस्थामें ही छाया रूपसे देख पड़ जायगा या उसके सोते मस्तिष्कको प्रभावित करके

स्वप्नमें प्रकट होगा। छायारूपता इसलिए होती है कि सूक्ष्मभूत सामान्यतः आंखके विषय नहीं हैं। इसका एक कारण यह है कि उनके झीनेपन के कारण प्रकाश उनके पार निकल जाता है। ऐसी अवस्थाओंमें मरनेवाला अपने निधनकी तात्कालिक सूचना दे देता है।

लिंग शरीरके बाहर गये विनाभी व्यवहित विषयोंका ज्ञान हो सकता है। गमन शब्द यहां इस अर्थमें भी आया है। इन्द्रियोंकी शक्ति अपार है परन्तु स्थूल शरीर उनको कैद किये रहता है। उनसे पूरा काम नहीं लेने देता। इसीलिए मंत्रने उसे अवर-अधम, निकृष्ट कहा है। जाग्रत् जगत्के व्यवहारके लिए यह ठीकभी है। यदि हम प्रतिपल एक दूसरेके देहके भीतरकी क्रियाओंको देखते और एक दूसरेकी धीरेसे कही बातोंका सुनते रहें तो जीना दूभर हो जाय। परन्तु इस देहसे सम्बन्ध खींच लेनेपर इन्द्रियोंका बन्धन दूर हो जाता है। उनके लिए भौतिक जगत्में कुछभी अगम्य नहीं रहता। योगी इन्द्रियोंको शरीरसे खींचनेकी कला जानता है। उसको प्रातिभ श्रवण और दर्शन-दूरकी वस्तुको सुनना और देखना-सिद्धहो जाता है। योगकी प्राथमिक श्रेणीका अभ्यासीभी जैसी अनुभूतियोंको प्राप्त करता है वैसी दूसरोंके लिए अलभ्य हैं। अस्तु, तो जो काम योगी अभ्यासके द्वारा करता है, उसे कभी कभी तीव्र वासना सुकर बना देती है। जहां चित्त लगा होता है वहांका प्रत्यक्षहो जाता है। कभी कभी बहुत तीव्र आकुलताकी दशामें जाग्रत् अवस्थामें भी क्षण भरके लिए ऐसाहो सकता है। उस समय देश कालके व्यवधान हट से जाते हैं और ऐसी बातोंकी झलक देख पड़ जाती है जिनके अस्तित्वका कोई अनुमानभी नहीं होता। शरीरके बाहर जाकर, अर्थात् शरीरके बन्धनसे

छूट कर, इन्द्रियोंको वासना जहां लेजाती है वहांका ज्ञान होता है, उसको हम स्वप्नमें अवगत करते हैं। ऐसेही स्वप्न प्रायः सच्चे निकलते हैं। स्वप्न होता है चित्तको ही। वह अपनी स्वप्नकालीन अनुभूतियोंके साथ जाग्रत् कालीन अनुभूतियोंके संस्कारों (या स्मृतियों) को कभी कभी इस प्रकार मिला देता है कि मुख्य बात दब जाती है और स्वप्न सूचक रूपको छोड़कर जाग्रतकी स्मृतियोंका अर्थहीन संमिश्रणमात्र रह जाता है।

एक मत यह है कि इस प्रकारके घटना सूचक स्वप्न विचार-निक्षेपसे उत्पन्न होते हैं अर्थात् एक मनुष्यके प्रज्ञान किसी दूसरे ऐसे मनुष्यके चित्तमें, जिसकी ओर उसका बहुत तीव्र झुकाव हो, किसी प्रकार प्रवेश कर जाते हैं। इस प्रकार यह दूसरा मनुष्य पहिलेकी मानस, और तत्सम्बन्धी दैहिक, स्थितियोंका साक्षी हो जाता है। किसी दूसरेको अपने जैसा सोचने या अपनी इच्छाके अनुसार सोचनेपर विवश करना सरल नहीं है। यह काम या तो साधक कर सकता है या विशेष अवस्थाओंमें लिंग शरीरस्थ प्रेतात्मा। प्रक्रिया यह है कि जिसको प्रभावित करना हो उसके नाड़िसंस्थानको विशेष प्रकारसे क्षुब्ध किया जाय। सुषुम्नासे लेकर मस्तिष्क तक का नाड़ि संस्थान तो सूक्ष्म तन्तुमय वीणा है। उसके तारों पर जैसा दबाव डालिये वैसा स्वर निकलेगा, वैसी अनुभूतियाँ होंगी। इसीलिए तो योगी आसन प्राणायाम धारणाके द्वारा उसको अक्षुब्ध करना चाहता है। जिसको इस बातका ज्ञान है कि कैसे आघातसे कैसा प्रज्ञान उत्पन्न होता है वह नाड़िजाल पर वैसाही आघात करेगा। चित्त अपना हो या पराया वह शरीरको किस प्रकार प्रभावित कर सकता है इसका उत्तर भारतीय दर्शन ही दे सकता है। यदि चित्त और शरीर सर्वथा विजातीय होते तो एक दूसरे पर क्रिया

प्रतिक्रिया करना कठिन होता परन्तु यहां यह अड़चन नहीं पड़ती। चित्त और महाभूत, जिनसे शरीर और उसके नाड़ि आदि सभी अवयवोंका निर्माण हुआ है, दोनों ही मूल प्रकृतिकी विकृतियां हैं। मूल प्रकृति त्रिगुणात्मक है अतः चित्त और शरीर दोनों ही त्रिगुणात्मक हैं। ऐसी अवस्थामें एक दूसरेसे प्रभावित होना पूर्णतया सुबोध है।

जो बात साधक सङ्कल्पपूर्वक करता है वही गम्भीर वेदनाकी अवस्थामें, किसी वासनाके तीव्र उद्बोधकी दशा में कभी कभी अनायास हो जाती है। जिस समय अपने जीवनकी कोई असाधारण घटना घट रही हो यदि उस समय अपनेसे सम्बद्ध किसी व्यक्तिमें मन इस प्रकार लगा हो कि उसका विचार चित्तमें अनन्य स्थान करले तो निश्चयही उस दूसरेका नाड़ि-संस्थान और फिर चित्त प्रभावित होगा। यह बात जागरित अवस्थामें भी हो सकती है, परन्तु जिस समय बाह्य जगत्से सम्पर्क छूट जाता है, आघातोंकी मात्रा कम हो जाती है, उस समय नाड़ियां जल्दी क्षुब्धकी जासकती हैं। इसी लिए स्वप्न होते हैं।

चित्त और शरीर सजातीय हों या विजातीय, परन्तु एक का चित्त दूसरेके शरीरसे दिग्दृष्टया दूर होता है। तब प्रश्न होता है कि दूरी डाँक कर एकका प्रभाव दूसरे पर कैसे पड़ सकता है। विज्ञान वेत्ता कहते हैं कि प्रभावके पहुंचनेके लिए माध्यम होना चाहिये, कोई ऐसा पदार्थ होना चाहिये जो दोनों को मिलाता हो। यह आक्षेप ठीक है। परन्तु यहां माध्यम है। प्रकृतिके अपारसमुद्रमें चित्त और शरीर रूपी असंख्य बुद्बुद हैं। मूल प्रकृतितत्त्व इन न्यूनाधिक घनीभूत त्रिगुण पुञ्जोंमें भीतर बाहर ओतप्रोत है। त्रिगुण समुद्रके विन्दु एक दूसरेसे

नित्य सम्बद्ध हैं अतः एक दूसरेको नोदित करनेका माध्यम तो सतत विद्यमान है।

किसीभी चित्तमें प्रज्ञान रूपी जो स्फुरण होता है वह सभी नाड़िसंस्थानोंको उद्वेलित करता है परन्तु विशेष कारणोंसे कोई विशेष मस्तिष्क अधिक ग्रहणोन्मुख होता है वही प्रभावित होता है।

इस निरूपणसे एक बात और निकलती है। सजातीय होनेसे मस्तिष्कको बीचमें डाले बिना भी चित्त चित्तान्तरको प्रभावित कर सकता होगा। यह निष्पत्ति यथार्थ है। एक चित्तसे उठी लहर दूसरे चित्तसे टकरा सकती है। ऊँचे कोटिके योगियों में तो ऐसा होना अनिवार्य्य भी है। जो प्रतिलोम क्रमसे ऐसे पद तक पहुंच गया हो जहां मन आदि अहंकारमें विलीन हो जाते हैं उसे मस्तिष्ककी अपेक्षा नहीं रहती। ज्ञानका यह आदान प्रदान सचमुच अतीन्द्रिय है। उस अवस्थामें स्वप्नका प्रश्न उठता ही नहीं क्योंकि स्वप्नके साधनोंका तिरोभाव हो गया होता है। यह कहना अनावश्यक है कि यह अनुभूति तुरीयावस्थाकी है और बहुत ऊँचे योगियोंको ही उपलब्ध होती है।

राजारामजीके अनुरोधसे मैंने स्वप्नशास्त्रके एक अंगका यथामति संक्षेपमें निरूपण किया है। यह नहीं कह सकता कि इससे किसीकी शंकाओंकी निवृत्ति होगी या नहीं।

एक बात समझ लेनी चाहिये। चित्त एकही है। उसीसे जागरित अवस्थामें व्यापार किया जाता है, उसीको लेकर स्वप्न और सुषुप्तिका अतिक्रमण करके समाधिकी भूमिकाओंमें प्रवेश किया जाता है। इसलिए इन सब अवस्थाओंमें और इनकी

अनुभूतियोंमें पारम्पर्य्य, तारतम्यतया सम्बन्ध है। जाग्रद्विषयक मनोविज्ञान तुरीयावस्थाको समझनेमें सहायक होता है। इसी प्रकार योगशास्त्र अर्थात् तुरीयावस्थाकी अनुभूतियोंकी मीमांसाके प्रकाशमें ही जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिके चैत्तव्यापार पूर्णतया समझमें आ सकते हैं। यदि स्वप्नोंका अध्ययन करना है—और इसमें सन्देह नहीं कि यह अध्ययन बहुत आवश्यक है—तो इस अध्ययनको दूसरी अवस्थाओंसे सम्बन्ध रखने वाले विज्ञानके साथ मिलाने और सम्बद्ध करनेसे ही परिज्ञान-पूरा ज्ञान-प्राप्त होगा और इस ज्ञानका कल्याणकारी उपयोग हो सकेगा।

वसन्तपञ्चमी
२००४

सम्पूर्णानन्द

आरम्भ

अपने इतिहास और पुराणके आदिम कालसे ही मनुष्य स्वप्न देखता और उनके बारेमें कहता आ रहा है। उसी कालसे स्वप्नोंका तात्पर्य बतानेवाले भी विद्यमान रहे हैं। स्वप्न सदासे मनुष्यकी गहरी अभिरुचिका विषय रहा है। समस्त मानव-जातिके आदिम साहित्यमें इसकी चर्चा मिलती है और आधुनिक कालके साहित्यमें तो इसपर निरन्तर अधिकाधिक ध्यान दिया जा रहा है।

स्वप्नोंने सदासे मनुष्यकी जिज्ञासा और आश्चर्यको उत्तेजित किया है। और इसमें सन्देह नहीं कि मानव-जातिके गम्भीरतम और व्यापकतम विश्वासोंके निर्माणमें इनका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। मानव-जातिकी बाल्यावस्थामें एक अत्यन्त कठिन समस्या अवश्य ही यह रही होगी कि वह जाग्रत् जीवनके अनुभवोंका किस प्रकार निद्राकालीन अनुभवोंसे विवेक करे और अनेक जातियोंमें यह विवेक अपूर्ण ही है, और कभी-कभी हम लोगोंमें भी अपूर्ण ही रहता है। मनुष्यमें इहलोकके अतिरिक्त एक दूसरे आध्यात्मिक जगत्का विश्वास उत्पन्न करनेमें इन निद्राकालीन घटनाओंका यदि मुख्य नहीं, तो एक बड़ा भाग है। इतना ही नहीं, उसे वह रहस्यानुभूति प्रदान करनेमें भी अवश्य ही इनका एक बड़ा भाग रहा होगा जो कि सामान्य रूपसे धर्म भावनाकी विशेषता है।

आरम्भिक कालसे ही यह विश्वास चला आ रहा है कि स्वप्न निद्राकालकी कोई आकस्मिक घटना नहीं है, बल्कि वह निश्चित अर्थ रखता है। आदिम साहित्यमें स्वप्नोंकी व्याख्या बहुत ही प्रमुख स्थान रखती थी। पुरानी बाइबिलमें असंदिग्ध रूपसे यह मान लिया गया है कि 'फारा' और उनके नौकरोंके स्वप्न तथा इसी प्रकारके अन्य स्वप्न निश्चित अर्थ रखते हैं। प्रायः सभी जातियोंमें स्वप्न-मीमांसा की निश्चित पद्धतियाँ उत्पन्न हुई, जिनके अनुसार प्रत्येक स्वप्नचित्रका एक विशेष अर्थ होता था और प्रायः सभीके साहित्यमें, जिसमें हमारा साहित्य भी शामिल है,ऐसे स्वप्न-ग्रन्थ हैं जिनमें ये अर्थ दिये हुए हैं। जब कि 'फारा' के पण्डित लोग उसके उन स्वप्नों-का अर्थ जिनमें उसने सात मोटी और सात दुबली गायोंको तथा अनाजकी सात भरी हुई और सात झुलसी हुई बालोंको देखा था, उस समयकी प्रचलित परम्पराके आधार पर नहीं कर सके थे, तभी वह इतना चिंतित हुआ था कि उनकी व्याख्याके लिए एक विदेशीको कारागारसे निकालना पड़ा था।

तत्कालीन धारणाके अनुसार जिस व्याख्याकी आशाकी गयी थी और जो व्याख्या की गयी वह भविष्यवाणीके प्रकार-की थी। स्वप्नोंको भविष्य-कथनका साधन समझा जाता था। उनके द्वारा लोग भविष्यकी व्याख्या करना चाहते थे। स्वप्न अचूक भविष्यद्वक्ता समझे जाते थे। जो व्यक्ति उनकी व्याख्या कर सकता था उसके पास भविष्यकी पहेलीको हल करनेकी कुंजी थी। सभी प्राचीन जातियाँ स्वप्नको बड़ा महत्त्व देती थीं और उन्हें व्यावहारिक उपयोगकी वस्तु समझती थीं। यूनानियोंके लिए कभी-कभी बिना स्वप्न-मीमांसकके किसी यात्रा या आक्रमणका आरम्भ करना ऐसा अचिन्त्य हो जाता

था, जैसा कि आजकल हवाई जासूसोंके लिये होगा। जब सिकंदर अपनी विजय-यात्राको चला तो सर्वश्रेष्ठ स्वप्न-मीमांसक उसके साथ थे। टायर नगरमें उसे ऐसे जबर्दस्त विरोधका मुकाबला करना पड़ा कि उसने घेरेको खत्म कर देनेका विचार किया। तब एक रातको उसने स्वप्नमें एक परीको विजयोल्लाससे नाचते हुए देखा और जब उसने यह स्वप्न अपने स्वप्न-मीमांसकोंको बताया, तो उन्होंने उसे सूचित किया कि वह स्वप्न उस नगर पर उसकी विजय-प्राप्तिकी भविष्यवाणी करता है। इसपर उसने आक्रमण की आज्ञा दी और टायरको ले लिया। इसी प्रकार पूरे यूनानी और रोमन कालमें स्वप्नोंकी व्याख्या-का प्रयोग और बड़ा सम्मान होता था। हमारे यहाँ भी मत्स्य पुराणमें राजाकी यात्राके निमित्त शुभाशुभ स्वप्नोंका वर्णन है। जनसाधारणमें यह विश्वास अब भी बहुत व्यापक है। परिणामस्वरूप व्यापारिक प्रयोजनोंके लिये भी स्वप्नका उपयोग किया जाता है। योरपमें यह रिवाज बहुत प्रचलित है कि जुआ खेलनेवाले लोग एक छोटी-सी स्वप्न-पुस्तिका अपने पास रखते हैं, जिसमें विभिन्न स्वप्न-चित्रोंके लिये विभिन्न संख्याएँ दी रहती हैं। वे जो स्वप्न देखते हैं उसीकी संख्या-से खेलते हैं और जीतने पर स्वप्नको ही उसका श्रेय देते हैं। यह कार्य बड़ी तत्परतासे किया जाता है और लोगोंमें इसका बड़ा महत्त्व है, यद्यपि सुसंस्कृत वर्गके लोग इन रस्मोंकी हँसी उड़ाना अपना गौरवपूर्ण कर्त्तव्य समझते हैं और स्वप्नको चेतना द्वारा अनियंत्रित कल्पना का निरर्थक खेल समझते हैं।

प्राचीन लोग स्वप्नोंको स्वप्नदर्शी मनकी उपज नहीं, बल्कि दैवी सङ्केत मानते थे। उनकी यह धारणा उनके जीवन-दर्शनके अनुकूल ही थी जो आन्तरिक और

बाह्य जगत्का विवेक न कर पानेके कारण जिस वस्तुका अस्तित्व केवल मनमें था, उसका भी बाह्य जगत्में आरोप करता था। इसके अतिरिक्त स्वप्नकी स्मृति जाग्रत् जीवनकी अन्य मानस सामग्रीके मुक़ाबिलेमें कुछ विचित्र-सी, जैसे किसी दूसरे लोकसे आती हुई, प्रतीत होती है। इसी कारण बहुतसे लोग तो स्वप्नोंकी रहस्यात्मकताको ही दैवी शक्तियोंकी सत्ता और सहयोगमें अपने धार्मिक विश्वासका आधार बनाते हैं।

अतएव स्वप्नोंकी उत्पत्तिकी पहली कल्पना यही हुई कि स्वप्न देवताओंका अमरलोकसे भेजा हुआ प्रसाद है। स्वप्न दिव्य शक्तियों और मनुष्यका मध्यस्थ समझा जाता था। वह इह लोक और दिव्य लोकके बीचका पुल था। उसके द्वारा प्राचीन लोग अपने देवतासे सामीप्यका अनुभव करते थे। स्वप्नके द्वारा देवता बोलते हैं, आदेश देते हैं और सावधान करते हैं। जागनेके बाद स्वप्नकी स्मृतिकी जाग्रत् जीवन पर जो मुख्य छाप पड़ती है उसकी भी व्याख्या इस कल्पना-से होती है। प्राचीन युगके स्वप्न-मीमांसक उस गूढ़ भाषाको जानने और उसके द्वारा भविष्यवाणी करनेकी योग्यताका दावा करते थे। बाइबिलमें लिखा है कि "ईश्वर जो करने वाला होता है वह 'फारा' को दिखा देता है।" हमारे यहाँ भी स्वप्न-दर्शन-विधिमें शयन-समयमें स्मरणीय मन्त्रमें यह प्रार्थना की गयी है कि—

नमः शंभो त्रिनेत्राय रुद्राय वरदाय च।
वामनाय विरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः
भगवन् देवदेवेश! शूलभृद्वृषवाहन!
इष्टानिष्टे ममाचक्ष्व स्वप्ने सुप्तस्य शांत्वतः।
(पराशर-संहिता)

पश्चिम में पहले-पहल अरस्तूने अपनी पुस्तक 'स्वप्न और उनकी व्याख्या' में (Concerning Dreams And Their Interpretation) स्वप्नोंका निरूपण मनोविज्ञानके विषयके रूपमें किया। अरस्तू बतलाता है कि स्वप्नोंकी देवप्रकृति नहीं, बल्कि दैत्यप्रकृति है जिनमें गंभीर अर्थ होता है, यदि उनकी ठीक व्याख्या की जा सके। वह स्वप्नावस्थाके कुछ लक्षणोंसे भी परिचित था। उदाहरणके लिए, वह जानता था कि स्वप्न निद्राकालीन हलके संवेदनोंको तीव्र प्रतीतियोंके रूपमें परिवर्तित कर देता है। ("यदि स्वप्न-द्रष्टाके शरीरके किसी भागमें किंचित् उष्णता पहुँच जाती है, तो वह कल्पना करता है कि वह आग पर चल रहा है, तीव्र उष्णताका अनुभव कर रहा है।") जिससे वह यह परिणाम निकालता है कि स्वप्नोंके द्वारा वैद्यको शरीरके उन प्रारंभिक परिवर्तनोंके प्राथमिक चिह्नोंका आसानीसे पता लग सकता है जिनपर दिनमें ध्यान नहीं जाता और जो इसी कारण अज्ञात रह जाते हैं। हमारे यहाँ भी ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वप्रथम चरकादि वैद्योंने ही स्वप्नोंको मनःप्रसूत माना और अरस्तूकी ही भाँति उन्होंने भी स्वप्नोंके द्वारा रोगोंके निदान की विधि बतायी। शारीरिक क्रियाओंमें व्यावहारिक रुचि ही उन्हें स्वभावतः इस वैज्ञानिक तथ्य पर ले गयी। यद्यपि पुरानी दैवी कल्पनाका एकदमसे सर्वथा तिरस्कार भी स्वभावतः ही नहीं हुआ।

तबसे बीसवीं सदीके आरंभ तक स्वप्न-सम्बन्धी विचारमें कोई निश्चित उन्नति नहीं हुई। इस मध्ययुगके स्वप्न-साहित्यके कुछ अंश बहुत ही उपयोगी और ज्ञानपूर्ण हैं, क्योंकि इनमें स्वप्न-सम्बन्धी विशेष समस्याओंकी परीक्षा

की गयी है। किन्तु अधिकांश सामग्रीमें स्वप्नके स्वरूप और तात्पर्यकी किसी स्पष्ट या निश्चित कल्पनाका सर्वथा अभाव है। सर्वतन्त्र सिद्धान्तोंका कोई निश्चित आधार नहीं बना जिस पर भावी अन्वेषक आगे बढ़ सकें। हर लेखक उन्हीं समस्याओंको फिरसे नये सिरेसे लेकर चलता है।

स्वप्नोंकी दैवी उत्पत्ति तथा उनकी भाविक शक्तिकी कल्पना आज भी न केवल धार्मिक लोगों में, बल्कि दार्शनिकों-में भी विद्यमान है। इसीसे यह सिद्ध हो जाता है कि अब तक स्वप्नोंके स्वरूपकी जो मनोवैज्ञानिक व्याख्याएँ की गयी हैं वे इस विषयकी सारी एकत्रित सामग्री यानी स्वप्न-सम्बधी अब तकके सारे प्राप्त अनुभवोंकी व्यवस्था करनेके लिए अपर्याप्त हैं, चाहे वैज्ञानिक विचार शैलीके भक्त उक्त कल्पनाओंके निराकरणकी आवश्यकता कितनी भी तीव्रतासे अनुभव करते हों।

स्वप्नके अध्ययन पर आधुनिक अन्वेषणका प्रकाश पिछले ४० वर्षोंमें ही पूर्ण रूपसे पड़ा है। इन्हीं वर्षोंमें इस विषय-के वैज्ञानिक अध्ययनमें कुछ वास्तविक उन्नति हुई है। प्राचीन भविष्यवक्ताओंके स्थान पर समस्त राष्ट्रोंके वैज्ञानिकोंने स्वप्नों-की मीमांसा करना आरंभ किया है। इसी अर्सेमें इस विषय के प्रति लोगोंका दृष्टिकोण बिलकुल ही बदल गया है। इससे पहले यह विषय गंभीर विचारके अयोग्य समझा जाता था। और आज इस पर लिखी गयी किताबोंकी संख्या और उनका ज्ञान वृहद् है। अगर हम १९ वीं शताब्दीके स्वप्न-साहित्यको देखें तो यह परिवर्तन बहुत स्पष्ट रूपसे दिखायी देता है।

अभी तक वैज्ञानिक लोग जड़-जगत्की अद्भुत खोजोंमें ही व्यस्त थे। इन खोजोंमें एक हद तक पूर्णता प्राप्त हो जानेके बाद ही अर्थात् जीवनोपयोगी आधिभौतिक साधनों पर प्रभुत्व प्राप्तकर लेने पर ही इस ज्ञानके मूल प्रयोजन अर्थात् मानव जीवनमें इसके उपयोगकी ओर ध्यान आकृष्ट होना स्वाभाविक था। अतएव आधिभौतिक जड़-जगत्के साधन-ज्ञानके उपरान्त आध्यात्मिक जगत्के साध्य-ज्ञानकी, जड़के बाद चेतनके ज्ञानकी, आवश्यकता महसूस होने पर शरीर-विज्ञानकी पर्याप्त उन्नति हो जानेपर ही शरीरके चेतनतम अंश—मन—पर ध्यान गया है। यह भी ध्यान देनेकी बात है कि इस बारभी स्वप्न-सम्बन्धी ज्ञान चिकित्सकोंके द्वारा और चिकित्सा-सम्बन्धी आवश्यकताओंसे ही आगे बढ़ा। किन्तु इस बार इस कार्यमें मुख्यतः मानसिक चिकित्साकी प्रेरणा थी। प्रारम्भमें मन, चिकित्सा तथा स्वप्नकी कल्पना भी भौतिक ही थी। शरीरकी क्रियाओंमें ही मनकी क्रियाओंकी कुञ्जी देखी जाती थी। किन्तु अब वैज्ञानिक विचार इस दृष्टिकोणसे बहुत दूर चला गया है। जहाँ वैज्ञानिक लोग मनोविज्ञानको सन्देहकी दृष्टिसे देखते थे और मनकी अचेतन एवं अर्धचेतन क्रियाओंके अध्ययनसे विज्ञानका कोई लाभ नहीं स्वीकार करते थे, वहाँ अब प्रथम कोटिके अनेक चिकित्सक शरीर पर मनका अपरिमित प्रभाव देखने लगे हैं।

इसी प्रकार पहले स्वप्नकी व्याख्या शुद्ध शारीरिक कारणोंके द्वारा पूर्ण रूपसे संभव समझी जाती थी। स्वप्नकी इस व्याख्यासे कल्पना, स्मृति अथवा अन्य किसी निद्रा-कालीन मानसिक क्रिया पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता था। फिर भी

वैज्ञानिक लोग यह समझते थे कि स्वप्न शरीरके आकस्मिक संवेदनोंसे उद्भूत मानसिक क्रियाओंका निरर्थक समूह है। अर्थात् जिन मानसिक क्रियाओंसे स्वप्नका निर्माण होता है वे विना किसी साक्षात् मानसिक पूर्ववर्त्तीके निद्राकालमें घटित शारीरिक क्रियाओं द्वारा मस्तिष्कके विभिन्न अवयवोंके अनियमित उत्तेजनके परिणामस्वरूप उत्पन्न होती हैं। स्वप्न-की अस्तव्यस्तताका यही कारण समझा जाता है और जो कुछ बौद्धिक सम्बद्धता और व्यवस्था बहुधा स्वप्नोंमें कुछ हद तक दिखायी देती है, उसका कारण यह बताया जाता है कि स्वप्नकी मानसिक क्रियाएँ मस्तिष्कके अवयवोंमें बीजरूपसे निहित रहती हैं जो अवयव आपसमें शारीरिक रचना या क्रियाओं द्वारा घनिष्ट रूपसे सम्बद्ध रहते हैं और इसलिए वे बाह्य संवेदनोंसे एक साथ ही उत्तेजित होते हैं। अतएव इन क्रियाओंकी मानसिक उत्पत्तिके, विशेषकर समस्त स्वप्नके, 'तात्पर्य' के प्रश्नकी तो स्वभावतः सत्ता ही नहीं स्वीकार की जाती और इस दिशामें कोई खोज करनेकी चेष्टा यह कहकर तिरस्कृत की जाती है कि इसमें 'स्वप्नोंकी व्याख्या' (गूढ़ार्थ) के पुराने अन्धविश्वासकी गन्ध आती है जो कि शिक्षित लोगोंके योग्य नहीं है। इस दृष्टिकोणके तीव्र विरोधी फ्रॉयड हैं। वे कहते हैं कि स्वप्नकी क्रियाएँ अन्य सभी मानसिक क्रियाओंकी भाँति अपना मानसिक इतिहास रखती हैं। विशिष्ट गुणोंसे युक्त होते हुए भी मानसिक जीवनके क्रममें उनका एक वैध और बोधगम्य स्थान है और उनकी मानसिक उत्पत्ति उतनी ही निश्चितता और शुद्धताके साथ निकाली जा सकती है जितनी अन्य किसी भी मानसिक क्रिया की।

वास्तवमें प्राचीनकालसे ही स्वप्नके सार्थक तथा निरर्थक होनेके सम्बन्धमें दो विरोधी विचारधाराएँ चली आती हैं किन्तु अब तक इन दोनों पक्षोंका वैज्ञानिक समन्वय नहीं हुआ था। प्राचीनोंने इनका समन्वय स्वप्नोंके—सार्थक और निरर्थक—दो विभाग करके किया था।

नातिप्रसुप्तः पुरुषः सफलानफलानपि।
इन्द्रियेशेन मनसा स्वप्नान्पश्यत्यनेकधा॥

स्वप्नके सम्बन्धमें मनोवैज्ञानिकोंके दृष्टिकोणमें यह जबर्दस्त क्रान्ति उत्पन्न करनेका श्रेय फ्रॉयडको ही है। मनोविज्ञानके अनेक पहलुओं पर फ्रॉयडने व्यापक प्रभाव डाला है, किन्तु स्वप्न-सम्बन्धी विचार पर यह प्रभाव सबसे अधिक दिखायी देता है। फ्रॉयडका स्वप्न-सिद्धान्त उनके मनोविज्ञानका केन्द्र है। इसी बिन्दु पर प्रकृत और विकृत मानसिक जीवन-सम्बन्धी उनके विभिन्न सिद्धान्तोंका संगम होता है। इसी प्रस्थान-बिन्दुसे उन्होंने ऐसे दृष्टिकोणोंको विकसित किया है जो मनकी रचना और क्रियाओंके सम्बन्धमें हमारे ज्ञानमें क्रान्ति उपस्थित करते हैं।

सन् १९०० ई० में अपने सबसे अधिक विख्यात ग्रन्थ 'स्वप्नकी व्याख्या' (Dei Traumdeutung) को प्रकाशित करके उन्होंने यह दिखलाया कि स्वप्न महज मस्तिष्कके कोषोंकी अव्यवस्थित गड़गड़ाहट नहीं है, (जैसी कि किसी संगीतसे अनभिज्ञ व्यक्तिके किसी बाजेकी सुन्दरियों पर अपनी दसों अँगुलियोंके फेरनेसे पैदा होगी) जिसका विज्ञानके लिए कोई उपयोग नहीं है; बल्कि वह एक विशिष्ट प्रकारकी जटिल मानसिक क्रिया है जो शुद्ध विज्ञान तथा मानसिक चिकित्सा—दोनोंके दृष्टिकोणसे अत्यन्त

सावधानीसे अध्ययन करने योग्य है। उनका यह ग्रन्थ संसार-के पूर्णतम ग्रन्थोंमेंसे है। फ्रॉयडने तबतक इस विषय पर कुछ भी प्रकाशित नहीं किया जबतक उन्होंने एक हजारसे ऊपर स्वप्नोंका अत्यन्त सावधानीसे अध्ययन नहीं कर लिया। यद्यपि फ्रॉयडके बाद उनके शिष्यों तथा अन्य वैज्ञानिकोंने अपने कार्यसे स्वप्न-सम्बन्धी ज्ञानको बहुत कुछ परिष्कृत और सम्पन्न किया है, किन्तु फ्रॉयडका कार्य ही इस विषयके सारे अध्ययन-का आवश्यक आधार और प्रस्थान-बिन्दु बन गया है।

फ्रॉयडका यही अध्ययन प्रस्तुत पुस्तकका मुख्य आधार है। श्रद्धेय गुरुवर श्री सम्पूर्णानन्द जीकी बहुमुखी प्रतिभा उनके शिष्योंके लिए अनेक सारगर्भ सुझाव प्रस्तुत करती रही है। भारतीय इतिहासको हिन्दू, मुस्लिम तथा ब्रिटिश कालमें विभाजित करनेकी कृत्रिमता और उससे होने वाली हानिका विरोध कमसे कम वे सन् १९२३ ई० से तो अवश्य ही कर रहे थे। बादमें भारतीय इतिहासकारोंने भी इस विभाजनके विरुद्ध आवाज उठाई। श्री सम्पूर्णानन्द जीका इसी प्रकारका एक सुझाव मनोविज्ञानके सम्बन्धमें भी रहा है। उनके मतमें मनोविज्ञानका स्वाभाविक विभाजन चेतनाकी चार अव-स्थाओं–जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया–के आधार पर होना चाहिए। मनोविज्ञान चेतनाका शास्त्र है, और ये चेतनाकी चार अनुभवसिद्ध स्वतःप्रमाणित अवस्थाएँ हैं। अतएव मनोविज्ञान अपने विषयके अनुसार सहज रूपसे चार खण्डोंमें विभाजित हो जाता है। इस दृष्टिसे फ्रॉयडसे पहलेका पाश्चात्य मनोविज्ञान केवल जाग्रदवस्थाका अर्थात् व्यक्त चित्त (Consciousness) का मनोविज्ञान था। फ्रॉयड-ने ही पश्चिममें सर्वप्रथम स्वप्नावस्थाके मार्गसे उपव्यक्त

और अव्यक्त चित्त (Preconscious and Unconscious) में प्रवेश किया और स्वप्नकी कार्यशैलीका अन्वेषण करके सुषुप्तिकी प्रेरणा तथा स्वरूप पर भी प्रकाश डाला। मनोविज्ञान-के भारतीय विद्यार्थीके लिये, जो योगशास्त्रकी अत्यन्त प्राचीन परम्परामें जाग्रत्के अतिरिक्त स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया-वस्थाके रहस्यमय योगज अनुभवोंके वर्णन बाल्यावस्थासे ही सुनता और पढ़ता आया, इन विषयोंका वैज्ञानिक स्पष्टी-करण कितना आकर्षक होगा यह तो भारतीय पाठक सहज ही जान लेंगे। इसी आकर्षणने मुझे इस अध्ययनकी ओर विशेष रूपसे प्रवृत्त किया।

स्वप्नमें सुषुप्तिकी प्रेरणा तो लक्षित होती है, किन्तु तुरी-यावस्थाका ज्ञान पाश्चात्य मनोविज्ञानको नहीं है, न मेरा ही इसमें प्रवेश है, क्योंकि मुझे योगानुभव प्राप्त नहीं है। इस विषयमें श्रद्धेय सम्पूर्णानन्द जी ही बोलनेके अधिकारी हैं। अतएव मैंने उन्हींसे प्रार्थना की है कि पुस्तककी भूमिका स्वरूप अतीन्द्रिय स्वप्न तथा दिव्य दृष्टिके विषय पर विशेष रूपसे प्रकाश डालें। स्वप्नगत दिव्यदृष्टिके उदाहरणों-की व्याख्या मैंने उन्हें विचार-प्रेषणके अन्तर्गत ही मानकर की है, क्योंकि फ्रॉयडने विचार-प्रेषणके तत्त्वको स्वीकार किया है। किन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि इस व्याख्यामें लाघवके सिद्धान्तका निर्वाह होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि इन उदाहरणोंकी यही एक मात्र व्याख्या है। स्वयं फ्रॉयडने इस प्रकारके उदाहरणोंका उल्लेख नहीं किया है।

प्रस्तुत पुस्तकमें फ्रॉयडकी खोजोंको तो आधार रूपसे स्वीकार किया गया है, किन्तु उनके व्याख्या सम्बन्धी सिद्धान्तोंका आंशिक ग्रहण ही हुआ है। फ्रॉयडके दो प्रधान पूर्व शिष्यों—

ऐडलर और युंग—के मौलिक सिद्धान्तोंसे भी सहायता ली गयी है। श्रद्धेय गुरुवर डाक्टर भगवान्दासजीने इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है कि स्वप्न फ्रॉयडके कथनानुसार केवल 'इच्छापूर्ति' ही नहीं, 'भयपूर्ति' भी होता है। अन्य विचारकों-ने भी 'इच्छापूर्ति'के सिद्धान्तको आवश्यकतासे अधिक सङ्कुचित तथा अव्याप्त माना है, और कमसे कम 'इच्छा'के अर्थविस्तारका प्रस्ताव किया है। प्रस्तुत पुस्तकमें 'इच्छा' शब्दके अन्तर्गत प्रेम आदि समस्त प्रवृत्त्यात्मक आवेगोंका समावेश तो किया ही गया है, द्वेष, भय आदि निवृत्त्यात्मक भावोंकी अनुकूल चरितार्थताको भी इच्छापूर्ति ही माना गया है, क्योंकि भय भी किसी भयानक वस्तुसे भागनेकी इच्छा ही है और यदि भागनेमें सफलता मिल जाती है तो यह इच्छापूर्ति ही हुई। इस प्रकार 'इच्छा' शब्द समस्त आवेगों पर व्याप्त हो जाता है। किन्तु भय आदि निवृत्त्यात्मक इच्छाओं-का आरम्भ स्वरूपतः प्रतिकूल होता है इसलिये भागनेकी इच्छापूर्तिको 'भयनिवृत्ति' कहेंगे, न कि 'भयपूर्ति' और इस दृष्टिसे प्रश्न यह होता है कि जिस प्रकार 'इच्छा' शब्दका इस व्यापक अर्थमें सत्प्रयोग सिद्ध होता है, क्या उसी प्रकार समस्त स्वप्नोंके सम्बन्धमें 'इच्छापूर्ति'का सिद्धान्त भी समी-चीन है? क्या सभी स्वप्नोंमें 'इष्टपूर्ति' ही होती है। क्या ऐसे स्वप्न भी नहीं होते जिनमें इच्छाकी प्रतिकूल परिणति अर्थात् 'अनिष्टपूर्ति' होती है? फ्रॉयडने भयानक स्वप्नोंको स्वीकार किया है, किन्तु उन्हें स्वप्नचेष्टाकी असफलता स्वरूप मानकर और स्वप्नको स्वभावतः 'इच्छापूर्तिकी चेष्टा' मात्र कह-कर उन्होंने 'इच्छापूर्ति'के सिद्धान्तका निर्वाह करनेका प्रयत्न किया है। उनके कथनानुसार स्वप्नकी आधार भूमि निद्रा है,

और आवेगोंका प्रतिकूल परिणाम अथवा उनकी अतृप्ति निद्रा-में बाधक होती है, अतएव स्वप्नका सहज प्रयत्न आवेगोंकी शान्ति तथा निद्राकी रक्षाके हेतु होता है और इसलिये वह स्वरूपतः 'इच्छापूरक' है, यह दूसरी बात है कि आवेगोंकी प्रबलताके कारण वह अपने उद्देश्यमें सफल न हो और स्वप्न-का परिणाम निद्राकी रक्षाके स्थान पर निद्राभङ्ग हो जाय। प्रस्तुत पुस्तकमें स्वप्नको निद्रा और जाग्रतिकी मध्यावस्था माना गया है। इस प्रकार उसमें निद्राकी रक्षा तथा निद्राभङ्ग-की दोनों प्रेरणाएँ एवं तदनुसार इच्छापूर्ति तथा भयपूर्तिके दोनों गुण स्वरूपतः स्वीकार किये गये हैं।

इस मौलिक प्रस्थानभेदके कारण व्याख्याके अवान्तर विषयोंमें प्रत्येक स्थान पर फ्रॉयडके मतसे किञ्चित् भेद दिखाई देगा, और कुल मिलाकर सम्पूर्ण व्याख्याका ढांचा भिन्न हो गया है। इस व्याख्यामें सहायक तत्त्व मुझे उन सब ग्रन्थोंसे प्राप्त हुए हैं जिनका उल्लेख पुस्तकके अन्तमें दी हुई पुस्तक सूचीमें हुआ है और जिनके लेखकोंके प्रति मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। किन्तु उसके समग्र रूपकी जिम्मेदारी मेरी है। विशेष रूपसे प्रतीकों-के निर्माणके सम्बन्धमें जिस सिद्धान्तका निरूपण इस पुस्तकमें किया गया है, जिसके अनुसार प्रतीक शारीरिक प्रवृत्तिके रूपमें जात्या प्राप्त होते हैं, किन्तु प्रवृत्तियोंके अनुकूल आलम्बनोंके रूपमें उनका अर्जन व्यक्तिगत अनुभव तथा सांस्कृतिक परम्परासे होता है—यह सिद्धान्त तथा इसके अनुसार भारतीय प्रतीकोंकी व्याख्याका उत्तरदायित्व मैं स्वयं स्वीकार करता हूँ।

काशी विद्यापीठ
मकर संक्रान्ति, सं० २००४

राजाराम

स्वप्न-दर्शन

(१)

स्वप्नका स्वरूप

विज्ञानके विकासके पूर्व बीमारियोंके सम्बन्धमें लोगोंकी यह धारणा थी कि ये स्वास्थ्यके लिये बाधास्वरूप हैं। किन्तु विज्ञानके विकासके साथ साथ इस धारणामें परिवर्तन हुआ, और यह मालूम हुआ कि ये रोग हमारे स्वास्थ्यके बाधक न होकर साधक हैं। स्वास्थ्यकी वास्तविक बाधा तो वह विजातीय द्रव्य है, जो हमारे शरीरमें असंयमसे पैदा हो जाता है, बीमारियाँ तो इसे निकाल फेकने, और स्वास्थ्यकी अवस्थाको वापस लानेका प्रयत्नमात्र हैं। इस प्रकार ये स्वास्थ्यमें बाधक न होकर उसकी साधक हैं। उसके बाद हालमें विज्ञान इस नतीजेपर पहुंचा है कि रोगोंके स्वास्थ्य रक्षक होनेका सिद्धान्त भी अपूर्ण है। रोगोंका आरम्भ अवश्य अस्वस्थ दशाकी सूचना और स्वास्थ्य साधनके लिए होता है, पर एक बार शुरू हो जानेपर ये स्वयं भी स्वास्थ्यके लिए आपत्ति स्वरूप हो जाते हैं। इस प्रकार विज्ञान फिर पहले सिद्धान्तपर लौटा हुआ प्रतीत होता है। फिर भी दोनों सिद्धान्तोंमें जो भेद है, वह स्पष्ट ही है।

यही बात स्वप्नके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। प्राचीन कालमें यह धारणा थी कि स्वप्न निद्राके लिए बाधा स्वरूप हैं। लोग यही कहते नज़र आते थे कि 'आज मारे स्वप्नोंके नींद नहीं आई।' पर आजकलका स्वप्न विज्ञान ठीक इससे उल्टी बात कहता है। अर्थात् स्वप्न निद्राका रक्षक है। प्राचीनकालमें स्वप्नोंके मूल कारणकी ओर लोगोंका ध्यान नहीं गया था। यदि उनसे पूछा जाता कि 'स्वप्न क्यों होते हैं ?' तो यही जवाब मिलता कि 'ठीक नींद नहीं आई, इसी कारण स्वप्न आते रहे।' अर्थात् 'स्वप्नके कारण नींद नहीं आती और नींद न आनेके कारण स्वप्न आते हैं।' कदाचित् आप कहेंगे कि 'वस्तु स्थिति ऐसी हास्यास्पद नहीं थी। लोग इस बातको बहुत दिनोंसे जानते आये हैं कि मानसिक चिन्ताओं और सन्तापके कारण स्वप्न आते हैं, और शारीरिक अस्वस्थता और बाहरी शोर गुलसे नींदमें बाधा पड़ती है।' इस बातको स्वीकार कर लेनेपर भी इतना तो स्पष्ट ही है कि यह विचार असङ्गठित-सा प्रतीत होता है। स्वप्नके कारण नींद नहीं आती या नींद न आनेके कारण स्वप्न आते हैं, इसका कोई एक निर्णय नहीं हो पाता। यदि दोनों एक दूसरेके कारण मान लिये जायँ, तब भी यह पता नहीं चलता कि स्वप्न और निद्राका सम्बन्ध क्या है, स्वप्न कैसे निद्रा भङ्ग कर देता है, और नींदकी कमीसे स्वप्न कैसे, कहाँसे और क्यों आने लगते हैं, इनमें मूल कारण कौन है, पहले स्वप्न होता है या नींदका अभाव, किन अवस्थाओंमें स्वप्नके कारण नींद नहीं आती, और किन अवस्थाओंमें नींद न आनेके कारण स्वप्न आते हैं ? जिन अवस्थाओंमें नींद आनेके कारण स्वप्न आते हैं, उनमें भी प्राचीनोंके विचारानुसार स्वप्न निद्राका नाशक ही क्यों बना रहता है, यह समझमें नहीं आता, और इसी बातसे उनके विचारोंकी गुत्थैल

प्रकट हो जाती है। इस विचारको जरा ध्यानपूर्वक देखने और कुछ दूर ले चलनेसे यही प्रतीत होता है कि स्वप्न ही नींद न आनेका एकमात्र मूल कारण समझा जाता था। आगे चलकर यह ज्ञात होगा कि सारी गुत्थी इसी ग़लतीके कारण थी। रोगोंके समान कदाचित् हम सर्वथा इस सिद्धान्तका त्याग न कर सकें, पर कितने अंशमें, और किस रूपमें, हम इसे स्वीकार कर सकते हैं, यह आगे देखा जायगा। अभी तो हमें ठीक उसके उल्टे सिद्धान्तका निरीक्षण करना है, जो आधुनिक स्वप्न-विज्ञान-वेत्ताओंने खोज निकाला है। वह यही है कि 'स्वप्न निद्राका विरोधी न होकर उसका सहायक है।'

विपक्षी उदाहरणोंका खण्डन अथवा समन्वय करके इस सिद्धान्तकी व्यापकता सिद्ध करनेके पहले हमें कुछ उदाहरणों द्वारा इसे समझनेकी चेष्टा करनी चाहिए। यह तो बादको देखा जायगा कि यह सिद्धान्त सभी स्वप्नोंपर लागू हो सकता है अथवा नहीं, विशेषकर उनपर, जो स्पष्ट ही निद्राको भङ्ग कर देते हैं। पहले तो उन्हीं उदाहरणोंको देखना होगा, जिनमें स्पष्ट रूपसे निद्राको स्वप्नसे सहायता मिलती हुई दिखाई देती है। ऐसे उदाहरण हैं, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। प्रत्येक व्यक्तिके अनुभवमें ऐसे कितने ही स्वप्न आये होंगे। उदाहरणके लिए हम दो एक स्वप्न यहाँ उद्धृत करते हैं।

(१) फ्रायडने एक स्वप्नका उल्लेख किया है—"एक डाक्टर महोदयने, जो ज़रा अधिक सोनेवाले थे, एक स्त्रीको ताकीद कर रखी थी कि नित्य सवेरे अस्पताल जानेके समयपर उन्हें जगा दिया करे, पर बेचारीको नित्य ही इस आज्ञाका पालन करनेमें बड़ी कठिनाई होती थी। एक दिन जब कि वे बड़ी मीठी नींद का आस्वादन कर रहे थे, उस स्त्रीने कमरेमें पुकारकर

कहा—'साहब उठिये। आपके अस्पताल जानेका समय हो गया है।' इसपर डाक्टर साहबने स्वप्नमें देखा कि वह अस्पतालके एक कमरेमें एक चारपाईपर पड़े हुए हैं, और उनके नामकी तख्ती उनके सिरहाने लटकी हुई है। स्वप्न ही में उन्होंने अपने मनमें कहा—'अगर मैं अस्पतालमें विद्यमान ही हूँ, तो फिर मुझे वहाँ जाना नहीं है', करवट बदली और सोते रह गये।' इस स्वप्नमें इस समय हमें दो बातोंपर ध्यान देना है। (१) यहाँ निद्राभङ्गका कारण विद्यमान है, और वह कारण स्वप्नके बाहर है। इस बातको समझना हमारे लिए बिलकुल सहज है कि यदि वह स्त्री पुकारती ही रहे, तो क्रमशः निद्राभङ्ग होना अनिवार्य है। (२) दूसरे यह कि फिर भी नींद नहीं टूटती, और स्वप्नकी कृपासे नहीं टूटती। इस प्रयोजनको यह स्वप्न किस प्रकार सिद्ध कर रहा है, यह बिलकुल स्पष्ट है। यदि स्वप्न डाक्टर साहबको यह विश्वास न दिला दे, बल्कि दिखा न दे कि वह अस्पतालमें ही हैं, तो उन्हें निद्राका त्याग करना ही पड़ेगा, यह तो उनके स्वप्नके स्वगत वाक्यसे ही स्पष्ट हो जाता है। जगानेवाली स्त्रीके शब्दोंका आशय और अपना कर्तव्य उनके ध्यानमें निस्सन्देह आ गया है। उस कथनका प्रकार ही बतलाता है कि वह किसी बातके उत्तरमें, किसी शंका या कर्तव्य प्रेरणाके समाधानके लिए कहा गया है यह भी स्पष्ट ही है कि जिस प्रेरणाका समाधान किया गया है, उसकी पूर्तिके लिए निद्रा त्याग करना आवश्यक था। इस प्रकार इस स्वप्नमें डाक्टर साहबने स्वयं ही स्वप्न देखनेका प्रयोजन साफ़ शब्दोंमें स्वीकार कर लिया है। सभी स्वप्नोंमें यह बात नहीं होती। इसी विशेपताके कारण इसका उल्लेख सर्वप्रथम किया गया है, क्योंकि स्वप्नका स्वरूप या उसका प्रयोजन हृदयङ्गम करानेके लिए यह विशेष उपयुक्त है। यह हमें

एक ऐसा साधन दे देता है, जिसके आधारपर हम अन्य स्वप्नोंका प्रयोजन भी आसानीसे समझ सकते हैं।

(२) फ्रायडने स्वयं अपना अनुभव लिखा है कि "अपनी युवावस्थामें जब कि रातको देरतक काम करते रहनेका उनका नित्यका अभ्यास था, सवेरे उठनेमें बराबर कठिनाई रहती थी। उस समय वह यह स्वप्न देखा करते थे कि वह चारपाईसे उठ गये हैं, और हाथ-मुँह धोनेके स्थानपर खड़े हैं। सोये रहनेपर भी कुछ देरके लिए उन्हें यह विश्वास हो जाता था कि वे उठ गये हैं।" यहाँपर बात उतनी साफ नहीं है, जितनी कि पहले स्वप्नमें। यहाँ स्वप्न देखनेवाला स्वयं अपने शब्दोंमें स्वीकार नहीं करता; परन्तु कार्यरूपमें करता वही है। स्वप्नका नतीजा यही होता है कि वह सोता ही रह जाता है। स्वप्नका स्वरूप भी प्रायः वैसा ही है। उठनेकी आवश्यकता थी। स्वप्न उसकी पूर्ति कर देता है। उठनेके बादका काम कराकर उठ जानेका विश्वास दिला देता है, मानो कह रहा है कि 'आप समझते हैं कि उठना चाहिए, किन्तु आप तो उठकर मुँह-हाथ धोने जा रहे हैं!' यहाँ भी स्वप्न कार्य-प्रेरणाके समाधान-स्वरूप ही है। यहाँपर एक बात और ध्यान देने योग्य है, जो पहले स्वप्नसे भिन्न है। यहाँ जागनेका कोई कारण बाहर नहीं है, बल्कि उठनेकी चिन्ता ही है।

(३) मेरे मित्र श्री श···· ने अपना एक स्वप्न इस प्रकार बताया—"एक बार रेलगाड़ीमें एक पुस्तक पढ़ते पढ़ते नींद आने लगती है। किताब हाथमें लिए ही क्षण भरके लिए स्वप्न देखता हूँ। 'मैं यह पुस्तक पढ़ रहा हूँ, पर नींद आ रही है। डर है कि कहीं नींद न आ जाय और पुस्तक गिर पड़े, या बन्द हो जाय, और सफे मिल जायँ। इसी समय पासमें एक रैपर देखता हूँ। उसे उठाकर किताबमें रखकर किताब बन्द

कर देता हूँ।' जाग उठता हूँ। किताब ज्योंकी त्यों खुली है। चेतना इतनी लुप्त नहीं हो पाई थी कि किताब गिर पड़े। मुझे यह स्वप्न भी न जान पड़ता, यदि वह रैपर कल्पनाकी आँखोंके सामने न होता। वस्तु स्थितिमें रैपर है ही नहीं।" इस स्वप्नमें जागते रहनेका कारण जितना बाहर है, उतना ही मनमें। बाहर किताब है और मनमें उसके गिर जाने इत्यादिका भय, या उसे इस तरहसे रख देनेकी चिन्ता, जिसमें सफ़े मिल न जायँ, जिसके लिए जरा देर और जागकर कुछ हरकत करना ज़रूरी था। पहले स्वप्नमें भी यह दिखाया जा चुका है कि पुकारनेवाली स्त्रीकी बातें सोनेवालेके मनमें उठनेका विचार पैदा करके ही स्वप्न लाई थीं। इन तीन स्वप्नोंसे यह सिद्ध होता है कि बाहरसे किसी उत्तेजना या प्रेरणाका होना स्वप्नके लिए हमेशा ही आवश्यक नहीं है, किन्तु आन्तरिक कारण हमेशा ही आवश्यक है।

(४) इस बातको और अच्छी तरह समझनेके लिए श्री श··का ही बताया हुआ एक और स्वप्न देखिये—"रेलगाड़ीमें सफ़र करते समयकी बात है। मेरी सोनेकी इच्छा है। नींद आ रही है। मेरा बँधा बिस्तरा एक जगह रखा है। उसपर सिर रखकर एक महाशय सोये हैं। मैं चाहता हूँ कि वह उठें, तो बिस्तरा हटाकर अपने नीचे लगा लूँ, पर यह नहीं कर पा रहा हूँ। बैठे-बैठे ही खिड़कीपर सिर रखकर झपकी लेता हूँ। स्वप्न देखा कि 'वे महाशय उठकर बैठ गये हैं। मैंने निवृत्तिकी साँस ली।' इसके बाद जाग गया। देखा वे वैसे ही सो रहे हैं। सारी खुशी दूर हो गई।" इस स्वप्नमें उन महाशयके उठ जानेकी इच्छा ही प्रेरक है, क्योंकि इसीके कारण नींद आनेमें असुविधा हो रही थी। इसके अतिरिक्त अन्य कोई बाहरी

कारण नहीं है। इसी प्रकार जीवनकी अनेक अपूर्ण इच्छाएँ स्वप्नमें प्रेरक होती हैं। क्योंकि जब तक पूर्ण न हो जाय, इच्छामें एक प्रेरणा रहती है। इच्छाका स्वरूप ही प्रेरणात्मक है। इच्छा कर्मकी प्रेरणा करती है, और कर्मके लिए जागना जरूरी है।

(५) फ्रायडने लिखा है कि एक ऐसा स्वप्न है, जिसे वह इच्छानुसार जितनी बार चाहें देख सकते हैं। वह बतलाते हैं कि उनकी निद्रा गम्भीर होती है, और उन्हें शारीरिक आवश्यकताओंसे प्रेरित होकर जागना नहीं पड़ता; पर यदि वह रात्रिके भोजनमें कोई तेज़ नमककी चीज़ खा लें, तो रातको उन्हें प्यास लग आती है, जिससे वह जाग जाते हैं परन्तु जागनेके पहले एक स्वप्न आता है, जिसका विषय सर्वदा एक ही रहता है। वह यह कि 'वह पानी पी रहे हैं। पानीकी खूब लम्बी घूँटे वह पीते हैं। पानी वैसा ही मीठा लगता है, जैसा कि गला सूखा हुआ होने पर खूब ठंडा पानी लगता है', और तब वह जाग जाते हैं और वास्तविक प्यासका अनुभव करते हैं। स्पष्ट है कि इस स्वप्नका प्रेरक हेतु प्यास है, जो जागने पर उन्हें मालूम होती है। इसीके कारण पानी पीनेकी प्रेरणा होती है, और स्वप्न यह दिखाता है कि वह इच्छा पूरी हो गई है। इसका उद्देश्य तुरन्त ही समझमें आ जाता है। अगर पानी पीनेके स्वप्नसे प्यास बुझ जाय, तो उसकी तृप्तिके लिये उठनेकी आवश्यकता नहीं है। इस कर्मका स्थान स्वप्न ही ले लेता है, जैसा कि जीवनके अन्य कर्मोंके सम्बन्धमें भी ऊपर दिखाया जा चुका है, पर दुर्भाग्यवश प्यास बुझानेके लिए पानी पीना ही आवश्यक है। इसकी तृप्ति स्वप्नसे नहीं हो सकती, जैसी कि अन्य मानसिक इच्छाओंकी हो सकती है। यही कारण है कि इस स्वप्नका प्रयत्न पूर्वकथित स्वप्नोंके समान ही होनेपर भी यहाँ अपनी

उद्देश्य-सिद्धिमें असफल दिखाई देता है, अर्थात् निद्रा-भंग हो ही जाती है। इस स्वप्नमें जो विशेष बात ध्यान देनेकी है, वह यह है कि यद्यपि स्वप्नका प्रयत्न निद्राकी रक्षाकी ओर ही होता है, पर उसका सफल होना आवश्यक नहीं है।

(६) मेरे मित्र श्री श····ने अपना एक स्वप्न इस प्रकार बताया—"एक दिन गर्मीके दिनोंमें दोपहरको एक कमरे में सोते-सोते जागकर एक बार प्यास मालूम हुई। घड़ा पास ही था, पर नींदके कारण उठा नहीं। एक मित्र भी पास ही उसी कमरे में सो रहे थे। उस समय मुझे यह स्वप्न हुआ कि मुझे प्यास लगी है। मैं जाकर इसी कमरेमें रखे घड़ेसे पानी लेता हूँ। समझा था खूब ठंडा होगा, पर पानी लोटेमें लेकर देखा, खूब गरम हो गया है। कारण शायद यह है कि खिड़कीसे धूप आकर उसपर पड़ी होगी, पर पानी बहुत ही गरम है। मैं पी नहीं सका। बाहर लेकर आया। मित्रसे कहा, पानी तो बहुत गरम हो गया है। वे भी प्यासे थे। अब वह मेरी माताजी बन जाते हैं। वे समझती हैं कि मैं हँसीमें गरम बता रहा हूँ। वास्तवमें बहुत ठंडा है। वे आकर पीती हैं। मैं ऊपरसे पानी उनके चुल्लूमें चखानेको डालकर हटा लेता हूँ। वे बिगड़ती हैं कि क्यों प्यासा मार रहा है। पानी पिलाता क्यों नहीं। मुझे आश्चर्य होता है कि उन्हें पानी ठंडा कैसे लगा। वे उसे बहुत ठंडा बताती हैं, और बड़ी आतुरतासे पीती हैं। शायद इसीके बाद जाग जाता हूँ, और वास्तविक प्यासका अनुभव करता हूँ।" यहाँ हम स्वप्नको विफल-प्रयत्न होते हुए बड़ी अच्छी तरह देखते हैं। स्वप्न नं० ५ की तरह यह स्वप्न भी पानी पिलाकर उठनेकी आवश्यकताका खण्डन करना चाहता है, पर स्वप्न भी अपने काममें मुस्तैद है। जल्दी हार मानना नहीं चाहता। एकाएक सारा

मैदान छोड़ देना उसे स्वीकार नहीं। कहता है—'पानी तो आपके सामने है ही, यह दूसरी बात है कि आपको गर्म मालूम पड़ा हो, पर वह भी आपका भ्रम है वास्तवमें पानी बहुत ठंडा है।' यहाँ यह साफ़ दिखाई दे रहा है कि स्वप्नने कुछ जमीन तो छोड़ ही दी है। अब उसमें प्रत्यक्ष प्रमाणका आश्रय लेनेकी हिम्मत नहीं रही है क्योंकि उससे तो इस पानीकी व्यर्थता सिद्ध हो चुकी है। अब तो आप्त वचनका ही साधन उसके पास रह गया है, 'आपके मित्र—नहीं नहीं, स्वयं आपकी माताजी—उसे ठंडा बता रही हैं!' पर दूसरी ओर प्यास तो जितना समय अधिक हो रहा है, उतनी ही प्रबल होती जा रही है, और अन्तमें स्वप्नकी हार स्वाभाविक है। इस स्वप्नमें जाग्रति और निद्राका द्वन्द्व साफ़ दिखाई पड़ रहा है।

(७) "किसी सज्जनने यह स्वप्न देखा कि वह बड़े सुहावने प्रातःकालमें बाहर निकलकर खेतोंमें से होते हुए पड़ोसके एक गाँवकी ओर जा रहे हैं। उन्होंने गाँववालोंको रविवारकी पोशाकमें गिरजाघर जाते हुए देखा, और उनके साथ जानेका निश्चय कर लिया। लेकिन पहले वह क़बरिस्तानकी ओर घूमे। जब कि वह समाधि-स्तम्भोंके लेख पढ़ रहे थे, उसी समय घंटा बजानेवाला गुम्बदपर चढ़ता हुआ देख पड़ा, और उनकी निगाह घंटेपर पड़ी, जो बजाया ही जानेवाला था। अख़िरकार उन्होंने देखा कि वह बजने लगा, और उसके बजनेकी आवाज़ इतनी साफ़ और तीव्र प्रतीत हुई कि वे जाग पड़े, और देखा कि वह उनकी अलार्म घड़ीकी आवाज़ है।" (हूप)

कहना न होगा कि इस स्वप्नका आरम्भ उस घरघराहटसे होता है,जो अलार्म बजनेके पहले घड़ीमें हुआ करती है। इसके बाद हम सदा ही अलार्म बजनेकी प्रतीक्षा करते हैं, और यही

प्रतीक्षा इस लम्बे स्वप्नमें रूपकके द्वारा व्यक्त हुई है। घर-घराहटसे ही उठनेकी प्रेरणा हुई, यह गिरजाघर जानेके निश्चयसे व्यक्त हुआ है ; पर प्रेरणा प्रबल नहीं है, यह भी सीधे न जाकर समाधि स्तम्भोंकी ओर जाने, और उनके लेखोंको पढ़नेसे जान पड़ता है, 'जैसे कोई बहका रहा हो कि चल तो रहे ही हैं, पर जल्दी क्या है, जरा इधरकी सैर भी करते चलो।' लेकिन इसके बाद जैसे जैसे प्रेरणा प्रबल होती गई, घण्टेका रूपक भी आगे बढ़ता गया है। यह दिखाया जा रहा है कि गिरजेके कार्यारम्भका समय पास आता जा रहा है, और अब विलम्ब नहीं किया जा सकता। स्वप्नके अन्तिम भागमें निद्राका पक्ष बहुत व्यक्त नहीं है, क्योंकि वह कमजोर पड़ चुका है। फिर भी वह अन्त तक विलम्ब और प्रतीक्षाके भावमें विद्यमान हैं। एक बात और है। स्वप्नोंकी भाषा सीधी सादी न होकर अधिकतर दृश्यात्मक होती है, इस बातका कुछ कुछ आभास तो पहलेवाले स्वप्नोंमें भी मिला होगा, पर इस स्वप्नमें तो विशेष रूपसे रूपकका प्रयोग देख पड़ता है। इस सम्बन्धमें आगेके अध्यायोंमें विस्तारसे कहा जायगा। यहाँ केवल इतना ही देखना है कि इस रूपकात्मक वृत्तिका एक फल यह भी होता है कि निद्राका पक्ष बहुत कुछ मजबूत हो जाता है, क्योंकि स्वप्न देखनेवालेको यह ठीक ज्ञात नहीं होने पाता कि जो घटनाएँ उसके सामने हो रही हैं, उनसे उसका क्या सम्बन्ध है। प्रेरणाका रूप बदल जानेसे ही वह उसका अनुभव उतने तीव्र रूपमें नहीं कर सकता, जैसा कि यहाँ घड़ीकी आवाजके घण्टेकी आवाजमें बदल जानेसे हुआ है। अतः यह रूपकात्मक वृत्ति ग्रहण करनेके बाद बहुधा स्वप्नको निद्राके पक्षमें और कुछ करनेकी आवश्यकता ही नहीं रहती।

इस बातके उदाहरण देनेमें मैं बंकिम बाबूके 'कृष्णकान्तका वसीयतनामा' से एक स्वप्न उद्धृत करनेके मोहका संवरण नहीं कर सकता। यद्यपि यह एक उपन्यासकी बात है, पर एक सच्चा कवि प्रकृतिका सूक्ष्म निरीक्षक होता है, और उसके नियमोंके विषयमें कभी कोरी कल्पना नहीं करता। उसके अतिरिक्त यद्यपि काव्यसे विज्ञान सिद्ध नहीं होता, तब भी विज्ञानसे तो कविका सत्य दर्शन अवश्य ही सिद्ध हो सकता है। इसी दृष्टिसे यह उद्धरण दिया जा रहा है।

(८) "अन्तमें गोविन्दलाल स्वयं कृष्णकान्तके पास गये। वे उस समय भोजन करनेके उपरान्त पलंगपर लेटे हुए फरसीकी नली हाथमें लिये हुए ऊँघ रहे थे। कृष्णकान्त अफीमकी झोंकमें देख रहे थे कि 'रोहिणी एकाएक इन्द्रकी शची होकर महादेवकी गोशालासे उनका बैल चुराने गई। नन्दी त्रिशूल लेकर बैलको सानी देनेके लिए जब वहाँ गये, तो उसे पकड़ लिया। कृष्णकान्त देख रहे थे कि नन्दी रोहिणीके सुन्दर काले काले बालोंको पकड़कर खींच रहे हैं। इतनेमें ही स्वामिकार्तिकका मयूर आकर कुञ्चित केशोंको सर्प समझकर निगलने लगा। इसी समय स्वयं षड़ानन मयूरकी ढिठाई देखकर नालिश करनेके लिए महादेवके पास आकर पुकार रहे हैं। 'चाचाजी'! कृष्णकान्त विस्मित होकर सोच रहे हैं— स्वामिकार्तिक महादेवको चाचाजी कहकर किस नातेसे पुकार रहे हैं। इसी समय स्वामिकार्तिकने फिर पुकारा—'चाचाजी'! कृष्णकान्त बहुत चिढ़ गये, स्वामिकार्तिकका कान ऐंठनेके लिए उन्होंने हाथ उठाया। तब कृष्णकान्तके हाथसे फरशीकी नली झनझनाकर पानके डब्बेपर गिर गई, वह डब्बा भी झनझनाहटके साथ पीकदानीपर गिर गया; और नली, डब्बा एवं पीकदानी सभी

एक साथ पृथ्वीपर गिर पड़ीं।' इन्ही शब्दोंसे कृष्णकान्तकी नींद खुल गई, उन्होंने अपनी आँखें खोलकर देखा कि वास्तवमें स्वामिकार्तिक उपस्थित हैं। साक्षात् स्वामिकार्तिककी तरह गोविन्दलाल उनके सामने खड़े पुकार रहे हैं— चाचाजी !" इस स्वप्नमें कृष्णकान्तको पहले उठना इसीलिए आवश्यक नहीं मालूम होता कि यह प्रेरणा उनके सामने रूपकमें आती है। आवाज़ तो उनके कानों तक पहुँच चुकी है, पर यदि स्वामिकार्तिक महादेवको पुकार रहे हैं, तो उन्हें इससे क्या मतलब ? लेकिन प्रेरणा भी अपना काम कर रही है। वह उनके इस विस्मयसे कि महादेवको स्वामिकार्तिक चाचाजी कैसे कह सकते हैं, व्यक्त हो रही है। यह आश्चर्य क्या है, मानो उस रूपकपर अविश्वास है। दूसरी पुकारपर प्रेरणा अवश्य ही और प्रबल हो उठी है, इस बातको हम कृष्णकान्तके 'चिढ़ जाने' में देख रहे हैं।

उपर्युक्त स्वप्नोंसे आपने देखा होगा कि स्वप्नकी प्रवृत्ति निद्राका पोषण करनेमें होती है, पर उसका अपने प्रयत्नमें सफल होना आवश्यक नहीं होता। यदि जागनेकी प्रेरणा कमज़ोर रहे, तब तो वह सफल हो जाती है; पर यदि यह प्रेरणा प्रबल हुई, या हो गई, तो निद्राके अस्त्र उसपर नहीं चलते। तो फिर यह क्यों न कहा जाय कि स्वप्न निद्रा और जाग्रतिकी प्रेरणाओंका द्वन्द्व है, क्योंकि आखिर जगानेवाली प्रेरणा भी तो स्वप्नमें ठीक उसी तरह अपना काम करती दिखाई देती है, जिस तरह निद्राकी प्रेरणा। एक दृष्टिसे स्वप्नको दोनोंका मध्यस्थ भी कह सकते हैं, क्योंकि कहीं तो वह जाग्रतिपक्षको दबाकर निद्राकी सहायता करता है, और कहीं निद्रापक्षको दबाकर जाग्रतिकी ओर ले जाता है। इस अन्तिम

बातको समझनेके लिए एकाध ऐसे उदाहरण देखने पड़ेंगे, जो स्पष्टरूपसे जाग्रतिके सहायक मालूम होते हों। अब तक जिन स्वप्नोंका उल्लेख हुआ है, उनमेंसे अधिकतर स्वप्नोंमें निद्रा और जाग्रति दोनों पक्ष दिखाई पड़ते हैं, और कहीं कहीं तो जाग्रतिकी प्रेरणाका स्वप्नके अन्दर पता नहीं चलता। जैसे स्वप्न नं० ४ में प्रेरक इच्छा हमें स्वप्नके बाहर प्राप्त होती है। स्वप्नके अन्दर तो एकबारगी उसकी पूर्ति ही सामने आ जाती है। अतृप्तरूपमें हमें उसका दर्शन ही नहीं होता, और अगर जैसा पहले कहा जा चुका है, इच्छामें प्रेरणा होती है, तो उसके अतृप्त रूपमें ही होती है, और इच्छामात्रको प्रेरणात्मक कहनेका यही तात्पर्य है कि तृप्त होनेपर इच्छा इच्छा ही नहीं रहती। इच्छाका तृप्त होना तो उसका अन्त ही है। इसी कारण स्वप्न नं० ४ में हमें इच्छाका कहीं दर्शन नहीं होता। केवल एक घटना दिखाई देती है। उस घटनासे जो सुख होता है, उसीसे इच्छाका अनुमानमात्र होता है। इस तरह इस स्वप्न नं० ४ में केवल निद्राका पक्ष ही दिखाई देता है। जागृति-पक्षको अन्दर घुसनेका अवसर ही नहीं मिलता, क्योंकि प्रेरणा एकदम शान्त होकर सामने आती है। अब हमें ऐसे ही स्वप्न देखने बाक़ी रहे हैं, जिनमें ठीक इससे उलटा होता है, अर्थात् जहाँ प्रेरणा बिलकुल ही अशान्त और उद्विग्न रूपमें दिखाई देती है, उसकी शान्तिका लवलेश नहीं मिलता। इस प्रकार वहाँ केवल जाग्रति पक्ष ही दिखाई पड़ता है। निद्रा-पक्षको अपने अस्त्र चलानेका अवसर ही नहीं मिलता। ऐसे उदाहरण हमें अधिकतर उन स्वप्नोंमें मिलेंगे, जिन्हें 'भयानक स्वप्न' कहा जाता है। इच्छाएँ स्वप्नकी प्रेरक होती हैं, यह तो देखा ही जा चुका है; पर ये दो प्रकारकी होती हैं। प्रिय प्राप्तिमें प्रवृत्ति-

रुपिणी और अप्रिय प्राप्तिसे निवृत्तिरूपिणी। इन्हें आशामय और आशंकामय भी कह सकते हैं। अब तक इच्छाके नामसे पहले प्रकारका ही उल्लेख किया गया है, क्योंकि साधारण व्यवहारमें आशंकाओंके लिए 'इच्छा' शब्दका प्रयोग नहीं होता। प्रायः 'आशंका' या 'भय' शब्दका ही प्रयोग होता है; परन्तु इनकी यह समानता ध्यानमें रहनी चाहिए कि दोनों ही प्रेरणारुप होती हैं। दोनों ही कर्मकी आवश्यकताका अनुभव कराती हैं; बल्कि यह अनुभव या आभास ही इन इच्छाओंका स्वरूप है, और इस प्रकार दोनों ही कर्मकी प्रेरक हैं। दोनोंकी शान्ति कर्मसे ही सम्भव है। अतः दोनों जाग्रतिकी अपेक्षा करती हैं।

(६) यहाँपर भयानक स्वप्नोंका कोई विशेष उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं है। इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि प्रथम यूरोपीय महासमरके समय सिपाहियोंको जो भयानक स्वप्न होते थे, उनमें प्रायः पहले तो युद्धके किसी वास्तविक दृश्यकी आवृत्ति होती थी, जो कि प्रायः कोई बहुत ही भयावह अनुभव या कोई खतरनाक घटना होती थी—जैसे, किसी हवाई जहाजसे गिरना इत्यादि—जिससे बड़ा ही तीव्र भय उत्पन्न होता था। बहुधा इस भयमें एक ऐसी विशेषता होती थी, जो जाग्रत्-जीवनके किसी प्रकारके भयमें नहीं पाई जाती। इस प्रबल भयकी दशामें ही निद्रा टूट जाती थी, और जागनेपर भी भयका वही भाव बना रहता था, और अत्यन्त तीव्र भयके समस्त बाहरी लक्षण—जैसे, शरीरका पसीनेसे तर हो जाना, काँपना और हृदयका जोर-जोरसे धड़कना इत्यादि उसके साथ विद्यमान रहते थे। रिवर्स—

कहने की आवश्यकता नहीं कि ये स्वप्न प्रत्यक्ष ही

जाग्रतिकी ओर ले जाते हुए दिखाई देते हैं। ये निद्रा-पक्षकी पूर्ण पराजयके द्योतक हैं। इच्छा-पूर्तिके तो ये ठीक उलटे हैं, और निद्राको असम्भव बना देते हैं। ऐसे स्वप्नोंके उदाहरण अधिकतर भयानक स्वप्नोंमें ही मिलनेका कारण यही है कि 'भय' सामने आई हुई आपत्तियोंसे तुरन्त दूर भागनेकी प्रेरणा करके जीवनरक्षाको सम्भव बनाता है। वह इस उद्देश्यकी पूर्ति तभी करा सकता है, जब उसके अनुसार फौरन काम किया जाय। जीवनके लिए आशंकास्वरूप आपत्तियोंका रूप ही ऐसा है कि उनके निराकरणमें देर नहीं की जा सकती, और कोई उद्वेग या इच्छा जितनी ही तीव्र होती है, उतनी ही जल्दी वह कार्यका रूप प्राप्त कर लेती है। यही कारण है कि 'भय'की प्रेरणा अन्य सभी उद्वेगोंकी अपेक्षा स्वरूपतः अधिक बलवती होती है; परन्तु अन्य उद्वेगोंमें भी इतनी तीव्रता हो सकती है कि उनके कारण जागना अनिवार्य हो जाय। इस तरह, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हम 'स्वप्न निद्राका बाधक है' इसी पुराने सिद्धान्तका सर्वांशमें त्याग नहीं कर सके, पर वह सिद्धान्त अपूर्ण और एकांगी था। वस्तुस्थितिके एक ही पक्षका दिग्दर्शन कराता था। अब दूसरा पक्ष भी इसमें जोड़ देनेसे यह एक सर्वांगीण सिद्धान्त बन जाता है। अब यह नहीं कहा जा सकता कि स्वप्न निद्राका घातक ही है। दूसरी ओर वह निद्राका साधक भी है। निद्राभङ्ग और स्वप्नका ठीक सम्बन्ध क्या है, इस विषयके सब प्रश्न अब बेकार हो जाते हैं। एक ओर यह भी कहा जा सकता है कि स्वप्न निद्राभङ्गका कारण होता है, जैसा कि भयानक स्वप्नोंमें प्रत्यक्ष देखा गया है। अन्य बहुतसे स्वप्नोंमें जाग्रति-पक्षका जो कुछ कार्य होता है, उसपर भी यही बात लागू होती है। दूसरी ओर यह भी कहा

जा सकता है कि निद्राभङ्ग स्वप्नका कारण है। स्वप्न नं० ४ में तो यह बात बिलकुल एकांगीरूपमें देख पड़ती है, क्योंकि वहाँ स्वप्न तो निद्राभङ्गका कारण बिलकुल ही नहीं है, उलटे निद्राका साधक है। अन्य स्वप्नोंमें भी निद्रा-पक्षका जो कुछ कार्य होता है, उतने अंशके सम्बन्धमें यही बात कही जा सकती है; पर वास्तवमें ये दोनों कथन अपूर्ण और भ्रामक हैं। इनसे वस्तु-स्थितिपर पूरा प्रकाश नहीं पड़ता। क्योंकि उपर्युक्त विवेचनके अनुसार न तो निद्राभङ्ग ही स्वयंसिद्ध है, और न स्वप्न ही। इसलिए इन दोनोंका मुकाबिला ही नहीं रह जाता और इनमेंसे किसीको दूसरेका कारण कहना व्यर्थ है। प्रतिद्वन्द्विता तो जाग्रति और निद्राकी प्रेरणाओंमें है। स्वप्न केवल उनकी मध्यावस्था है, और निद्राभङ्ग भी जाग्रति-प्रेरणाका एक फलमात्र है। इसलिए निद्राभङ्ग और स्वप्न-सम्बन्धी प्रश्न ही व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार इस प्रश्नपर आश्रित अन्य प्रश्नोंका भी निपटारा हो जाता है।

उपर्युक्त स्वप्नोंसे यह बात भी स्पष्ट हो गई है कि जहाँ निद्राकी प्रेरणा प्रबल पड़ जाती है, वहाँ स्वप्न निद्राका साधक होता है, और जहाँ जाग्रतिकी प्रेरणा प्रबल पड़ जाती है, वहाँ स्वप्न निद्राका बाधक होता है। मोटे तौरसे हम यह भी देख चुके हैं कि जाग्रतिकी प्रेरणाएँ कितने प्रकारकी होती हैं। सब प्रकारकी इच्छाएँ और आशंकाएँ स्वप्नकी प्रेरक हो सकती हैं। रागद्वेषात्मक जितने उद्वेग हैं, सभी इन्हीं दोनोंके अन्तर्गत हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि कामक्रोधादि सभी उद्वेग स्वप्नमें प्रेरक हो सकते हैं। मानस प्रेरणाओंके अतिरिक्त भौतिक प्रेरणाएँ भी देखी गई हैं। इनमें भी दो भेद किये जा सकते हैं। एक तो शरीरके अन्दरसे आनेवाली, जैसे प्यास इत्यादि और

दूसरी बाहरसे आनेवाली, जैसे कोई आवाज़ इत्यादि, पर ये सब भी कोई न कोई मानसभाव या इच्छा पैदा करनेके कारण ही प्रेरक होती हैं, चाहे वह इच्छा आशामय हो या आशंका-मय। ये सब व्यावहारिक भेद हैं, और इनके अनेक उपभेद भी हैं, परन्तु संक्षेपमें स्वप्नकी प्रेरक इच्छा ही है।

यह भी स्पष्ट है कि निद्राकी प्रेरणामें जाग्रतिकी प्रेरणाकी तरह अनेक भेद नहीं होते। वह तो सभी स्वप्नोंमें एक रूपसे विद्यमान रहती है। वह स्वप्नोंका उनसे कभी अलग न होने-वाला आधार है। वह जमीन है, जिसपर स्वप्नोंका सारा खेल होता है। इस प्रकार निद्राकी प्रेरणा सर्वदा एकरस, अपरि-वर्तनशील और अचल होनेके कारण प्रेरणा ही नहीं रह जाती, और अपनी विभिन्न रूपताके कारण जाग्रतिकी प्रेरणा ही प्रधान हो जाती है। अतः जब केवल 'प्रेरणा' शब्दका प्रयोग किया जाता है, तब इसीका बोध होता है।

परन्तु स्वप्नका तात्त्विक स्वरूप समझनेके लिए निद्राकी प्रेरणाका बड़ा महत्त्व है। हम देख चुके हैं कि इसकी प्रवृत्ति प्रेरणाकी शान्तिकी ओर होती है, क्योंकि बिना इसके निद्राकी रक्षा नहीं हो सकती। वास्तवमें प्रेरणाका अभाव ही निद्राका अस्तित्व है, और जब प्रेरणा उसपर आक्रमण कर ही देती है, तब बिना उसे शान्त किये निद्राकी रक्षा कैसे हो सकती है? अतः कहना चाहिए कि निद्राकी प्रेरणाका उद्देश्य ही जाग्रतिकी प्रेरणाका शान्त होना है। यही कारण है कि स्वप्न नं० ४ में, जहाँ निद्राकी प्रेरणा शुद्ध अबाधित रूपमें दिखाई पड़ती है, केवल इच्छापूर्तिका रूप ही सामने आता है। क्योंकि जब प्रेरणाका स्वरूप जैसा कि ऊपर दिखाया गया है, इच्छा ही है, तो फिर उसकी पूर्ति किये बिना प्रेरणाकी शान्ति कैसे हो सकती

है ? इसलिए इच्छाकी पूर्तिका प्रयत्न ही निद्राकी प्रेरणा स्वरूप हो जाता है।

हम यह भी देख चुके हैं कि स्वप्न जाग्रति और निद्राकी प्रेरणाओंका संघर्ष है। यह भी देखा गया कि इन दोनोंका स्वरूप क्रमशः 'इच्छा' और 'उसकी पूर्ति' है। अतः स्वप्नमें इन दोनों पक्षोंका अभिव्यञ्जन होना ही चाहिए, पर अन्योन्य संघर्षसे इनमेंसे कोई भी अपने शुद्ध रूपमें नहीं रह पाता। इच्छाका शुद्ध रूप अतृप्त इच्छा है, यह दिखाया जा चुका है; पर वह सर्वदा अतृप्त नहीं रह पाती। कभी अतृप्त रह जाती है, और कभी तृप्त हो जाती है। इसी प्रकार इच्छाको शान्त करनेका प्रयत्न भी सर्वदा सफल नहीं होता। कभी सफल होता है, और कभी नहीं। दोनों बातोंका व्यावहारिक तात्पर्य एक ही हो जाता है, अर्थात यह कि स्वप्नमें कभी तो 'इच्छा-पूर्ति' होती है, और कभी नहीं। कमसे कम लाघवके लिए तो हम दोनों पक्षोंको एक पक्षके शब्दोंसे व्यक्त कर ही सकते हैं, क्योंकि एक पक्षकी सफलता ही दूसरेकी विफलता है। इसलिए जहाँ स्वप्न निद्रा-पक्षको सर्वथा पराभूत करके जाग्रतिका सहायक होता है, वहाँ हम जाग्रति-प्रेरणाकी सफलता न कहकर निद्रा, या इच्छा-पूर्तिके प्रयत्नकी विफलता भी कह सकते हैं। इस प्रकार 'स्वप्न इच्छा-पूर्तिका प्रयत्न है।' यह दूसरी बात है कि वह अपने कार्यमें सफल हो, या न हो।

इतना तो हम दिखा चुके कि इच्छाएँ स्वप्नकी प्रेरक होती हैं, और उनकी पूर्तिका प्रयत्न ही स्वप्नका स्वरूप है। अब प्रेरणा-पक्षमें यह देखना रह जाता है कि कौन कौनसी इच्छाएँ स्वप्नमें प्रेरक होती हैं। प्रेरणाओंके तीन बड़े वर्ग तो गिनाये जा चुके, पर इनके उपभेदोंको विस्तारसे जानना भी स्वप्नके पूर्ण ज्ञानके

लिए आवश्यक है। खासकर पहले वर्ग, अर्थात् मानस इच्छाओंके सम्बन्धमें यह जानना बाकी है कि किस प्रकारकी इच्छाएँ स्वप्नमें आती हैं। इतना तो अवश्य जान पड़ता है कि जो इच्छाएँ जाग्रतिकालमें पूरी नहीं हो सकी हैं, वही स्वप्नमें आ सकती हैं; क्योंकि वही अपने आवेगसे मनको उद्विग्न किये रहती हैं, उसे कोंचती रहती हैं। स्वप्न नं० ४ में हमें इस बातका आभास मिल चुका है; परन्तु यह बात अभी बिलकुल साफ नहीं हुई है। जाग्रतिमें वे क्यों पूरी नहीं हो सकीं? केवल समय न मिलनेके कारण? या अन्य आवश्यक कार्योंकी वजहसे रुक जानेके कारण? या ख़याल न होनेके कारण? या असम्भव होनेके कारण? या किसी विरोधी इच्छाके कारण? ये इच्छाएँ कभी पूरी हो भी सकती हैं, या नहीं? और क्या इन कारणोंका भी स्वप्नसे कुछ सम्बन्ध है? एक ही प्रेरणा होते हुए भी विभिन्न व्यक्तियोंको, अथवा एक ही व्यक्तिको भिन्न भिन्न स्वप्न क्यों होते हैं? इस प्रकारके अनेक प्रश्न उठते ही हैं।

दूसरी ओर यह जानना बाकी रह जाता है कि स्वप्नकी कार्य-प्रणाली क्या है, उसके पास अपनी प्रयोजन-सिद्धिके लिए क्या क्या साधन हैं, अथवा उसके साधनोंका इच्छा पूर्तिमें कुछ उपयोग है, या नहीं। उसके एक तरीकेका उल्लेखमात्र ऊपर हो चुका है, अर्थात् घटनाओं और विचारोंका रूपकमें व्यक्त होना। ऐसी विशेषताओंके अतिरिक्त स्वप्न उन साधारण तरीकोंसे भी भी काम लेता है, जिनसे हम जाग्रत्-जीवनमें काम लेते हैं, जैसे विचार इत्यादि। क्योंकि आखिर जब स्वप्न जाग्रति और निद्राकी मध्यावस्था है, तो दोनोंके गुण उसमें मिलने ही चाहिएं। इस बातसे यह भी सङ्केत मिलता है कि स्वप्नकी जो

विशेषताएँ हैं, वह निद्राके प्रभावके कारण हैं, और वे हमें इसीलिए विशेषताएँ जान पड़ती हैं कि जाग्रत् व्यावहारिक जीवनमें हमें उनसे काम नहीं पड़ता। स्वप्नकी सारी विचित्रता और उसको समझनेकी सारी कठिनाइयाँ इन्हीं विशेषताओंके कारण हैं। निद्राके प्रभावसे किस प्रकार इन विशेषताओंकी उत्पत्ति होती है, और ये कितने प्रकारकी हैं, इस बातको बिना जाने स्वप्नकी मीमांसा नहीं हो सकती। अगले अध्यायोंमें इन्हीं बातोंकी समीक्षा होगी।

(२)

स्वप्न की कार्यप्रणाली

कल्पना कीजिये कि सृष्टिके आदिमें मनुष्यको स्वप्न नहीं आते थे। अभी तक स्वप्नकी सृष्टि ही नहीं हुई थी। उस समय मनुष्यकी क्या दशा होगी। कोई व्यक्ति दिन भर आहारकी प्राप्तिके लिये परिश्रम करता रहा, अन्तमें उसका शरीर अधिक परिश्रम न कर सकता था। उसे विश्रामके द्वारा अपनी शक्तिको फिरसे ताजा करनेकी आवश्यकता हुई। दिन भरके काममें शरीरको जो क्षति पहुँची थी उसकी पूर्ति अनिवार्य हो गई। इसी बातकी शरीरने थकावटके रूपमें सूचना दी। उधर दिनका प्रकाश भी जाता रहा। आहारान्वेषणके लिये समय भी उपयुक्त न रहा। मनुष्यने स्वभावतः निद्रा देवीकी शान्तिमय गोदमें अपनी झंझटोंसे छुटकारा लिया। अपनी सारी चिन्ताओंको भुला दिया। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय ही न रहा। और यदि सारी प्रकृति उसके साथ ही सो जाती तो इसमें कोई हर्ज भी न था। उसके समान प्रकृति वाले मनुष्य तथा अन्य प्राणी सो भी गए, क्योंकि परिश्रम उनके लिये प्रकाश रहते हुए ही अधिक स्वाभाविक था। समान इच्छा वाले होनेके कारण जीवन संग्राममें इन्हींके साथ उसकी प्रतिद्वन्द्विता विशेष रूपसे थी। इस तरह उसकी बहुत सी चिन्ताओंका कारण भी जाता रहा। किन्तु संसारकी तो सृष्टि ही द्वन्द्वात्मक है। कुछ प्राणियोंको रात्रिमें ही अधिक

प्रकाश और अवकाश मिलता है। और भिन्न प्रकृति होनेके कारण यही प्राणी मनुष्यके सबसे बड़े दुश्मन थे। उन्हें उससे कोई सहानुभूति न थी, न उसकी कोई आवश्यकता थी। ऐसी अवस्थामें उसका एकान्त निन्द्रामें मग्न हो जाना आशंकारहित न था। और जो व्यक्ति ऐसी नींद सोया वह अवश्य ही इस संग्राममें पराजित हुआ, और उसकी वंश परम्परा भी उसके साथ ही नष्ट हो गई। इस मैदानमें सफल होनेकी एक ही शर्त थी और उसे पूरा करना अनिवार्य था। मनुष्य इन रात्रिकी आपत्तियोंसे अपने जीवनकी रक्षा तभी कर सकता था जब उसे निद्रा कालमें भी उनकी सूचना मिल जाय। पास आती हुई विपत्तिका आभास हो जाय। अर्थात् कमसे कम उन शब्दादिकोंको ग्रहण करनेकी शक्ति उसमें शेष रहे, जिनसे उसके जीवनके लिये आशंका स्वरुप आपत्तियोंका संकेत मिलता है। संक्षेपमें आशंकाओंके प्रति सचेत रहना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त क्रमशः अपनी अन्य आवश्यकताओंके प्रति जाग्रत् रहना भी यदि जीवनरक्षाके लिये नहीं, तो दूसरोंसे आगे बढ़ जानेमें अवश्य ही उपयोगी सिद्ध हुआ होगा। जो व्यक्ति इस प्रकार अपनी जातिके अन्य व्यक्तियोंसे बाज़ी ले गया होगा संसारमें सबसे अधिक उसी का स्थान सुरक्षित होगा और उसी की सन्ततिपरम्पराको स्थायी होनेका अधिकतम अवसर प्राप्त हुआ होगा।

इस शर्तको पूरा करनेका साधन भी मनुष्यकी प्रकृतिमें ही मौजूद था। इच्छाएँ स्वभावसे ही जाग्रतिपरक होती हैं और आशंकाओंमें तो सचेत करनेका गुण विशेष रूपसे होता है। जाग्रत् कालमें जिस आशंकाका निराकरण नहीं हुआ है, अथवा जिस इच्छाकी पूर्ति नहीं हुई है, वह निद्राकालमें भी

चेतनाको चैन नहीं लेने देती। उसे विचलित कर ही देती है। किन्तु यदि प्रत्येक इच्छा और आशंका मनुष्यको जगा ही दिया करती, तब तो निद्राका उद्देश्य ही निष्फल हो जाता। जो व्यक्ति ऐसे रहे होंगे अवश्य ही शरीरकी मरम्मतके लिये पर्याप्त अवकाश न मिलनेके कारण कुछ दिनोंमें नष्ट हो गए होंगे। सौभाग्यवश निद्रा भी बिलकुल अपने वशकी बात नहीं थी। मनुष्य कुछ जानबूझकर या इच्छापूर्वक नहीं सोया था। इसके लिये भी उसे विवश होना पड़ा था। यह प्रकृति भी उसके स्वभावमें ही थी। इस ओर इच्छाएँ और आशंकाएँ अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये मनुष्यको जगाना चाहती थीं। उधर निद्राकी प्रेरणा उसे सुलाना चाहती थी। दोनोंके संघर्षका फल यह हुआ कि न तो इच्छाएँ और आशंकाएँ उसे बिलकुल जगा ही सकीं और न निद्राकी प्रेरणा बिलकुल सुला ही सकी। फलतः एक अर्द्धचेतनावस्थाका प्रादुर्भाव हुआ, जो निद्रा और जाग्रति, चेतन और अचेतन, अवस्थाओंकी मध्यावस्था थी। इसीका नाम स्वप्न हुआ। इसमें दोनों अवस्थाओंकी सन्धि थी। किन्तु यह सन्धि स्थायी न थी। यह शान्तिकी सन्धि न थी, बल्कि युद्धकी सन्धि थी। अर्थात् युद्धमें प्रत्येक पक्षका दूसरे पक्षके द्वारा आंशिक गत्यवरोध मात्र था। इसका कदापि यह तात्पर्य न था कि अन्तमें कोई एक पक्ष दूसरे पर विजय न प्राप्त कर लेगा। अन्तिम निर्णय तो पक्षोंकी निर्बलता प्रबलता पर ही अवलम्बित था। यदि निद्रा पर आक्रमण करने वाली इच्छा या आशंका प्रबल पड़ी तब तो यह अर्ध चेतनाकी अवस्था पूर्ण चेतनामें परिणत हो गई और यदि वह निर्बल पड़ी तो अचेतनावस्थामें लीन हो गई। इस प्रकार दोनों अवस्थाओंकी इस क्षणिक सन्धिने चेतनाके लिये एक मध्यस्थ या प्राइवेट सिक्रेटरीका

काम दिया, क्योंकि इस प्रकार जो इच्छाएँ या आशंकाएँ जीवनके लिये अधिक महत्वकी होनेके कारण अधिक प्रबल थीं वही चेतना तक पहुंच सकीं। अन्य साधारण इच्छाओं और आशंकाओंको—जिनका महत्व कम था—इस अव्यस्थने स्वयं ही अपने उचित और मोहक व्यवहारसे तृप्त कर दिया। निद्रा भङ्गका कोई कारण नहीं रहा। अर्द्धचेतनावस्थाका गुण अथवा दोष यही है कि वह कल्पना और वस्तुस्थितिमें, वर्तमान और भविष्यमें, विवेक नहीं कर सकती। वस्तुतः विवेकसे ही चेतनाकी मात्रा नापी जाती है। अपूर्ण चेतनामें भेद भाव या वैषम्य कम होता है। समताका प्राधान्य होता है। "साम्यंलयः वैषम्यं सृष्टिः।" इस अर्ध चेतनाके सामने इच्छाओं या आशंकाओंका जो अप्राप्त उद्देश्य उपस्थित था, उसे उसने प्राप्त समझ लिया। इच्छाओं और आशंकाओंसे प्रेरित इष्ट सिद्धिके काल्पनिक चित्र और उसकी वास्तविक सिद्धिमें भेद करना असम्भव हो गया। जिस इष्टको प्राप्त करना था वह अब प्राप्त दिखाई पड़ा। अब भी बच्चोंके स्वप्नमें यह गुण बड़ी स्पष्टता और सरलतासे दिखाई पड़ता है। उदाहरण लीजिए—

(१) एक छोटी लड़की मिस्रीके लिये रोते रोते सो गई। दूसरे दिन जागनेपर रोने लगी। कारण पूछनेपर उसने कहा—"कोई मेरा डब्बा भर चाकलेट-बादाम उठा ले गया, जो विस्तर पर मेरे पास था।" इस लड़कीकी उमृ दो वर्षसे कुछ ही अधिक थी। और वह कठिनाईसे बोल पाती थी। अवश्य ही उसने यह स्वप्न देखकर अपनी इच्छा तृप्तकी थी कि वह एक बड़े डब्बेमें भरा हुआ चाकलेट लिये हुए है, और स्वप्न और जाग्रतिका विवेक न कर सकनेके कारण जागनेपर रोने लगी थी। (त्रिल)

(२) एक तीन वर्षकी लड़की पहिली ही बार झीलमें

नाव पर सैर करनेको ले जायी गई। उसे इसमें इतना आनन्द आया कि वह नावसे उतरती ही नहीं थी और जब उतारी गई तो रोने लगी थी। दूसरे दिन सवेरे उसने कहा—"आज रातको नावपर झीलमें मैं सैर कर रही थी।" (फ्रायड)

बच्चोंमें ऐसे स्वप्नोंकी प्रधानता होनी ही चाहिये। क्योंकि उनके मनकी गति ठीक वैसी ही होती है, जैसी आदिम मनुष्यके मनकी। आखिर आदिम मनुष्यकी स्थिति भी मनुष्य जातिका बचपन ही तो थी। मनुष्यकी चेतना अभी उद्‌बुद्ध नहीं हुई थी। इस समयकी तुलनामें उस समयकी जाग्रति भी अर्द्धचेतन ही थी। उस समय मनुष्यकी मनस्थितिमें जाग्रत् और स्वप्नका उतना भेद नहीं था। मनुष्यकी इच्छाएँ जटिल नहीं थीं। उनमें पारस्परिक विरोध नहीं उत्पन्न हुआ था। ऐसी सीधी सादी इच्छाओंको व्यक्त करनेके लिये उस समयकी विचार शैली भी पर्याप्त और अनुकूल थी। यही कारण है कि ऐसी इच्छाओंसे प्रेरित स्वप्न अब भी जाग्रतिकी नकल ही जान पड़ते हैं।

(३) दक्षिणी शीतकटिबन्धके अन्वेषक डाक्टर नारडेन्सक्योल्ड बतलाते हैं कि ध्रुवीय देशके जाड़ोंमें जो लोग उनके साथ रहते थे निरन्तर खाने पीनेके स्वप्न देखा करते थे। उनकी अन्यइच्छाएँ भी स्वप्नोंमें तृप्ति-लाभ करती थीं। उनमेंसे एकने स्वप्नमें देखा कि डाकिया उनके लिये बहुतसी डाक लाया है। (हूप)

(४) प्रो० मैकमिलनने, जो 'पीरी'के साथ उत्तर ध्रुवको गए थे, बतलाया कि स्वप्नोंमें उन लोगोंको कितना आनन्द मिला था। कारण स्पष्ट ही है। इन लोगोंको जो कि न्यूयार्कके भोजनालयोंका उपभोग किया करते थे, शीत-कटिबन्ध के सादे और सुखाए हुए भोजन पर रहना पड़ा। वे उन चीज़ोंको स्वप्नमें

देखते थे, जिनके लिए वे लालायित थे। बढ़ियाबढ़िया सिगार और हाईबाल पीते थे। (ब्रिल)

किन्तु मनुष्य जैसेजैसे प्रकृति पर विजय प्राप्त करता गया, उसकी बहुत-सी प्रारम्भिक आवश्यकताओंको अपूर्ण रहनेका अवसर कम मिलने लगा। अब ऐसी इच्छाएं साधारण अवस्थामें बहुत कुछ पूरी हो जाती हैं। किन्तु इस स्थितिमें मनुष्य अनायास ही नहीं आ गया है। इन प्रारम्भिक और जीवन रक्षाके लिये अनिवार्य इच्छाओंकी पूर्ति और सभ्यताके निष्कंटक विकासके लिये उसे बड़ा भारी त्याग करना पड़ा है। उसे अपनी बहुत सी इच्छाओंका निरोध करना पड़ा है। उनके लीलाक्षेत्रको सीमाबद्ध कर देना पड़ा है। बहुधा इन्हें तृप्तिसे वञ्चित ही रह जाना पड़ता है। सामाजिक जीवनमें व्यक्तिकी इच्छाएँ स्वच्छन्द विलास नहीं कर सकतीं। इसी तत्त्व पर समाज के शासन और व्यक्तिकी समाज-भक्तिका आधार है। इस समाज-भक्तिके अन्तर्गत वे सभी भय और आशाएँ सन्निहित हैं, जो व्यक्तिको समाजसे तथा समाजके अन्य व्यक्तियोंसे हो सकती हैं। इन सामाजिक इच्छाओं और व्यक्तिगत इच्छाओंके विरोधके कारण, स्वार्थ और परार्थके संघर्षके कारण व्यक्तिमें एक अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है। इच्छाओंके पारस्परिक विरोधसे उसके मनोभावोंमें जटिलता आ जाती है। इस विरोधका फल यह होता है कि बहुत सी इच्छाओंका जाग्रत्-जीवनमें दमन किया जाता है। और यही इच्छाएँ स्वप्नमें आती हैं। इसलिये स्पष्ट है कि विकसित मनुष्यके स्वप्नोंमें ऐसी इच्छाओंका प्राधान्य होगा, जो आन्तरिक विरोधके कारण जाग्रत्-कालमें कार्यान्वित नहीं हो सकी हैं, चाहे इन इच्छाओंका आरम्भ ही पूर्व दिनके किसी अनुभवसे हुआ हो अथवा ये प्राचीन हों, और पूर्व दिनकी किसी घटनासे उद्बुद्ध-

मात्र हो गई हों। किन्तु इच्छाओंका निग्रह, उनकी उपेक्षा और बहिष्कार कर्मों तक ही सीमित नहीं है। उसका क्षेत्र चेतना तक पहुंचता है। उन पर ध्यान तक नहीं दिया जाता। अर्थात् उन्हें अव्यक्त अथवा तिरोहित कर दिया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि यह निग्रह भी सामाजिक जीवन और अन्तर्द्वन्द्वके विकासका अनुगामी होनेके कारण विकसित चैतन्य अर्थात् जाग्रति-कालका ही सहचर है। और इसलिए स्वप्नकी अर्द्ध चेतनावस्थामें इसका उतना प्रभुत्व नहीं रहता। यदि ऐसा न होता तो निगृहीत इच्छाएँ स्वप्नमें भी चेतनामें प्रवेश ही न पा सकतीं। किन्तु निग्रह-शक्तिके प्रभावका सर्वांशमें लोप भी नहीं हो जाता। स्वप्नमें भी इच्छाओंकी बिलकुल नग्न क्रीड़ा नहीं हो पाती। इन्हें सीधे मार्गको छोड़ कर वक्र गति, वक्रोक्ति, व्यंग्योक्ति, गूढ़ोक्तिका आश्रय लेना पड़ता है। उन्हें अपना वेश बदलना पड़ता है, जिससे उनका सच्चा स्वरूप, उनका अवांछनीय वीभत्स स्वरूप पहिचाना न जा सके, उनकी प्रवृत्ति अत्यन्त स्पष्ट न हो जाय, और सभ्यता तथा संस्कृतिको चोट न पहुंचे।

दूसरी ओर संस्कृतिके विकासके साथ साथ जीवन भी जटिल होता गया। इच्छाओं और स्वार्थोंकी जटिलताके ही कारण जीवन जटिल हुआ। किन्तु जीवनकी जटिलताने भी इच्छाओंके नानात्व और उनकी विभिन्नतामें असीम वृद्धि कर दी और इन्हें व्यक्त करनेके प्रयत्नमें विचारोंका और भाव-व्यञ्जन शैलीका भी समानान्तर विकास हुआ क्योंकि इस समयके विचारों और इच्छाओंकी जटिलताके अभिव्यञ्जनके लिए पुरानी विचारशैली बिलकुल ही अनुपयुक्त है। चैतन्यके विकासके कारण अचेतनावस्था और चेतनावस्था, व्यक्त और अव्यक्तका, भेद बढ़ता ही गया। यहाँ तक कि पुरानी विचार शैलीमें हम इतने

अनभ्यस्त और उससे इतने अपरिचित हो गए कि अब उसे समझना भी हमारे लिए दुरूह हो गया है। यही कारण है कि स्वप्नोंकी भाषा हमारी समझमें नहीं आती क्यों कि स्वप्नमें चैतन्यका ह्रास होनेके कारण उस प्राचीन अर्धचेतनावस्थाकी पुनरावृत्ति होती है और उसी विचार-शैलीका प्रयोग होता है जो अनुद्बुद्ध चेतनाके लिए स्वाभाविक है। इसलिये स्वप्नोंको समझनेके लिए उनका भाषान्तर करना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त इच्छाओंका रूप उपर्युक्त वेशपरिवर्तनके कारण ही अप्रत्यक्ष, गूढ़ और लाक्षणिक हो जाता है। इन कारणोंसे स्वप्नके प्रकटरूप—जिसे उसकी भाषा अथवा शब्द कह सकते हैं—और उसके आन्तरिक रूप—जिसे उसका तात्पर्य या भाव कह सकते हैं—अर्थात् उसके प्रकट अर्थ और गूढ़ार्थका विवेक कर लेना आवश्यक है। साम्यके विचारसे आगे इनका उल्लेख स्वप्नकी 'व्यक्त सामग्री' और 'अव्यक्त सामग्री'के नामसे किया जायगा।

स्वप्नके अक्षरार्थको ही तत्त्वार्थ समझ लेनेके कारण अर्थात् उसकी 'व्यक्त सामग्री' और 'अव्यक्त सामग्री'में भेद न कर सकनेके कारण ही बहुत कालसे वैज्ञानिक लोग स्वप्नको मस्तिष्कका असम्बद्ध प्रलाप और जनसाधारण उसे रहस्यमय, अलौकिक भविष्यद्वाणी समझते रहे हैं और यह स्वाभाविक ही है। उदाहरणके लिए गोस्वामी तुलसीदासका यह दोहा लीजिए :—

मास दिवसका दिवस भा, मर्म न जाना कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ, निशा कौन विधि होइ॥

जो लोग इसका अक्षरार्थ करते हैं और उसी को तत्त्वार्थ समझ लेते हैं उन्हें क्या यह एक असम्भव घटनाका प्रदर्शन न

जान पड़ेगा ? उनका इस बातको लेकर तर्कवितर्क करना कोई आश्चर्य जनक बात नहीं है कि मास दिवसका अर्थ बारह दिन लिया जाय अथवा तीस दिन ? सूर्यका रथ कितने दिन ठहरा रहा ? इत्यादि।

किन्तु अलंकार और साहित्यशास्त्र जाननेवालोंके लिए इन बातोंका कोई महत्व नहीं है। उन्हें तो स्पष्ट दिखाई देता है कि पद्य का अक्षरार्थ तो एक अलंकार मात्र है। वास्तवमें कविका तात्पर्य उस मनस्थितिका चित्रण करना है जो आनन्दके समय हुआ करती है। कौन नहीं जानता कि सुखकी घड़ियाँ छोटी होती हैं, दिन घड़ियोंमें समाप्त हो जाते हैं और महीने दिनोंमें गुज़र जाते हैं। इसी प्रकार यदि किसी हृदयहीन व्यक्तिको चाँदनीमें खड़ी किसी सौंदर्यप्रतिमाकी ओर संकेत करके कहा जाय—

कनक लता पर चन्द्रमा धरे धनुप द्वै बान।

तो अधिक सम्भव यही है कि वह चन्द्रकिरणोंके सिरपर स्थित चन्द्रमा और उसकी कालिमाको अपनी कल्पनासे विकृत करके इस पद्यार्थका प्रत्यक्ष दर्शन करने लगे। वहुतसे उदाहरण देना व्यर्थ है। आदिमें मनुष्यकी अनुद्बुद्ध चेतनाके अनुकूल रचे हुए पौराणिक रूपकोंका तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थोंका अक्षरार्थ करके कितनी प्रवंचना और कितना अनर्थ किया जाता है, कितना अंधकार फैलाया जाता है, यह किसीसे छिपा नहीं है। यहां पर इस विपयके विस्तारके लिए स्थान नहीं है। इतना ही दिखलाना अभीष्ट है कि स्वप्नमें प्रकटरूपसे जो वस्तुएँ अनुभवमें आती हैं वे तो उसकी सामग्रीमात्र हैं जिसका वह अपनी कार्य प्रणालीके अनुसार अपनी इष्टसिद्धिके लिए उपयोग करता है। इसे ही सब कुछ समझ लेनेके कारण अब तक

वैज्ञानिक लोग स्वप्नको असम्बद्ध स्मृतियोंका उन्मत्त ताण्डवमात्र समझते रहे हैं और उसे सम्बद्ध मानसिक व्यापारोंकी कोटिसे सर्वथा वहिष्कृत रखते आये हैं। इसी कारण उनका यह विचार रहा है कि जीवनसे स्वप्नका कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु स्वप्नके आंतरिक विचारों और भावोंके निरीक्षणसे ज्ञात होता है कि स्वप्नके विचार भी जाग्रत् जीवनके विचारोंकी परम्परासे सर्वथा अविच्छिन्न और अव्यवहित रूपसे उसी संततिमें हैं। यह भी उसी अनवरत शृङ्खलाके एक अंग हैं जो जाग्रत् कालमें दिखाई देती है और उसी प्रकार पूर्वजीवनके अनुभवोंसे नियंत्रित और कार्यकारण सम्बन्धमें बँधे हुए हैं। किन्तु जो व्यक्ति अलंकारोंके प्रयोगसे परिचित नहीं है, जिसे यह नहीं मालूम है कि किन किन सिद्धान्तोंके अनुसार अलंकृत भाषाका निर्माण होता है वह ऐसी भाषाके गर्भसे उसके मूल तात्पर्यको नहीं निकाल सकता। इसी प्रकार स्वप्नकी अव्यक्त सामग्री पर पहुंचनेके लिए उसकी कार्य प्रणालीका ज्ञान आवश्यक है। यह ऊपर दिखाया जा चुका है कि स्वप्नकी विचारशैली उन अवस्थाओंकी विचारशैली है जिनमें चेतना अनुद्बुद्ध रहती है, जैसे व्यक्ति, अथवा समाजका बाल्यकाल इत्यादि। अतः इन अवस्थाओंकी तुलनासे हम उसे समझ सकते हैं।

स्वप्नकी दृश्यात्मक वृत्ति

इस बातको समझनेमें किसीको कठिनाई न होगी कि अमूर्त वस्तुका ज्ञान मूर्त वस्तुके ज्ञानसे, अदृश्यका दृश्यसे, निर्गुणका सगुणसे, कठिन होता है। सबसे सरल रीतिसे, सबसे पहिले, और सबसे अधिक मूर्त वस्तुएँ ही हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं।

पराञ्चिखानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्"

अतीन्द्रिय पदार्थका ज्ञान इन्द्रियगोचर पदार्थके ज्ञानसे कठिन है। विस्तारसे इसका कारण समझानेके लिए शुष्क और जटिल दार्शनिक तर्क-वितर्कके क्षेत्रमें प्रवेश करना होगा। इसलिए यहाँ संक्षेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि जीवनके आरम्भमें चेतना बहिर्मुखी होती है। वह बाहर अपनेको प्रकाशित करना चाहती है और उसके बाहर निकलनेके लिए इन्द्रियाँ ही द्वार हैं। (मूर्त संयोगके लिए चेतनाको स्वयं संकुचित होना पड़ता है। इन्द्रियाँ मूर्त और अमूर्तका संयोजक प्रयत्न हैं।) इसीलिए इन्द्रियोंका ही प्राधान्य होता है। इन्द्रियोंमें भी आँखका सबसे अधिक प्राधान्य है और वह इसीलिए कि इसमें बहिर्मुखताकी पराकाष्ठा है।

अन्य इन्द्रियोंके ज्ञानसे कल्पनाके मूर्त होनेमें कमी रहती है, क्योंकि इनके विषय अन्य विषयों और अन्य कारणकी आकांक्षा रखते हैं। शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध; सभी गुण-रूप हैं। इससे स्वयं सिद्ध न होनेके कारण किसी अन्य वस्तुकी ओर संकेत करते हैं। किन्तु रूपकी प्राप्तिके साथ ही हम उस द्रव्यको पा

जाते हैं जिसके आश्रित यह सब गुण रहते हैं, जिससे हम अन्य चारोंको प्राप्त कर सकते हैं। दृष्टिगोचर वस्तुमें शब्दादिक सभी रहते हैं किन्तु श्रोत्रादिक इन्द्रियाँ केवल एक गुण प्राप्त कराती हैं। इतनेसे ही हम वस्तुपर प्रभुत्व नहीं प्राप्त कर सकते, न स्वार्थसाधन कर सकते हैं जो वहिर्मुखी चेतनाका मूल गुण है। इसलिए दृष्टिगोचर वस्तुकी प्राप्तिमें पाँचों इन्द्रियोंका सार्थक्य है। इस प्रकार मानों वहिर्मुखी चेतनाको अपने पाँचों द्वारोंसे फूटकर बाहर निकल पड़नेका अवसर मिल जाता है। इसलिए आँख ही सर्वप्रधान इन्द्रिय है। स्वार्थसिद्धिका सबसे अव्यवहित और तात्कालिक साधन होनेके कारण सब प्रकारके ज्ञानमें चक्षुर्ज्ञानमें ही जीवकी सर्वप्रथम प्रवृत्ति होती है। ज्ञानका प्रारम्भिक रूप चक्षुर्ज्ञान ही है। इसी कारण अबतक देखनेका अर्थ जानना, समझना होता है। भाषाकी उत्पत्तिके इतिहाससे भी यही बात ज्ञात होती है। पिछड़ी हुई सभ्यताएँ चित्रलिपिका प्रयोग करती हैं। व्याकरणमें पहले पहल पदार्थवाचक संज्ञाका ही प्रकरण आता है। इसके पश्चात् गुण, कर्म और मनोभावोंकी द्योतक भाववाचक संज्ञाका स्थान है। बच्चा पहले पहल मूर्त्त वस्तुओंका ही नाम सीखता है। उसकी भाषाका आरम्भ इन्हींसे होता है। यह बात नहीं कि उसे भावोंका अनुभव नहीं होता किन्तु वह इन्हें मूर्त्त वस्तुओंसे अलग नहीं समझता। यदि उसे प्यास लगती है तो पानीके बर्तनकी ओर संकेत करता है। इसी प्रकारकी भाषा दृश्यात्मक होती है। इस बातमें यह दृश्य कलाओंकी तरह होती है जैसे चित्रकला, मूर्ति-निर्माण आदि। दृष्टिगोचर विषयोंके भी दो वर्ग हैं, मूर्त्त वस्तु और क्रिया। आँखसे इन दोनोंका ज्ञान होता है। अतः

इन दोनोंका व्यञ्जन प्रारम्भिक है। प्रारम्भिक अवस्थाओंमें इन दोनोंसे ही सब भाव व्यक्त किये जाते हैं। अब तक भी यही दोनों—संज्ञा और क्रिया—वाक्यके आवश्यक अङ्ग हैं। कुशल अध्यापक बच्चोंको क्रियावाची शब्दोंका अर्थ वैसी क्रिया करके और पदार्थवाची शब्दोंका अर्थ चीजें दिखलाकर समझाते हैं। जिन वस्तुओंसे इच्छा तृप्त होती है, वे ही उस इच्छाको जगाती हैं। अतः इच्छाके द्योतनके लिए वे ही सबसे अधिक सहज और तात्कालिक साधन हैं। इसी प्रकार किसी इच्छाकी तृप्तिके लिए जो कर्म करना आवश्यक होता है वह उसकी तृप्तिका बोधक होता है। जबतक बच्चेको कर्म नहीं करने पड़ते, तबतक तो वह प्रायः प्यासका बोध पानीसे कराता है पर जब वह स्वयं कर्मशील होता है तब पानी पीनेकी क्रियाका मुँह या हाथसे अनुकरण करके उसकी तृप्ति चाहता है। संक्षेपमें मूर्त्त वस्तुओं और क्रियाओंकी प्रधानताके कारण स्वप्नकी भाषा क्रमशः दृश्यात्मक और नाटकीय हो जाती है जिससे उसकी कार्यप्रणाली दृश्य कलाओं—जैसे चित्रकला, मूर्त्तिनिर्माण और विशेषकर सिनेमा—के सदृश हो जाती है, क्योंकि सिनेमा शुद्ध रूपसे दृश्यात्मक होता है। इस प्रकारकी कार्यप्रणालीका दोषयुक्त और अपूर्ण होना अनिवार्य है। इसकी सीमाएँ निर्दिष्ट हैं। इतिहासके प्रारम्भिक कालकी कुछ सीधी सादी इच्छाओं या स्थितियोंके द्योतनके लिए तो यह अनुकूल है किन्तु इस समयकी इच्छाओं और विचारोंकी जटिलताका पूर्णरूपसे प्रतिपादन करनेमें यह असमर्थ है। कुछ बातोंका तो यह चित्रण कर ही नहीं सकती और कुछका इस प्रकार ही कर सकती है कि श्लिष्टता आ जानेके कारण उसका तात्पर्य समझनेमें कठिनाई हो और दूसरी बातोंसे उसका

तात्पर्य निकालना पड़े। इस प्रणालीसे जिन मानसिक व्यापारोंका सीधे तरीकेसे चित्रण नहीं हो सकता, उनके व्यञ्जनके लिए इसे विशेष उपायोंका प्रयोग करना पड़ता है। इसी शक्तिके प्रभावसे अव्यक्त सामग्री (जिन मानस व्यापारोंका चित्रण करना है) में एक प्रकारका चुनाव हो जाता है। क्योंकि जिस प्रकार चित्रकारको अमूर्त भावोंका व्यञ्जन प्रकारान्तरसे करना पड़ता है, उसी प्रकार नाटककारको अपनी सामग्रीका चुनाव और रूप परिवर्तन करना पड़ता है; जैसे उसे वरसोंको घन्टोंमें संकुचित करना पड़ता है, इत्यादि। इसी प्रकार स्वप्नमें भूत और भविष्य हमारे सामने वर्तमान कर्मके रूपमें आते हैं, जैसे पुरानी इच्छा किसी वर्तमान स्थितिमें तृप्तकी जाती है। विस्तार-भयसे इस प्रणालीके प्रत्येक अंगकी अन्य व्यापारों के साथ समता नहीं दिखाई जा सकती। इसलिए मूल प्रणालीकी समानताका संकेत कर देनेके वाद संक्षेपसे सीधे स्वप्नमें ही इसका प्रयोग दिखा देना उपयुक्त जान पड़ता है।

किसी भावका मूर्त्त व्यञ्जन उस भावको जगानेवाली वस्तुसे होता है (जिस वस्तुका उपभोग सुखमय होगा वह प्रवृत्यात्मक इच्छाको जगायेगी, जिसका अनुभव दुःखमय होगा वह निवृ-त्यात्मक इच्छाको)। कोई वस्तु किसी भावको तीन कारणोंसे जगाती है, तादात्म्यसे, समतासे और साहचर्यसे अर्थात् (१) या तो स्वयं उसने उस भावको जगाया हो, (२) या किसी ऐसी वस्तुसे उसकी समता हो जिसने उस भावको जगाया हो, (३) या वह किसी ऐसी वस्तुके साथ रही हो जिसने उस भावको जगाया हो। इन तीनों कारणोंसे ही क्रमशः तादात्म्य, रूपक और गूढ़ोक्तिकी सृष्टि होती है। यह तीनों वातें व्यक्तिके निजी अनुभवपर आश्रित हैं। अनुभव विभिन्न व्यक्तियोंका ही नहीं

बहुधा एक व्यक्तिका भी विभिन्न समयोंमें पृथक् होता है। यही कारण है कि दो चित्रकार एक ही भावको कभी एक ही तरहसे चित्रित नहीं करते। इसलिए किसी व्यक्तिके स्वप्नकी व्याख्या उसकी निजी स्मृतियोंसे ही हो सकती है। और इस तरह स्वप्नकी मीमांसा (रहस्योद्घाटन) का प्रकार यह हो जाता है कि स्वप्नकी एक एक वस्तु अर्थात् व्यक्त सामग्रीके प्रत्येक अंगको अलग अलग लेकर उसे उद्बोधक बना कर स्वप्न-द्रष्टाकी स्मृतिको जगाया जाय और उससे पूछा जाय कि बिना निरोधके स्वाभाविक रीतिसे—चित्तको बिलकुल बेलगाम छोड़ देनेपर—उस वस्तुसे उसके मनमें एकके बाद एक किन भावों या स्मृतियोंका उदय होता है। इस प्रकार अलग अलग जो सामग्री स्मृतियोंके रूपमें एकत्र होती है, उसका समञ्जस और सम्बद्ध रूप ही स्वप्नकी अव्यक्त सामग्री होता है। जिस रूपमें इनमेंसे प्रत्येकका प्रत्येक दूसरेसे मेल बैठ जाय वही उनका वास्तविक रूप है, वही स्वप्नकी व्याख्या है। चित्तको निरोध-रहित कर देनेका तात्पर्य यह है कि जाग्रत् अवस्थामें निग्रहके प्रभावसे वही विचार हमारे मनमें उदय नहीं होंगे जो निग्रहके तिरोभावके कारण स्वप्नमें आसानीसे उद्बुद्ध हो जाते हैं। इस तरीकेसे हम अंशतः अपनेको इच्छापूर्वक स्वप्नावस्थामें लाते हैं।

(१) ब्रिल महोदय लिखते हैं कि एक बहुत ही उत्साही और बुद्धिमती महिलाने अपना एक स्वप्न इस प्रकार बताया है—

"मैं रेलगाड़ीमें थी, और मेरा एक बच्चा—कम्बलमें लिपटा हुआ—तथा एक हब्शी दाई मेरे पास थी। बच्चा बिस्तरके पायताने सो रहा था। मैं बिस्तरपर थी। दाई सामने एक बेञ्च-पर बैठी थी। बहुतसे लोगोंकी एक पूरी भीड़ किसी क़बसे आयी। मैंने कहा मुझे बच्चेकी देखरेख करनी है। मैंने इस

विचारसे बच्चेकी ओर देखा कि देखूँ वह जाग रहा है या नहीं क्योंकि इस समय वह बहुत शान्त था। मैंने देखा कि उसका चेहरा वयस्क मनुष्यका है। उसने मेरी ओर मुस्कराकर कहा—मैं ठहर सकता हूँ, मुझे भूख नहीं लगी है।"

यह स्वप्न उक्त महिलाको बहुत ही विचित्र तथा हास्यजनक जान पड़ा। इसका उल्लेख करनेके बाद वे हँसीं और कहा "कैसा कौतुकपूर्ण स्वप्न है, देखूँ आप इससे क्या निकालते हैं।"

स्वप्नतत्त्वका यह सिद्धान्त है कि स्वप्न मूर्त रूपमें पूर्व दिनकी अतृप्त इच्छाकी तृप्तिका प्रयत्न करता है। यह इच्छा अवश्य ही उसी दिनके किसी न किसी अनुभवसे जगी होगी, इसलिए स्वप्नमें कोई न कोई वस्तु अवश्य होगी जिसका पूर्व दिनके किसी अनुभवसे कुछ सम्बन्ध हो और उस इच्छाको मूर्त रूप देनेका सबसे निकट प्राप्त साधन वही मूर्त वस्तु या स्थिति है जो उस अनुभवका अङ्ग हो। यदि वह इस कामके लिए अधिक उपयुक्त न हो तभी उससे जगनेवाली अन्य स्मृतियाँ भी जो उस कार्यके लिए अधिक उपयुक्त हों, स्वप्नकी व्यक्त सामग्रीमें स्थान पा सकती हैं। ये स्मृतियाँ सारे पूर्व जीवनके किसी भी अनुभवसे ली जा सकती हैं।

उन महिलाने बतलाया कि स्वप्न देखनेके पूर्वकी सन्ध्याको उन्होंने एक सज्जनको निमन्त्रित किया था, जो उस क्लबमें व्याख्यान दे रहे थे जिसका उल्लेख हम स्वप्नमें पाते हैं। यह एक सभा थी जिसे इन महिलाने लगभग बीस वर्ष पहले 'बाल्या-वस्था' सम्बन्धी गवेषणाकी उन्नतिके लिए स्थापित किया था। इस संस्थासे सम्बन्ध रखनेवाले कर्तव्योंके पालनमें उन्हें बहुत समय और ध्यान देना पड़ता था। अधिकतर कामोंका भार उन्हींके सिर पड़ता था जिससे वह निरन्तर झंझटोंमें व्यस्त

रहती थीं। उक्त निमन्त्रित सज्जनके सत्कारका कार्य निवटा कर उन्होंने निवृत्तिकी साँस ली और अपने पतिसे अपने दुर्भाग्यका रोना रोने लगीं। इसपर पतिने कहा कि अब तो प्रायः वह समय आ गया है जब उन लोगोंको इस कार्यका भार किसी अन्य व्यक्तिके हवाले कर देना चाहिए। यह सभा अब काफी प्रौढ़ हो गयी है और मेरे विचारमें तुम्हारा स्थान लेनेके लिए बहुतसे लोग लालायित होंगे। उन महिलाकी भी यही इच्छा थी। अब कदाचित् हमें यह समझनेमें कठिनाई न होगी कि स्वप्नमें इसी इच्छाका चित्रण बड़ी विचित्र रीतिसे हुआ है। वह बच्चा यही संस्था है जो 'बच्चों' के अध्ययनके लिए थी और जिसे उन महिलाने 'जन्म' दिया था। इस प्रकार इस संस्था और बच्चेमें 'साहचर्य' और 'साम्य' दोनों सम्बन्ध विद्यमान थे। पतिके द्वारा उस संस्थाके सम्बन्धमें प्रयोग किये हुये 'प्रौढ़' शब्दमें भी 'बच्चे'-का रूपक प्रच्छन्नरूपसे विद्यमान है। अब देखिये स्वप्नमें उक्त महिलाकी इच्छापूर्ति किस प्रकार हुई है। उनका संस्थारूपी बच्चा बिल्कुल शान्त है। जरा भी शोरगुल या उपद्रव नहीं मचा रहा है। यहाँतक कि उसके जाग्रत् होनेमें उन्हें कुतूहल और सन्देह होता है। यहाँपर उनकी इस इच्छाका सङ्केत मिलता है कि 'संस्था उनको इतना परेशान न करती और उनका इतना समय न लेती।' इसके बाद जब वह बच्चेकी ओर देखती हैं तो उसका चेहरा वयस्क प्रौढ़ मनुष्यका दिखायी देता है अर्थात् बच्चा बड़ा हो गया है। वह स्वयं कहता है 'मैं ठहर सकता हूँ, भूखा नहीं हूँ।' अर्थात् बच्चेको उनकी अनवरत शुश्रूषा और निगरानीकी आवश्यकता नहीं है। तात्पर्य यह कि संस्थाको निरन्तर उनकी देखरेखकी आवश्यकता नहीं है। यहाँ हम पतिके इस आशयको मूर्तरूपमें देखते हैं कि 'सभा प्रौढ़ हो गयी

है, अब तुम्हारे बिना भी उसका काम चल सकता है।'

(२) एक मनुष्यने अपना एक स्वप्न इस प्रकार बताया। "मैं अपने एक साझेदारके साथ किसी कारबारके सम्बन्धमें कोई बात तै करने बैठा था। मैंने उसकी बात शांतिपूर्वक सुननेके बाद कहा 'उसे तुम मेरे ऊपर नहीं रख सकते'। मेरे इस कथनका कारण यह था कि उसने अपना पैर मेरे घुटनेपर रख दिया था। मैंने उसका पैर पकड़ लिया और उसे घुमाकर ठीक उसके सरपर ले जाकर पटक दिया। वह सरके बल जमीनपर गिरा और उसकी गर्दन टूट गयी। वह मर गया। तब मैं बाहर निकलकर अपनी माँके पास चला आया क्योंकि मैं बहुत ही डर गया था। मुझे आशंका थी कि मैं गिरफ्तार हो जाऊँगा।" (ब्रिल)

इस स्वप्नको देखनेवाला मनुष्य एक अफसर था जो हाल हीमें युद्धसे लौटा था। उससे मालूम हुआ कि वह व्यापारके लिए नये साथी ढूँढ़ रहा था क्योंकि उसके पुराने साथी उसके इच्छानुकूल नहीं थे। उसका विचार था कि अब जब कि वह वापस आ गया है नये सिरेसे, पहलेसे अच्छे प्रकारसे कार्यारम्भ करनेका उपयुक्त अवसर आ गया है। एक भावी साझीदारसे उसकी एक नये व्यायापारके सम्बन्धमें बातचीत हुई थी, वही बातचीत इस स्वप्नमें प्रेरक हुई थी।

स्वप्नके कार्य अर्थात् साझेदारको पटककर उसका सर तोड़ देनेके सम्बन्धमें प्रश्न करनेपर स्वप्न-द्रष्टाने बताया कि इस बातसे उसे एक ही स्मृति आती है। जब वह कालेजमें पढ़ता था, फुटबालका खेल खेला करता था। जिस वर्षकी उसे स्मृति आ रही थी उस वर्ष एक दूसरे दलने उसके दलको बुरी तरह हराया था, यहाँतक कि उसे अपनी हारका उल्लेख करते हुए आज कई

वर्षके बाद भी लज्जा आती थी। दूसरे वर्ष फिर इन लोगोंने उसी दलको चुनौती दी। पहिली बारका अनुभव प्राप्त करके इस बार इन्होंने खूब अभ्यास किया था और इनकी विजय हुई। उसने बतलाया कि किस प्रकार जब प्रतिद्वन्द्वी दलवालोंने अपनी चालें दुहरानी शुरू कीं तो ये लोग उनके लिए पहलेसे तैयार रहते थे; किस प्रकार वह हर बार अपने प्रतिद्वन्दीको गिरा देनेमें सफल होता था; और किस प्रकार उसने अपने एक विपक्षीको खेलके बाकी समय तकके लिये बेकाम ही कर दिया था। जब उसकी माताके सम्बन्धमें प्रश्न किया गया तो उसने बताया कि उसकी माता खेल देखने आयी थीं। खेल इतना भीषण था कि आरम्भमें ही उन्हें घबराहटके मारे दर्शकोंमेंसे अलग हो जाना पड़ा और वह अलग जाकर इस आशंकासे रोती रहीं कि इस खेलका अवश्य ही कोई दुष्परिणाम होगा। वास्तवमें आरम्भके केवल तीन ही खिलाड़ी अन्त तक खेल सके और जब वह स्वयं बदहोश होकर खेलकी समाप्तिपर बाहर लाया गया तो उसकी दशा ऐसी शोचनीय थी कि उसकी माताको उसे हाथमें ले लेना पड़ा और उनकी शुश्रूषासे उसने एक प्रकारसे पुनर्जीवन ही प्राप्त किया।

अब प्रश्न यह है कि यह सब बातें स्वप्नसे क्या सम्बन्ध रखती हैं। स्पष्ट है कि स्वप्नद्रष्टा इस समय ऐसी ही स्थितिमें था जैसी खेलकी घटनामें दिखाई देती है। वह व्यापार कर रहा था, उसमें असफलताका अनुभव कर रहा था। इसलिए वह कोई नया परिवर्तन चाहता था। अर्थात् खेलकी तरह ही यहाँ भी पहले वह असफल रहा और अब एक ऐसी नयी स्थिति उत्पन्न करने जा रहा था जिसमें उसे वैसी ही सफलता हो जैसी कि दुबारा खेलमें हुई थी। इसी भाव-साम्यके कारण स्वप्नमें वर्त-

मान स्थितिके चित्रणके लिए खेलकी स्मृतिसे सहायता ली गयी है। स्वप्नद्रष्टा स्वप्नमें कहता है कि "उसे तुम मेरे ऊपर नहीं रख सकते।" स्वप्न अपनी नाटकीय वृत्तिके अनुसार यह बात करके दिखा देता है "साझेदारने अपना पैर मेरे घुटनेपर रख दिया।" खेलकी घटनाके चुनावमें इच्छापूर्तिका प्रयोजन स्पष्ट दिखाई दे रहा है और यही इस घटनाकी विशेष अनुकूलता है। स्वप्नद्रष्टा इतनी अच्छी तरह सफल होता है कि वह अपने साझीको तुरन्त गिरा देता है। इस प्रकार स्वप्नद्रष्टाकी असफलता और उसके परिमार्जनकी इच्छा मूर्तिमान् होकर हमारे सामने आती है। इन बातोंसे स्पष्ट हो जाता है कि खेलकी पुरानी घटना सर्वांशमें वर्तमान स्थितिके लिये बहुत ही उपयुक्त रूपकका काम देती है। अब हम देख सकते हैं कि स्वप्नद्रष्टाके मनके वास्तविक भाव क्या हैं "मैं ऐसा साझा मिलाना चाहता हूँ जिसमें मैं सफल होऊँ।" और स्वप्नमें इच्छापूर्तिके प्रयत्नके फलस्वरूप वह सफलता प्राप्त ही कर लेता है जैसे उसने दूसरे खेलमें प्राप्त की थी, जहाँ उसे किञ्चिन्मात्र चिन्ता न थी कि प्रतियोगी मरे या जिये बशर्ते कि वह स्वयं सफल हो जाय।

(३) फ्रिक महोदय लिखते हैं "मेरे एक परिचित व्यक्तिने एक बार स्वप्न देखा कि वह एक स्कंक (यह ऊदबिलाव और नेवलेसे समानता रखनेवाला एक जानवर होता है जो अपने शरीरसे तीव्र दुर्गंधियुक्त पानी निकालकर अपनी रक्षा करता है) को मार रहे हैं किन्तु उस जीवसे उसकी साधारण गंधके बजाय पामर कम्पनीके इत्रकी गंध निकल रही है।"

पामरके इत्रसे स्वप्नद्रष्टाको स्मरण आया कि जिस समय यह स्वप्न हुआ था उस समय वह दवाओंके एक कारखानेमें क्लर्क था। फिर इस बातसे उसे यह घटना याद आयी कि

स्वप्नके पूर्व दिनमें उसकी दूकानपर एक ग्राहक आया और उसने एक दवा माँगी। यह दवा विषोंमें नहीं गिनी जाती थी। इसलिए स्वप्नद्रष्टाने उसे विना कुछ पूछे जाँचे दे दिया। इस दवासे ग्राहकके छः महीनेके बच्चेकी मृत्यु हो गयी जिसके बाद वह अपनी जिम्मेदारी अपने ऊपर न लेकर दवा देनेवालेको ही दोष देने लगा। जिस कस्बेमें यह घटना हुई थी वह बहुत छोटा था। इसलिए एक ही दो दिनमें यह बिल्कुल मिथ्या अपवाद वहाँके अधिकांश निवासियोंके कानोंमें पहुँच गया। तब स्वप्न-द्रष्टा बदनामीसे बचनेके लिए जो कोई ग्राहक दुकानमें आये हर एकसे उस घटनाका अपने शब्दोंमें निरूपण करने लगा। कुछ दिनोंमें उस दुकानके मालिकने लगातार इस बातकी आवृत्ति सुनते सुनते खीझकर उससे कहा "देखो जी, मैं चाहता हूँ कि तुम इस मामलेकी बातें बन्द करो। इससे कोई लाभ नहीं, स्कङ्कको जितना ही मारो उससे उतनी ही दुर्गन्धि निकलती है।"

स्पष्ट है कि दुकानके मालिककी आज्ञाने जनताके सम्मुख अपनेको निर्दोष सिद्ध करनेका एकमात्र साधन स्वप्नद्रष्टासे छीन लिया था। इसीलिए वह स्वप्न देखता था कि वह अब भी स्कङ्कको मार रहा है किन्तु इसका कोई अनिष्ट परिणाम नहीं हो रहा है, क्योंकि बजाय दुर्गन्धिके उससे सुगन्धि आ रही है। दूसरे शब्दोंमें स्वप्नका तात्पर्य यह है कि वह अपने पक्षका समर्थन जारी रखता है और उससे कुफलके स्थानमें सुफल प्राप्त हो रहा है। इस प्रकार वह मालिककी बातको निराधार सिद्ध कर रहा है और अपनी अवरुद्ध इच्छाकी पूर्ति कर रहा है। इस स्वप्नमें यह बात बड़ी अच्छी तरह दिखाई पड़ती है कि स्वप्न बहुधा अत्यन्त सूक्ष्म सङ्केत मात्रसे अपना तात्पर्य व्यक्त करता है। इसका कारण यही है कि स्वप्नके लिए कोई भी सम्बन्ध

इतना तुच्छ नहीं है जिसका वह रूपकके निर्माणमें उपयोग न कर सके।

(४) ब्रिल महोदय लिखते हैं कि 'एक आदमीने मुझे बताया कि उसने स्वप्नमें दो बिल्लियोंको मुक्की लड़ते हुए देखा। आश्चर्यकी बात है कि बराबर वे कटु शब्दोंका प्रयोग कर रही थीं। अन्तमें छोटी बिल्लीने अपने बड़े प्रतिद्वन्दीको पछाड़ दिया।'

स्मृति परम्परामें स्वप्नद्रष्टाको स्मरण आया कि पूर्व दिन उसने कालेजकी व्यायामशालामें दो आदमियोंकी मुक्की देखी थी। एक भारी और लम्बा था और दूसरा हल्का और 'बिल्ली' के समान फुर्तीला था। दूसरा अपनी तत्परताके कारण अपने प्रतिद्वन्दीसे बाज़ी मार ले गया।

कुछ कारणोंसे स्वप्नद्रष्टाने विजयी मुक्कीबाज़के साथ अपना तादात्म्य कर लिया था। इसीलिए वह इस स्थितिको ले लेता है जिसमें वह एक ऐसे मनुष्यपर विजय प्राप्त करता है जिसे वह वास्तवमें परास्त करना चाहता था और चूँकि उसके चित्तमें मुक्कीबाजकी चैतन्यतासे बिल्लीकी समता विशिष्ट रूपसे स्थापित थी इसलिए उसने उस स्थितिको बिल्कुल ही दो बिल्लियोंकी लड़ाईका रूप दे दिया।

इस स्वप्नकी व्यक्त सामग्रीमें किसी इच्छाकी पूर्ति नहीं दिखायी देती। यही बात स्वप्न नं० ३में है। इस स्वप्नका उल्लेख विशेषतः इसलिए किया गया है कि इसमें स्वप्नद्रष्टाका पता नहीं है। किन्तु यदि स्वप्न स्वरूपतः स्वप्नद्रष्टाकी इच्छा-पूर्ति करता है तो उसमें उसका व्यक्तित्व अवश्य ही किसी रूपमें विद्यमान होगा और इच्छापूर्तिके विचारसे प्रायः वही स्वप्नका नायक या प्रधान पात्र होगा। इसलिए जब कभी व्यक्त सामग्रीमें स्वप्नद्रष्टाका पता न चले तो वह प्रायः स्वप्नके

प्रधान पात्रके रूपमें मिलेगा। यदि वह पुरुष है तो स्वप्नके नायककी और यदि स्त्री है तो स्वप्नकी नायिकाकी ओटमें छिपा रहता है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि चाहे वह मानव रूपमें व्यक्त हो चाहे पशुओंके रूपमें, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। यहीं पर हमें इस बातका भी कारण ज्ञात हो जाता है कि स्वप्नमें तथा पुराण, कहानी इत्यादिमें पशु आदमीकी बोली कैसे बोलते हैं। इस बातपर हम बहुत दिनोंसे बड़ा गम्भीर आश्चर्य करते रहे हैं तथा इसे बड़ा रहस्यमय और अन्ध-विश्वासोंके लिए एक भारी आधार समझते रहे हैं। अब यह स्पष्ट हो गया है कि यह अव्यक्त चित्तका एक स्वाभाविक धर्म है और इस सम्बन्धमें कहानीपुराण तथा स्वप्नका व्यवहार ठीक उसी उद्देश्यसे होता है जिससे कवितामें पशुओं द्वारा अन्योक्तियोंका प्रयोग होता है।

इसी प्रसङ्गमें तदात्मीकरणकी क्रियापर भी प्रकाश पड़ता है। स्वप्नद्रष्टाका स्वप्नके प्रधान पात्रसे जो घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है वह ठीक वैसा ही होता है जैसा कि किसी नाटककार, औप-न्यासिक, गल्पलेखक या कविका अपनी रचनासे। यह कहा जा सकता है कि कोई रचना प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे रच-यिताके व्यक्तित्वका ही निरूपण करती है।

हम जिन बातोंको बोधपूर्वक या अबोधपूर्वक प्रशंसा, आदर या प्रेमकी दृष्टिसे देखते हैं वे बातें जिस व्यक्तिमें अभिव्यञ्जित होती हैं वही हमारा आदर्श बन जाता है। अबोधपूर्वक हम उसका अनुकरण करना चाहते हैं। अपनेको उसीके समान बनाना चाहते हैं। इस इच्छाकी तीव्रता या मोहके प्रभावसे उसके साथ हमारा तादात्म्य हो जाता है जिसके कारण सबसे अधिक वही हमारी प्रशंसाका भाजन बन जाता है। इस

तथ्यके आधारपर ब्रिल महोदयने एक ऐसी प्रणाली निकाली है जो अमुक व्यक्तिका तादात्म्य किससे है, इस बातके अध्ययनमें बहुत उपयोगी है। वह निजी तौरपर लोगोंसे पूछते हैं कि वे ऐतिहासिक व्यक्तियोंमें अपने लिए किसे सबसे बड़ा आदमी समझते हैं, किसे अपना आदर्श मानते हैं। इस प्रणालीका आधार इस सिद्धान्तपर है कि जो व्यक्ति हमारे इस भावका आधार होगा, अवश्य ही उसके साथ बोधपूर्वक हमारा तादात्म्य हो गया है। इसी प्रकार दूसरे सम्बन्धोंमें भी हमारे आदर्श होते हैं किन्तु आदर्श व्यक्ति सदा वास्तविक ही नहीं होता, वह प्रायः अर्द्धकाल्पनिक और बहुधा शुद्ध काल्पनिक होता है। ऐतिहासिक व्यक्तियोंके सम्बन्धमें भी हमारी कल्पना प्रायः बहुतसे ऐसे व्यक्तियोंकी कल्पनाओंका सम्मिश्रण ही होती है जिन्हें हम अपने सामने देखते या जानते हैं। यदि कोई किसी पुरुषसे अपनी आदर्श स्त्रीका वर्णन करने लगता है तो देखिये वह कितनी स्त्रियोंसे मसाला इकट्ठा करता है। 'वह अमुक स्त्रीकी तरह लम्बी होगी', 'उसके बाल अमुक स्त्रीकी तरह होने चाहिए' इत्यादि। ब्रिल साहबने एक पुरुषसे सचमुच ही यह प्रश्न किया था। उसकी आदर्श पत्नीकी कल्पनामें पन्द्रहसे कम स्त्रियोंके गुणोंका समावेश नहीं था। इसी प्रकार एक स्त्रीके वर्णनसे मालूम हुआ था कि उसके आदर्श पौराणिक देवता अपोलोके चरित्रमें कमसे कम आधे दर्जन व्यक्तियोंका समावेश था। इससे यह जाना जा सकता है कि स्वप्नके किसी पात्रके अन्दर स्वप्न-द्रष्टाके वास्तविक अनुभवका कौन सा व्यक्ति छिपा हुआ है।

इसी प्रकार स्वप्नतत्ववेत्ताओंने स्वप्नकी नाटकीय वृत्तिके कुछ और निश्चित नियम स्थिर कर दिये हैं किन्तु बिना प्रत्येकका उदाहरण दिये केवल उनकी गिनती करा देना शुष्क और

व्यर्थ होगा और उनके ऐसे उदाहरण देना कठिन है जिनमें प्रतीकोंकी चर्चा अनिवार्यरूपसे न करनी पड़े जिनके स्वरूपका हमने अभी अध्ययन नहीं किया है। इसलिए पहले प्रतीकोंको ही समझ लेना आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि तादात्म्यके प्रकरणसे हम आपाततः इस विषय-पर आ जाते हैं। यह स्वप्नकी दृश्यात्मक वृत्तिका ही एक विस्तार है, अथवा उसका एक विशेष भेद या अङ्ग है जिसके द्वारा स्वप्न प्रतीकों अर्थात् कुछ ऐसे रूपकों और अन्योक्तियोंका प्रयोग करता है जिनका अर्थ साधारणतः प्रत्येक व्यक्तिके लिए एक ही रहता है और जिनका अर्थ करनेके लिए स्मृत्युद्बोधन-प्रणालीसे काम नहीं चलता क्योंकि इनके सम्बन्धमें कोई विशेष स्मृति प्राप्त ही नहीं होती, चाहे स्वप्नद्रष्टा अपने चित्तके समस्त सम्भव निरोधोंको जीतनेका कितना ही प्रयत्न क्यों न करे। अब हमें यही देखना है कि प्राचीनकालमें लोग उक्त लम्बी प्रणालीका आश्रय लिये बिना ही और स्वप्न द्रष्टासे स्वप्नका केवल प्रगट रूप जानकर बिना उसके सम्बन्धमें उससे कोई अन्य प्रश्न किये ही, सब व्यक्तियोंमें समान रूपसे स्वप्नचित्रोंका अर्थ किस प्रकार किया करते थे और इसमें कहाँ तक कृतकार्य होते थे। स्वप्नोंकी यही विशेषता इनको रहस्यमय बनाने और लोगोंके अन्ध-विश्वासका सबसे बड़ा कारण है। स्वयं फ्रायडका भी कथन है कि 'यह स्वप्न-सिद्धान्तका सबसे विचित्र तथा रहस्यमय प्रकरण है।' किन्तु जब हम यह समझ लेते हैं कि यह भी दृश्यात्मक वृत्तिका ही एक भेद है तब हमें इस रहस्यमें प्रवेश करनेका मार्ग दिखाई देने लगता है। साथ ही साथ प्राचीन प्रणालीकी सीमा भी ज्ञात हो जाती है। सम्भव है कि स्वप्नके और दूसरे साधारण रूपक और अन्योक्तियों तथा उसके प्रतीकोंमें वही भेद

हो जो यौगिक और रूढ़ शब्दोंमें होता है। अर्थात् पहला स्वप्न-द्रष्टाके ही अनुभूत विशेष भावोंका द्योतक हो और दूसरा जन सामान्यके स्वीकृत रूढ़ अर्थका प्रतिपादन करता हो और इसलिए स्वप्नद्रष्टाके मनका भी उसी प्रकार अङ्ग बन गया हो जिस प्रकार उसकी विशेष स्मृतियाँ। इस तरह इसे सामान्य रूपक, और पहलेको विशेष रूपक कह सकते हैं। स्पष्ट है कि पहलेका अर्थ-निर्धारण बिलकुल स्वप्नद्रष्टाकी स्मृतियोंपर ही निर्भर करेगा किन्तु दूसरेका अर्थ करनेके लिए न इसकी आवश्यकता है और न इस प्रकार इसका अर्थ निकल ही सकता है, क्योंकि उसके अर्थकी उत्पत्ति स्वप्नद्रष्टाके जीवनके किसी विशेष अनुभवसे नही हुई है। यही कारण है कि प्रतीकोंका अर्थ स्वप्नद्रष्टाको अपेक्षाकृत विचित्र और दूराकृष्ट प्रतीत होता है, किन्तु व्यक्तिगत रूपकोंका अर्थ वह सरलतासे समझ लेता है और स्वीकार कर लेता है।

विशेष और सामान्य रूपकोंका सम्बन्ध किस प्रकारका है अर्थात् दृश्यात्मक वृत्तिमें प्रतीकका तुलनात्मक स्थान क्या है, यह विषय हूप साहबके एक उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिये कि स्वप्नमें किसीने एक कुत्ता देखा। इस चित्रको हम क्या समझें यह स्वप्नद्रष्टाकी स्मृतियोंसे ज्ञात होगा। स्यात् स्वप्नद्रष्टाको उस कुत्तेसे पूर्व दिनकी यह बात याद आये कि उसने सड़कपर एक कुत्ता देखा था और इस सूत्रसे उसे एक स्त्रीसे बातचीत करनेका मौका मिला जिसके साथ वह कुत्ता था और जो स्वप्नद्रष्टाके मानसिक जीवनमें एक महत्वपूर्ण स्थान रखती थी चाहे वह इस बातको स्वीकार करे या न करे। यहाँ पर कुत्ता प्रतीक नहीं है, बल्कि गूढ़ोक्ति अर्थात् साहचर्यके द्वारा स्मृत्युद्बोधनके लिए एक सूत्र मात्र है।

दूसरी अवस्था यह हो सकती है कि स्वप्नद्रष्टाके मनमें उस कुत्तेसे एक विशेष कुत्तेका स्मरण होनेके सिवाय और कोई वात न आये। वह उस विशेप कुत्तेके,जिसको उसने पाला था,स्वभावके विभिन्न लक्षणोंको विस्तारसे याद कर सकता है। वह वतला सकता है कि किस प्रकार उसका कुत्ता विल्लियोंको देखकर बड़े जोरसे भूँका करता था और अपने साहसी होनेका प्रदर्शन किया करता था किन्तु जहाँ किसी विल्लीने अपना प्रकोप दिखाया वह इस प्रकार निकल जाता था जैसे उसने उसे देखा ही नहीं। इस वातसे स्वप्नद्रष्टाको चाहे कितना भी अनिच्छा-पूर्वक हो अपने स्वभावके कुछ अङ्गोंका भान हो सकता है। यहाँपर भी कुत्ता प्रतीक नहीं है किन्तु कुछ विशेषताओंका रूपक है।

अन्तिम अवस्था यह हो सकती है कि कुत्तेसे कोई स्मृति ही न आये। कभी कभी अप्रिय स्मृतियोंके स्वाभाविक निरोधके कारण भी ऐसा ही होता है। किन्तु यह भी हो सकता है कि स्वप्नद्रष्टा कुत्तेके वारेमें जो कुछ सोचे उसमें कोई विशेप महत्व अथवा कोई व्यक्तिगत तात्पर्य या रहस्य न हो और हमारे निरन्तर आग्रह करते रहने पर वह कुत्तोंके कुछ प्रसिद्ध स्वाभाविक गुणोंका उल्लेख कर दे जैसे स्वामिभक्ति, सतर्कता इत्यादि। अगर यह भाव स्वप्नके अन्य चित्रोंके तात्पर्यके साथ मेल खा जाय तो यहाँपर कुत्ता एक सामान्य स्वीकृत रूपक अर्थात् प्रतीक समझा जायगा।

यहाँ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि स्वप्नमें हम उसी वस्तुको प्रतीक मान सकते हैं जिसके सम्बन्धमें कोई व्यक्तिगत स्मृति न प्राप्त हो। यही प्रतीकोंके पहचाननेका एक मात्र उपाय है इसलिए पहले स्मृत्युवोधन-प्रणालीका प्रयोग आवश्यक है।

प्राचीन प्रणालीमें इसका प्रयोग न होने के कारण सभी स्वप्न-चित्रोंको प्रतीक ही समझकर स्वप्नकी व्याख्या की जाती थी। इसी कारण उसके द्वारा स्वप्नकी पूर्ण और निश्चित व्याख्या नहीं हो सकती क्योंकि निश्चित तात्पर्य निर्णयके लिए यह मालूम होना आवश्यक है कि कौनसा चित्र व्यक्तिगत अर्थ रखता है और कौनसा सामान्य। स्पष्ट है कि ऐसी प्रणाली बड़ी ही भ्रमात्मक है। प्राचीन प्रणालीकी एक और मर्यादा होनी चाहिए। इस प्रणालीके उपर्युक्त स्वरूपसे ही प्रगट है कि इसका प्रयोग ऐसे ही चित्रोंपर होना चाहिए जो साधारण और जन-सामान्यके रागद्वेषका आधार हो जैसे मानवशरीर, माता-पिता, बच्चे, भाई-बहन, जन्म-मृत्यु इत्यादि।

इन मर्यादाओंके कारण प्राचीन प्रणालीका उपयोग, जैसा कि ऊपर दिखाया है, अवस्था-विशेषमें ही किया जा सकता है और वह भी बड़ी सावधानीसे। अन्यथा यह बड़ी खतरनाक प्रणाली है।

उक्त कुत्तेके उदाहरणसे यह न समझना चाहिए कि सब प्रतीक ऐसे ही सरल और स्पष्ट होते हैं। इसके प्रतिकूल प्रतीकोंका विषय बड़ा गहन है। अधिकतर प्रतीक ऐसे हैं जो कुछ कारणोंसे पहचाने नहीं जाते, उनसे उनके अर्थोंका कोई सम्बन्ध ही नहीं दिखाई देता और वे हमारे विचारों और ज्ञानके लिए सर्वथा अपरिचित जान पड़ते हैं।

---

(३)

स्वप्न और प्रतीक

"एक मनचली सुन्दर नवयुवतीने बताया कि वह स्वप्नमें पानीके किनारे बैठी हुई थी। पानीमें बड़ी बड़ी मछलियाँ तैर रही थीं। उसके सुन्दर बालोंकी लम्बी वेणीके सिरेपर लाल फीतेका फन्दा था। वह इसे पानीमें लटकाये हुए थी और मछलियाँ आ आकर उसकी वेणीको काटती और गायब हो जाती थीं। आखिरकार एक मछली फँस गयी और उसने विस्मयके साथ देखा कि वह मछली उसके एक परिचित युवकके रूपमें परिवर्तित हो गयी।" (हूप)

इस प्रकारके स्वप्न जिनकी व्याख्या प्रायः सभी व्यक्ति एकही प्रकारसे करेंगे, बहुत कम होते हैं। अधिकांश स्वप्न जटिल और रहस्यात्मक होते हैं। उनमें ऐसे सरल और स्पष्ट रूपकों और प्रसिद्ध उपमानोंका प्रयोग नहीं होता, बल्कि ऐसे गहन 'प्रतीकों'का प्रयोग होता है जो कुछ कारणोंसे पहचाने नहीं जाते, उनसे उनके अर्थोंका कोई सम्बन्ध ही नहीं दिखाई देता और वे हमारे विचारों और ज्ञानके लिए सर्वथा अपरिचित जान पड़ते हैं। हमें यहाँपर यही देखना है कि हम ऐसे प्रतीकोंका प्रयोग कैसे करते हैं जिनका हम अर्थ ही नहीं जानते। विशेष और सामान्य रूपकों अथवा अप्रसिद्ध और प्रसिद्ध

उपमाओंके विवेकसे शायद इस विषय पर कुछ प्रकाश पड़े। इसलिए इनकी उद्भावना विधिपर थोड़ा विचार कर लेना चाहिए।

रूपक और उपमाओंका प्रयोग साहश्यके बलपर होता है। एक व्यक्ति किसी वस्तुका स्वानुभूत गुण या स्वरूप दूसरे ऐसे व्यक्तियोंको, जो इनसे अनभिज्ञ हैं बतलाना चाहता है, तो ऐसी वस्तुओंकी समता द्वारा बताता है जिनसे वक्ता और श्रोता दोनों परिचित हैं।[1] (स्पष्ट है कि वक्ताके भावका श्रोताके द्वारा सजीव ग्रहण तभी होगा जब कि दोनों वस्तुओंका साहश्य स्पष्ट, पर्याप्त और उपमानके विशिष्ट तथा प्रधान गुणके द्वारा अभिव्यञ्जित हो।) इस प्रकार कुछ सर्वानुभूत उपमान समय पाकर अपने विशिष्ट गुणोंके लिए प्रसिद्ध हो जाते हैं और तद्गुणविशिष्ट अनेक सर्वानुभूत पदार्थोंके रूप या गुणके ज्ञापनार्थ इनका प्रयोग होता रहता है। इस प्रकार कुछ प्रसिद्ध उपमानोंसे कुछ प्रसिद्ध उपमेयोंका प्रसिद्ध सम्बन्ध स्थापित हो जाता है[2]। अप्रसिद्ध उपमान सर्वानुभूत न होनेके कारण जनसाधारणकी सम्पत्ति नहीं बनते। इनका

१—उपमामें साहश्य कम द्योतित होता है और उसमें उपमेय वस्तुकी गुणोंका ही अभिव्यञ्जन होता है और इसीलिये उसमें उपमेय वस्तुका उल्लेख प्रकट या अप्रकट रूपसे अवश्य रहता है। किन्तु रूपकमें साहश्यका अतिशय व्यक्त होता है यहाँ तक कि उपमान उपमेय स्थानीय हो जाता है और इस तादात्म्यके कारण उपमेयका उल्लेख भी आवश्यक नहीं रहता।

२—यहाँपर इस बातका खयाल कर लेना चाहिए कि इन प्रसिद्ध उपमाओं और अन्य उपमाओंकी उद्भावनाविधिमें कोई मौलिक भेद नहीं है। कालसिद्ध सामान्य अनुभव ही इनकी विशेषता है।

तात्पर्य श्रोताके लिए स्वयंसिद्ध नहीं होता। वक्ताको किसी न किसी प्रकार इनके उपमेयोंका ज्ञापन करना पड़ता है। सामाजिक सम्पत्ति होनेके कारण प्रसिद्ध उपमानोंके लिए यह आवश्यक नहीं होता। सामाजिक मनके अंग हो जानेके कारण, ये उपमान् प्रत्येक व्यक्तिके मनके ही अंश हो जाते हैं। (क्योंकि हर व्यक्ति सामाजिक ज्ञान और संस्कारका ग्रहण बोध और अबोधपूर्वक जन्मसे ही अनेक स्थानोंसे करता रहता है।) अतः प्रसिद्ध उपमानोंके उल्लेखमात्रसे आपाततः उनके उपमेयोंका ग्रहण हो जाता है, और इनका प्रयोग वक्ताके निजी अनुभवसे प्रेरित हो, यह भी आवश्यक नहीं है, यद्यपि आरम्भमें ये अप्रसिद्ध ही थे और प्रयोक्ताकी मौलिक कल्पना द्वारा उद्भावित थे। और अप्रसिद्ध उपमायें भी सदा प्रयोक्ताकी अपनी सूझ ही नहीं होतीं। एक वार किसीके द्वारा प्रयुक्त होने पर कोई भी, जिसे इस प्रयोगका ज्ञान हो, उनका दुवारा प्रयोग कर सकता है। केवल उस व्यक्तिको उनका बोध होना आवश्यक है। तभी वे सार्थक होती हैं। यही बात प्रसिद्ध उपमाओंके बारेमें भी लागू होती है। जिसको यह ज्ञान ही न हो कि अमुक अमुक उपमानका प्रसिद्ध उपमेय क्या है, उसके लिए ऐसी उपमायें तथा रूपक निरर्थक हैं। उसके लिए उन रूपकातिशयोक्तियोंका क्या मूल्य है जो प्रसिद्ध उपमानोंके अर्थज्ञानको मानकर ही चलती हैं। इनमें ऐसे ही उपमानोंका प्रयोग होता है, जिससे वह पहिली दृष्टिमें उनका संश्लिष्ट तात्पर्य भले ही न समझे, पर बतलाने पर तो अवश्य ही समझ लेता है, क्योंकि जिन सादृश्योंके बलपर इनका प्रयोग होता है, वे इतने स्पष्ट होते हैं कि इनके सम्बन्धमें कोई शंका नहीं होती। और जो इनका प्रयोग करता है उसे तो इनका तात्पर्य प्रारम्भसे ही स्पष्ट होता

है, नहीं तो भला वह इनका प्रयोग ही कैसे कर पाता !

किन्तु प्रतीकोंकी यही विशेषता है कि व्यक्ति उनके साथ उनके उपमेयोंका कोई सम्बन्ध नहीं देख पाता। वे उसकी व्यक्तिगत अनुभूतिसे स्वतन्त्र होते हैं। उसे यदि उनका तात्पर्य बताया जाय, तो भी वह यह नहीं समझ पाता कि उनका यह अर्थ क्यों और कैसे हुआ। और तमाशा यह कि वह स्वयं ही इनका प्रयोग करता है। कोई दूसरा व्यक्ति किसी उपमेयके लिए किसी उपमानका प्रयोग करे और उसे उनका सादृश्य बिलकुल स्पष्ट प्रतीत होता हो, किन्तु दूसरे व्यक्तिका ध्यान, चाहे सादृश्यकी कठिनाईके कारण या उस व्यक्तिके रुचि वैचित्र्यके कारण उस सादृश्यपर न जाय और वह उस रूपकका बिम्ब ग्रहण न कर सके, उसके हृदयमें उस उपमानसे वही भाव न जगे, जो प्रयोक्ताके हृदयमें जगा था, तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। पर स्वयं प्रयोक्ता ही उसे ग्रहण न कर सके यह तो तभी हो सकता है जब कि वह स्वयं अपनेमें ही विभक्त हो, यानी उसके मनके दो पृथक् भाग हों और एककी बात दूसरे पर सर्वथा प्रकट न हो। वस्तुतः मनोवैज्ञानिकोंने स्वप्नके अतिरिक्त मनुष्यके अन्य अनेक व्यवहारोंके अध्ययनसे मनके इसी प्रकारके दो पक्षोंका पता लगाया है जिन्हें व्यक्त तथा अव्यक्त मन कहते हैं। व्यक्त मन मनका वह भाग है जिसका हमें किसी समय विशेषमें बोध हो रहा हो। हमारे वे अनेक अनुभव और स्मृतियाँ, जिनका मनको इस समय बोध नहीं है, सामूहिक रूपसे अव्यक्त मन कहलाती हैं। इसके अतिरिक्त यह तो प्रत्यक्ष ही है कि हमें हर समय हर बात याद नहीं रहती। किन्तु अवसर पर इनकी उपस्थिति हो जाती है। बीचमें ये बातें न जाने कहाँ पड़ी रहती हैं। इनकी इसी अनुभवसिद्ध स्थितिको अव्यक्तावस्था

कहते हैं। किन्तु यहाँ तक तो मनकी इन दो अवस्थाओं को 'विभाग'का नाम नहीं दिया जा सकता। क्योंकि इनमें निरन्तर पारस्परिक आदान प्रदान होता रहता है। जो बात एक क्षणमें अव्यक्तावस्थामें है, दूसरेही क्षण याद आ जाती है यानी व्यक्त हो जाती है। और जो इस समय व्यक्त है तुरन्त ही अव्यक्त हो जाती है। किन्तु कुछ बातें मनोवैज्ञानिकोंने ऐसी भी देखी हैं जिनका मनकी एक अवस्थासे दूसरीमें जाना इतना सरल नहीं होता। साधारणतः ये मनके अन्य अनुभवों तथा स्मृतियोंसे इस प्रकार पृथक् हो जाती हैं कि साधारण अवस्थाओंमें वे चेतनाके सामने नहीं आतीं, जबतक कि मनके अन्य भाग चेतनासे हट न जाँय। मानो मनके अन्य भाग इन्हें अपने सामने न आने देते हों। इस क्रिया का नाम मनोवैज्ञानिकोंने 'निरोध' रखा है। उनका खयाल है कि प्रेत बाधामें मनुष्य जो ऐसी बातें कहता है, जो 'आवेश'के पहिले और पीछे भी उसे याद नहीं रहतीं—यहाँतक कि याद करानेपर भी याद नहीं आतीं—किन्तु दूसरे आवेशमें याद आती हैं, इसका कारण इस तरहका निरोध ही है। 'सम्मोहन'में कृत्रिम रूपसे भी ऐसी अवस्था लायी जाती है। इस प्रकारके अनेक अनुभवोंसे मनकी एक अत्यन्त अव्यक्तावस्था सिद्ध होती है जिसे 'निरुद्ध अव्यक्त'का नाम दिया जाता है। और इसके मुकाबिलेमें उपर्युक्त अस्थायी अव्यक्तताको 'उपचेतन' कहा जाता है।

अब यदि यह मान लिया जाय कि स्वप्नप्रतीकोंकी उद्भावना अव्यक्त रूपसे हुई थी या उद्भावनाके बाद वे निरुद्ध हो गये थे तो व्यक्त रूपसे उनका तात्पर्य न समझमें आनेकी समस्या हल हो सकती है। तब यह समझ लिया जा सकता है कि व्यक्त मनके द्वारा निरुद्ध होनेके कारण उन प्रतीकोंके अर्थ चेतनामें

नहीं आते। इस प्रश्नका उत्तर भी दिया जा सकता है कि फिर ये प्रतीक ही चेतनामें क्यों आते हैं। ऐसा हो सकता है कि व्यक्त मनका उन प्रतीकोंसे कोई विरोध न हो। वे जिन वस्तुओं और भावोंके प्रतिनिधि हैं, वे ही निरुद्ध हों। ऐसी हालतमें प्रतीक तो चेतनामें आ सकते हैं किन्तु उनसे सम्बद्ध विचार नहीं। किन्तु हर हालतमें चाहे व्यक्त अथवा अव्यक्त अवस्थामें प्रतीकोंका उनके अर्थोंसे सम्बन्ध तो व्यक्तिके जीवनमें स्थापित हुआ होना ही चाहिये। और निरोध दूर कर देनेकी अवस्थामें–चित्तविश्लेषण इसी क्रियाको कहते हैं–उनकी इस प्रारम्भिक उद्भावनाका स्मरण होना चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं होता। ऐसी स्थितिमें प्रश्न यह उठता है कि प्रतीकोंका प्रमाण ही क्या? अर्थात् उनके अर्थोंका विश्वास ही किस आधार पर किया जाय? किन्तु इस प्रश्नका उत्तर हम पीछे देंगे। पहले हम यह देखें कि यदि प्रतीकोंका अस्तित्व स्वीकार कर लिया जाय तो जब चित्तविश्लेषणसे चित्तके निरोध दूर हो जाते हैं तब उनकी उद्भावनाका स्मरण न होनेका क्या कारण हो सकता है? क्या अव्यक्तकी कोई ऐसी भी काष्ठा है जो कभी व्यक्त हो ही न सके? व्यक्तिके जीवनकी किसी भी स्मृतिको मनोवैज्ञानिकोंने सर्वथा लोप्य नहीं माना है। तो फिर क्या इन प्रतीकोंकी उद्भावना व्यक्तिके जन्मसे पूर्वकी बात है? इस अपेक्षाकी पूर्तिस्वरूप कुछ आचार्योंने 'व्यक्तिगत अव्यक्त' के अतिरिक्त एक 'जातिगत अव्यक्त' की कल्पनाकी है जो मानव जातिके प्रत्येक व्यक्तिको जन्मसे ही प्राप्त होता है। इसमें जातिके अनुभव सन्निविष्ट होते हैं। इस सम्बन्धमें यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि यह जातिगत अनुभव व्यक्तिमें किस प्रकार आ सकता है। वैज्ञानिकोंने वंशानुक्रमसे विचारों अर्थात

मानसिक प्रत्ययोंकी प्राप्ति नहीं मानी है। कुछ शारीरिक प्रवृत्तियाँ ही वंशानुगत मानी जा सकती हैं। ये प्रवृत्तियाँ किसी विषय या स्थितिको प्राप्त करनेकी आकांक्षास्वरूप होती हैं। जैसे भूखकी परिसमाप्ति भोजनकी प्राप्तिमें होती है। यद्यपि नवजात शिशुको भोजनका अनुभव प्राप्त नहीं रहता और उसे अपनी आकांक्षाके विषयका ज्ञान नहीं होता, फिर भी उस आकांक्षाका विषयविशेषसे सम्बन्ध निर्दिष्ट है। इसी तरह सभी सहज प्रवृत्तियाँ अपना अपना विषय रखती हैं। विशेष विशेष रूप रंग और आकार विशेष विशेष प्रवृत्तियों निवृत्तियोंको उद्बुद्ध करते ही हैं, चाहे इनसे किसी इष्टानिष्टकी प्राप्तिका अनुभव न हो। बड़ा शब्द सुनकर या बड़ा आकार देखकर सद्यःजात शिशु भी भयभीत हो जाता है, कुछ रूप रंग और ध्वनियाँ स्वभावतः अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। चूँकि ये प्रवृत्तियाँ अन्धी होती हैं, अतः यदि किसी विषयमें उनके वास्तविक तर्पक विषयके साथ कुछ समता हो तो उससे भी वे उद्बुद्ध हो जाती हैं, जैसे प्रिय वस्तुकी समता हमें आकृष्ट करती है। इस प्रकार यह समझा जा सकता है कि स्वप्नके प्रतीक विशेष विशेष सहज प्रवृत्तियोंके सहज विषयोंसे समानता रखनेवाले पदार्थ हैं जो अपने रंग-रूप, आकार-प्रकारके कारण उन प्रवृत्तियोंको स्वरूपतः उद्बुद्ध करते हैं, चाहे उनके द्वारा इन प्रवृत्तियोंके तृप्त होनेका अनुभव हमें कभी न हुआ हो और हम उनके सम्बन्धको बिलकुल न जानते हों। प्रियवस्तुसे संपृक्त पदार्थ और स्थान अथवा हमारे प्रिय अनुभवोंकी भूमिके समान दृश्य हमें अबोधपूर्वक और अनायास ही आकृष्ट करते हैं। हम उनके आकर्षणका कारण कहाँ जानते हैं! हम तो स्वयं हैरान होते हैं और समझ नहीं पाते कि आखिर इसमें क्या बात है जो हमें लुभाती है।

इतना समझते हैं कि कोई बात है जरूर। कारणका ठीक स्वरूप तो विश्लेषणके बादही मालूम होता है। किन्तु क्या इससे हम इस बातसे इनकार करेंगे कि उसका आकर्षण प्रियवस्तुके सम्पर्कका ही आकर्षण होता है और उससे हमें अंशतः वही तृप्ति होती है जो प्रियवस्तुकी प्राप्तिसे होती ! इस प्रकारके अबोध-पूर्वक तर्पणका सम्बन्ध विश्लेषण द्वारा अनुभूत प्रियवस्तुसे देखने या दिखाये जानेके बाद तो हरएक उस आनन्दके स्वरूपका कायल हो जाता है। वस्तुतः उस भावको वह स्वाभाविक भाषा मिल जाती है जो उसपर बिल्कुल चस्पां हो जाती है और उसकी व्याख्या कर देती है, उसकी पहचान करा देती है। फिर उसमें सन्देह नहीं रह जाता। किन्तु यदि उस आनन्दका स्रोत इस जन्मका न हो, यानी वंशप्राप्त हो, तो हरएकको इस प्रकारका विश्वास दिलाना स्वभावतः कठिन है, क्योंकि उसका सम्बन्ध किसी वस्तुविशेषसे न होकर प्रकारविशेषके विषयोंसे होगा जिनका प्रिय अनुभव हमारे पूर्वजोंको प्राप्त हो चुका है और जिनके अनुसार पूर्वजोंकी तथा हमारी शारीरिक प्रवृत्तियोंका निर्माण हुआ है, जिससे वे उसी विशेष प्रकारके विषयसे सन्तुष्ट होती हैं। फिर भी इन विषयों द्वारा प्राप्त तृप्तिका सम्पर्क किस प्रकारकी प्रवृत्तिसे है, यह तो बतानेपर पहचानमें आ ही जाता है। मानव चित्तमें अन्तर्दृष्टि रखनेवालोंने सदा ही इस प्रकारके रहस्यात्मक भावोंका कारण पूर्वजन्मका संपर्क ही समझा है। देखिये कवि कालिदास क्या कहते हैं—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्,
पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं,
भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि॥

हम विशेष प्रकारके विषयोंके जातिगत सम्बन्धके और भी कायल हो जाते हैं, जब हम देखते हैं कि इन विषयोंका प्रतीक रूपसे इन्हीं प्रवृत्तियोंके द्योतन अथवा तर्पणके लिए प्रयोग न केवल स्वप्नमें बल्कि साहित्य, कला, पुराण, हास्य, व्यङ्ग, और भाषाके मुहाविरों आदिमें भी होता है, इन सबोंमें ये प्रतीक स्थिर चिह्नोंके रूपमें देखे जाते हैं।

इस बातको ज़रा और स्पष्टकर लेना चाहिये कि विशेष प्रकारके विषयोंसे विशेष प्रवृत्तियोंका सम्बन्ध किस प्रकार स्थापित होता है। चेतन प्राणियोंमें परिस्थितिको देखकर चलनेकी स्वाभाविक शक्ति होती है। उन्हें परिस्थितिका मुकाबला करके अपने जीवनकी रक्षा करनी पड़ती है। यदि किसी जीवकी शारीरिक बनावट ऐसी है—और अविकसित बुद्धि वाले सभी प्राणियोंकी शारीरिक बनावटके अनुसार उनकी कार्यक्षमताकी सीमा होती है—कि वह जीवन यात्रामें सामने आनेवाले एक विशेष परिमाण तकके अन्य जीवों तथा पदार्थोंको अपने अंगोंके द्वारा या तो अपने मार्गसे अलग कर देता है या उनका अपने भोजनादिमें उपयोगकर लेता है, किन्तु उस विशेष परिमाणसे अधिक बृहत् आकारके जीवों और वस्तुओंके मुकाबिलेमें उसका वश नहीं चलता तो ऐसे पदार्थोंके सामनेसे वह स्वयं ही हट जानेकी चेष्टा करेगा, अन्यथा या तो उस रुकावटसे उसकी जीवन यात्रा आगे नहीं बढ़ सकेगी, अथवा वह स्वयं दूसरे जीवका भोग्य बन जायगा। बाधाके सामनेसे हट जानेकी इसी प्रवृत्तिका नाम 'भय' है। प्राकृतिक चुनावके वैज्ञानिक नियमके अनुसार जिन जीवोंमें यह प्रवृत्ति न होगी, वे जीवनकी प्रतियोगितामें नष्ट हो जायंगे और जिनमें यह होगी, वे ही जिन्दा रहकर अपनी वंश-परम्पराका विस्तार करनेमें समर्थ होंगे। ऐसे जीवोंमें यह

प्रवृत्ति अभ्यासवश अधिक दृढ़ होती जायगी, क्योंकि इस प्रवृत्तिसे हीन जीवोंके नाशके अनुभव और उनके मुकाबिलेमें अपने कार्यकी सफलताके कारण, वैसे अवसरोंकी आवृत्तिपर वह जीव उसी कार्यकी आवृत्ति करेगा। एक बार कर चुकनेके कारण अन्य संभव कार्योंके मुकाबिले उसी क्रिया कलापमें अभ्यास नियमके अनुसार जीव सहज ही प्रवृत्ति होगा। आवृत्तिके साथ साथ यह अभ्यास यान्त्रिक हो जायगा। इस क्रियाकलापमें शरीरके जिनजिन अङ्गोंका योग प्रारम्भमें यत्न-पूर्वक करना पड़ा था उनके बारबार साथ संचालित होनेके कारण उनका साहचर्य क्रमशः सरल होते होते ऐसा दृढ़ हो जायगा कि वे अब एक सूत्रमें निबद्ध हो जायँगे और बृहत् आकारके देखनेके साथ ही उसके अनुकूल सारा क्रियाकलाप एक साथ ही निष्पन्न होगा तथा इस अवसर पर अन्य प्रकारके कार्यकी संभावना बिल्कुल न रहेगी। इस तरह इस विशेष प्रकारके विषयके साथ इस विशेष प्रवृत्तिका स्थिर सम्बन्ध स्थापित हो जायगा। स्थिर हो जानेपर यह साहचर्य सम्बन्ध वंशानुक्रमसे जीवकी सन्तानको जन्मना प्राप्त होता है।

स्पष्ट है कि इस प्रकारका प्रवृत्तिका सम्बन्ध किसी वस्तु-विशेषसे न होकर रूप-रंग आकार अथवा शब्द, स्पर्श, गंधादि विषयविशेष या इन विषयोंमेंसे अनेकके योगसे होगा। तद्वत् विषय अथवा योग पूर्णतः या अंशतः अनेक वस्तुओंमें हो सकता है। जिस किसी वस्तुमें वह होगा, वही उसके अनुकूल प्रवृत्तिकी उद्बोधक और, यदि यह विषय प्रिय हुआ तो, पूर्णतः या अंशतः तर्पक होगी। अप्रिय होनेकी हालतमें विषयसे निवृत्ति तर्पक होगी। ऊपर जो भयका उदा-हरण दिखाया गया है वह निवृत्तिरूप ही है। इनसे उल्टी स्थिति

अर्थात् प्रियकी अप्राप्ति और अप्रियकी प्राप्ति खेदजनक होती है क्योंकि प्रवृत्ति या प्रवृत्तिकी अवाध चरितार्थता ही सुख है, और इस चरितार्थतामें वाधा ही दुःख है। इस विचारसे यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि जन्मना प्राप्त प्रवृत्तियोंको अन्धी क्यों कहा गया है। यद्यपि इनका सङ्घटन अनुभूत विषयोंके अनुकूल ही हुआ है किन्तु यह अनुभव स्वरूपतः एकाङ्गी होता है। प्रवृत्तियोंका सम्बन्ध सीधे वस्तुओंसे न होकर इन्द्रिय विषयों तथा तज्जनित शारीरिक अर्थात् नाड़ीकी क्रियासे है। यह क्रिया समान रूपरंगकी ऐसी वस्तुओं द्वारा भी उद्बुध हो सकती है, जिनका जीवकी जीवनरक्षा और जीवन विस्तारमें कोई उपयोग नहीं है, जीवन तथा सभ्यताके विकासमें जिनके प्रति व्यवहार करनेके दूसरे उपयोगी तरीके निकल आये हैं। किन्तु यहाँपर हमें इस बातसे कोई मतलब नहीं है। इस विचारसे हमें यही देख लेना है कि प्रवृत्तियोंके वस्तुरूपी प्रतीक हमें जन्मना नहीं प्राप्त होते, बल्कि उनके रूप रंग आकारादि ही प्राप्त होते हैं। फिर तो, स्वप्न और आदिम साहित्यादिमें हमें प्रतीकोंके रूपमें वस्तुओंकी जो स्थिरता मिलती है, उसकी व्याख्या जन्मना प्राप्त प्रवृत्तियोंसे अंशतः ही होती है। इसकी पूर्ण व्याख्याके लिए हमें मानवजीवनकी आदिम समानता और बचपनमें प्राप्त संस्कारोंका सहारा लेना पड़ेगा। आधुनिक मनोवैज्ञानिक प्रयोगोंसे सिद्ध हो चुका है कि बचपनमें हमारा मन पारिपार्श्विक वायुमण्डलसे अत्यधिक संस्कार ग्रहण करता है। हमें इस तथ्यकी प्रीतीति साधारणतः इसलिये नहीं होती कि ये संस्कार असाधारण अवस्थाओंमें ही चेतनामें. जाग्रत् होते हैं, अन्यथा अव्यक्त रूपसे विस्मृतिके गर्भमें पड़े रहते हैं। साधारण जीवनमें इनका कोई काम नहीं पड़ता। किन्तु अनुकूल अवस्था पाते ही ये स्मृतियाँ

उद्‌बुद्ध हो जाती हैं। इसका प्रमाण सम्मोहन और विक्षेपकी अवस्थाओंमें विशेषरूपसे प्राप्त होता है। बचपनमें हमने अपनी मां, नानी, दादी आदिसे जो कहानियाँ सुनी हैं तथा अपने समाजकी भित्तिस्वरूप जिन पौराणिक कथाओंको चारों ओरके वायुमण्डलसे ग्रहण किया है, वे हमारी जातिगत विरासत हैं। हमारे अपेक्षाकृत नये विचार तथा आविष्कार तो कुछ लोगोंमें ही सीमित होते हैं और शिक्षा द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। ये हेतुओं द्वारा सिद्ध किये जानेकी भी अपेक्षा रखते हैं। किन्तु यह प्राचीन सामग्रीही जन-साधारणके वायुमण्डलमें सिद्धवस्तुके रूपमें व्याप्त रहती है और हमें बचपनमें अनायासही प्राप्त हो जाती है। बचपनका दिमाग बड़ा संग्राही भी होता है। और बचपनके संस्कार विशेष रूपसे अमिट होते हैं। हमारे वस्तुरूपी प्रतीक इन्हीं बाल्यावस्थाके संस्कारोंसे प्राप्त होते हैं। यद्यपि इस प्राचीन सामग्रीमें प्रतीकोंका तात्पर्य आदिकालीन भाषाके भाव-मय होनेके कारण स्पष्ट रूपसे बुद्धिग्राह्य नहीं होता, किन्तु अपने सहज रूप रंगादिके कारण वे तदनुकूलु भावोंका ही उद्बोधन और शमन करते हैं और इसी कारण उनका निर्माण अर्थात् आरम्भिक प्रयोग हुआ था और इसी कारण इस रूपमें वे बराबर ग्रहण किये जा रहे हैं। वस्तुतः मनुष्यकी बुद्धिकी भाषा ही अधिक परिवर्त्तनशील होती है, भावोंकी भाषा अपेक्षाकृत स्थिर होती है। इस प्रकार बाल्यकालीन संस्कार प्रतीकोंका एक आवश्यक अङ्ग है। इन संस्कारों और जन्मना प्राप्त आकारादि. द्वारा उद्‌बुद्ध प्रवृत्तियोंके संयोगसे ही प्रतीक बनते हैं। दोनों ही के मूलमें जातिका अनुभव निहित है किन्तु विषय तथा प्रवृत्तियाँ जन्मसे और तदनुकूल वस्तुएँ साहित्य तथा .जनश्रुति द्वारा प्राप्त होती हैं। पहली अधिक व्यापक और दृढ़ हैं, दूसरी कम।

जन्मनाप्राप्त प्रवृत्तियाँ तो मानव जातिमात्रमें, बल्कि कुछ पशुओंमें भी, समान हैं। किन्तु वस्तुएँ मानवजातिमें भी सर्वथा समान नहीं हैं, क्योंकि परिस्थिति भेद तथा तदनुकूल आवश्यकता भेदसे विभिन्न मानव जातियोंको आदिम अवस्थामें विभिन्न वस्तुओंका प्रयोग और निर्माण करना पड़ा था। इसमें सन्देह नहीं कि इन परिस्थितियोंमें और खासकर मनुष्यकी शारीरिक बनावट और तदनुसार उसकी आवश्यकताओंमें बहुत कुछ समानता रही है जिसकी छाप उसके द्वारा प्रयुक्त और निर्मित वस्तुओंपर अवश्य ही पड़ी है। यही कारण है कि हमें भेदमें भी अभेद दिखाई देता है। किन्तु इस समानताका दायरा उतना ही बड़ा होता है जितना हम मानवजातिकी अवान्तर जातियोंके सीमित क्षेत्रमें प्रवेश करते हैं। इसी कारण मानव जातिमात्रके सामान्य प्रतीक बहुत ही कम हैं। अवान्तर जातियोंमें सामान्य प्रतीक उससे कुछ अधिक हैं। सामान्य प्रतीकोंके प्रयोगमें भी कुछ न कुछ अवान्त जातिगत तथा व्यक्तिगत विशेषता तो रहती ही है।

प्रतीकोंके सामान्य रूपसे कम होनेका कारण आदिम जीवनकी सरलता भी है। एक दीर्घकालीन परम्परासे सिद्ध प्रतीक ही हमारे वायुमण्डलमें व्याप्त होते हैं, और जातिका आदिकालीन जीवन उतना विकसित और समृद्धिशाली नहीं था। तत्कालीन भौतिक सम्पत्तिकी कमीके कारण वही थोड़ीसी वस्तुएँ हमें प्रतीकोंके रूपमें मिलती हैं जो उस समयके सरल और अविकसित जीवनमें प्रयोगमें आती थीं।

इसके पहिले कि हम अब प्रतीकोंके उदाहरण लेकर विषयको स्पष्टरूपसे समझें, सिर्फ एक बात और जान लेना जरूरी है। वह यह कि जिस प्रकार ऐन्द्रिय विषयोंके द्वारा अनुकूल प्रवृ-

त्तियोंका उद्बोधन होता है, उसी प्रकार दूसरे व्यक्तिमें उद्बुद्ध प्रवृत्तिके शारीरिक लक्षणोंको देखकर भी उसी प्रवृत्तिका उद्बोधन होता है। साहित्यकी भाषामें जिसप्रकार विभावोंसे भावोंका उद्रेक होता है उसी प्रकार अनुभावोंसे भी भावकी निष्पत्ति होती है। रसकी निष्पत्तिमें तो दोनोंका सहयोग आवश्यक है। विभावोंसे भावका उद्रेक किस प्रकार होता है यह तथा इसका हेतु और आवश्यकता तो ऊपर दिखायी जा चुकी है। विभावके अनुरूप तो भावका सङ्गठन ही हुआ है। किन्तु अनुभाव भी भावका द्योतक होनेके कारण उसका स्मरण कराता है। इतना ही नहीं, उसका उद्बोधन भी करता है। यह अनुकरणकी प्रवृत्ति उस तादात्म्यकी भावनापर आश्रित है जो एक मनुष्य दूसरे मनुष्यके साथ अपनी समान बनावटके कारण अनुभव करता है, जिसके कारण उसे समान आवश्यकताओंके सामने समान प्रतिक्रिया करनी पड़ती है। इस प्रकार एक साथ किसी विषयके प्रति समान व्यवहार करनेसे ही सहयोगकी नींव पड़ती है, जिसकी आवश्यकता और जिसके सुफलके अनुभवसे यह अनुकरणकी प्रवृत्ति और भी दृढ़ होती है। अनुकरणकी प्रवृत्ति सामाजिक सहयोगकी प्रवृत्तिकी सहायक और उसका अनुभाव भी है। इसके द्वारा हम अपनेसे अधिक अनुभवियोंके उपयोगी आचरण सीखते हैं और भावोंके विभाव (कारण) को जाननेके पहिले ही उसके प्रति व्यवहार करनेके लिए तयार हो जाते हैं, जिससे हमारे जीवनमें अधिक कार्यक्षमता आती है। अतएव अनुकरणसे हमारी सामाजिकताका पता चलता है।

अस्तु, अनुकरणकी प्रवृत्ति तथा तद्गत तादात्म्य भावनाके कारण हम दूसरोंके भावोंका उनके अनुभावोंको देखकर अपने

ऊपर आरोप करते हैं। अर्थात् अनुभावोंसे भी भावोंका उद्‌बोधन होता है और ये भी अनुकूल भावोंके चिह्न बन जातेहैं । अतएव प्रतीकोंमेंसे कुछ तो अनुकूल भावोंके विभावोंके सदृश आकार प्रकारकी वस्तुओं और क्रियाओंके रूपमें होते हैं और कुछ अनुभावयुक्त शारीरिक अङ्गों और चेष्टाओंके सदृश ।

अब दो एक सार्वभौम प्रतीकोंको लेकर समझनेकी चेष्टाकी जाय। सर्प एक सार्वभौम प्रतीक है। पहले भारतीय परम्परामेंही देखिये—

उरगो वा जलौका वा भ्रमरोवापि यंदशेत्
आरोग्यं निर्दिशेत्तस्य धनलाभं च बुद्धिमान् । (चरक)

यहाँ पर स्वप्नमें कुछ अन्य जीवोंके साथ सर्प काटनेका आरोग्य और धनलाभसे सम्बन्ध बताया गया है।

यस्य श्वेतेनसर्पेण ग्रस्तश्चेद्दक्षिणः करः,
सहस्रलाभस्तस्य स्याद्पूर्णे दशमे दिने ॥
उरगो वृश्चिको वापि जले ग्रसति यं नरम्,
विजयं चार्थसिद्धिं च पुत्रं तस्य विनिर्दिशेत् ।
(आचारमयूख)

यहाँ भी सर्पका सम्बन्ध विजय, धन और पुत्रके साथ बताया गया है। पाश्चात्य लोक साहित्यमें भी सर्पकी बड़ी चर्चा है। स्वर्गमें हव्वाको सर्पने ही धोखा दिया था। आदम और हव्वा मानव जातिकी शैशवावस्थाके प्रतीक हैं, जब कि वह अकातर, नग्न और स्वच्छन्द थी अर्थात् जब कि वह स्वर्गमें थी। तब सर्प आता है जो कि कामका प्रतीक है और स्थिति बिलकुल बदल जाती है। दूसरे शब्दोंमें, बचपन स्वर्ग है किन्तु जैसे ही बच्चा किशोरावस्थाको प्राप्त होता है, वह स्वर्गसे निकाल दिया जाता है। 'बेल्सटीन'की एक कथामें सर्प नवयुवती लड़कियोंके

सम्मुख प्रकट होता है और जब लड़कियाँ अपनी घृणाको जीत कर ठण्ढे सर्पको अपने बिस्तरमें ले लेती हैं, तो सर्प अकस्मात् एक अद्‌भुत राजकुमारके रूपमें परिवर्तित हो जाता है जो मंत्राभिभूत किया गया था। चिकना, ठण्ढा, बदसूरत सांप कामज या यौन प्रतीक है। इसी प्रकार वह बीभत्स मेढ़कका बच्चा भी है जो कि 'ग्रिम'की कहानीमें राजकुमारीकी शय्या पर चढ़ जाता है। यहाँ भी घृणाको जीतनेके पुरस्कारस्वरूप एक राजकुमार उपस्थित हो जाता है।

सर्पको मूलतः कामसम्बन्धी प्रतीक मान लेनेपर पुत्रके साथ उसका सम्बन्ध तो निर्दिष्टही हो जाता है, धन आरोग्य और विजयके साथ भी उसका सम्बन्ध समझा जा सकता है। "आर्योंके पूर्व जो सब आर्येतर जातियाँ अपनी अपनी संस्कृति और सभ्यता लेकर यहाँ वास कर रही थीं उनमें नागों और सुपर्णोंका स्थान महत्त्वपूर्ण था। नागका शाब्दिक अर्थ सांप है और सुपर्णका पत्ती। खूब सम्भव है इन दोनों जातियोंके लांछन (टोटेम) ये दोनों जंतु थे।

"नाग लोग प्रधानतः शिवके उपासक थे और सुपर्ण लोग विष्णुके। गरुड़ विष्णुके वाहन हैं और नाग शिवके भूषण।

(क्षितिमोहन सेन कृत—'भारतवर्षमें जातिभेद'से उद्‌धृत, पृष्ठ ११८)

" 'फ़र्गुसन'ने अपनी पुस्तक 'ट्री एण्ड सर्पेण्ट वर्शिप' (वृक्षों और साँपोंकी पूजा) में कहा है कि यक्ष और नाग जो क्रमशः उर्वरता और वृष्टिके देवता माने गये थे, एक जाति-वर्णहीन दस्यु या असुर जातिके उपास्य थे। वरुण नामके वैदिक देवताका सम्बन्ध गन्धर्वों, यक्षों, असुरों और नागोंसे रहा है। यक्षों और नागोंके देवता कुबेर, सोम, अप्सरस् और अधिदेवता

वरुण ब्राह्मण ग्रन्थोंमें स्वीकृत हैं। 'विष्णु धर्मोत्तार' (३-५८) के अनुसार कामदेव और उनकी स्त्री रति क्रमशः वरुण और उनकी पत्नी गौरीके अवतार हैं। प्राचीन विश्वासके अनुसार वरुण समुद्रके देवता हैं और सारी सृष्टि इसी देवाधिदेवसे उत्पन्न हुई है। समुद्र और जलके देवता होनेके कारण वरुणका वाहन मकर है। उनकी स्त्री गौरीका वाहन भी मकर है। मकर समुद्र और जलका प्रतीक है। अग्नि पुराण (५१ अध्याय) में वरुणको मकरवाहन कहा गया है और विष्णु धर्मोत्तार (३-५२)में मकरकेतन। यह एक कवि प्रसिद्धि है कि चिह्न, वाहन और ध्वजको एक ही वस्तु मानते हैं। बादामीमें (R. D. Banerji; Bas Reliefs of Badami Men; A. S. I. 25. 1928. P. 34) रतिके साथ मकर वाहन और मकरकेतन काम मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। पंडितोंका इसीलिए अनुमान है कि कामदेव और यक्षाधिपति वरुण मूलतः एक ही देवता हैं और नहीं तो कमसे कम एक ही देवताके दो भिन्न रूप तो हैं ही (बुद्धचरित १३-२)। बौद्ध मार यक्ष कामदेवका रूप है ही। पौराणिक आख्यानोंसे यह प्रकट ही है कि कामदेवके प्रधान सहायक गन्धर्व और अप्सराएँ हैं। कामदेव स्वयं उर्वरता और प्रजननके देवता हैं। समुद्र रत्नालय है और वरुण समुद्राधिपति। इसीलिए उन्हें लक्ष्मीनिधि माना जाता था। बादमें यह शब्द कुबेरका वाचक हो गया। मगर यह लक्ष्य करनेकी बात है कि समुद्रोत्पन्न लक्ष्मीका,जो बादमें विष्णुकी पत्नी हुईं,एक नाम वरुणानी भी है! इस प्रसंगमें वरुणानी शब्द काफी संकेतपूर्ण है। (विशेष विस्तारके लिए देखिये A. R. Comaraswami,: Yaksa vol II) .

"कवि-प्रसिद्धिके अनुसार लक्ष्मीके अर्थमें कमला और सम्पद् शब्दकी एकता स्वीकारकर ली गयी है और कमलमें

लक्ष्मीका वास है। मकरके अतिरिक्त कमल भी जलका एक प्रतीक है। शतपथ ब्राह्मण (७-४-१-८) में जलको कमल कहा गया है और यह पृथ्वी उस कमलका एक दल कही गयी है। प्राचीन रञ्जनशिल्पमें कमलका इसीलिए इतना प्राचुर्य है कि वह जलका और फलतः जीवनका प्रतीक होनेसे अत्यन्त मङ्गलमय समझा जाता था। कमलमें ही वरुण और उनकी स्त्री गौरी वास करती हैं।"—पण्डित हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत हिन्दी साहित्यकी भूमिकाके परिशिष्ट 'कवि प्रसिद्धियाँ'के विभिन्न स्थलोंसे उद्धृत।

इस उद्धरणसे स्पष्ट हो जाता है किस प्रकार भारतीय परम्परामें लक्ष्मी और सम्पद्के कमल वाससे लक्ष्मी और जीवन तथा मङ्गल (आरोग्य तथा विजय)की एवं लक्ष्मी और रतिकी एकता सिद्ध हुई है और किस प्रकार नागों अर्थात् सर्पोंसे इन सबका सम्बन्ध है। अब हम समझ सकते हैं कि सर्पको मूलतः काम सम्बन्धी प्रतीक मान लेने पर वह किस प्रकार स्वयमेव पुत्र, आरोग्य और मंगलका प्रतीक हो जाता है।

सर्प और कामके सम्बन्धको और समझ लेना चाहिये। शिव मन्दिरोंमें सर्पपरिवेष्ठित योनि और लिङ्गकी ही पूजा होती है। यहाँ सर्प नित्यता, अनन्तता, अमरताका प्रतीक माना जाता है। अनन्त और शेष तो सर्पके नाम ही हैं। किन्तु गहराईमें पैठकर अध्ययन करनेवालोंने सर्पको वस्तुतः पुरुष लिंगका प्रतीक बताया है। इस प्रतीकके अन्य सब गुण या अर्थ इसी मूलसे निकले हैं। प्रारम्भिक मनुष्यकी स्वभावतः यह धारणा हुई कि जीवनको उत्पन्न करनेके कारण लिंग जीवनका प्रतीक है। यही कारण है कि संसारके हर देशमें लिंगोंके स्वांग जलूसमें निकाले जाते थे और उनकी पूजा होती थी। अब भी

क्रिसमस सम्बन्धी अनेक उत्सवोंमें खासकर प्राच्य ग्रीक गिरजोंमें, भारतीय होलीके समान प्राचीन रोमन उत्सवों (Kalends and Saturnalia) के चिह्न पाये जाते हैं। हिन्दुओंमें होली ऐसा ही त्यौहार है जिसमें प्राचीन लिङ्ग पूजा अपने आदिम रूपमें विद्यमान है। आधुनिक हिन्दू शिवलिङ्गकी पूजाके साक्षात् यौन या लैङ्गिक अर्थको भूल-से गये हैं। अतएव आर्योंमें लिङ्ग-पूजाके आदिम इतिहासको स्मरण कर लेना चाहिये।

"महादेव नग्न वेषमें नवीन तापसका रूप धारण करके मुनियोंके तपोवनमें आये (वामन पुराण ४३ अध्याय, ५१–६२ श्लोक)। मुनिपत्नीगणने देख करके उन्हें घेर लिया (वही ६३–६९ श्लोक)। मुनिगण अपने ही आश्रममें मुनिपत्नियोंकी ऐसी अभद्र कामातुरता देखकर 'मारो मारो' कहकर काष्ठ पाषाण आदि लेकर दौड़ पड़े। उन्होंने शिवके भीषण ऊर्ध्व लिङ्गको निपातित किया।

क्षोभं विलोक्य मुनय आश्रमे तु स्वयोषिताम्।
हन्यतामिति सम्भाष्य काष्ठपाषाणपाणयः॥
पातयन्तिस्म देवस्य लिङ्गमूर्ध्वं विभीषणम्।

(वामन पुराण ४३, ७०, ७१)

"बादमें मुनियोंके मनमें भी भयका सञ्चार हुआ! ब्रह्मा आदिने भी उन्हें समझाया। अन्तमें मुनिपत्नियोंकी एकान्त अभिलषित शिवपूजा प्रवर्तित हुई (वामन पुराण ४३, ४४ अध्याय)। कूर्म पुराण, उपरिभाग ३७ अध्यायमें कथा है कि पुरुषवेशधारी शिव, नारीवेशधारी विष्णुको लेकर सहस्र मुनिगण सेवित देवदारुवनमें विचरण करने लगे। उन्हें देखकर मुनिपत्नियां कामार्त्त होकर निर्लज्ज आचरण करने लगीं (१३–१७ श्लोक)। मुनिपुत्रगण भी नारीरूपधारी विष्णुको देखकर मोहित

हुए। मुनिगण मारे क्रोधके शिवको अतिशय निष्ठुर वाक्यसे भर्त्सना करने और अभिशाप देने लगे।

अतीव परुषं वाक्यं प्रोचुर्देवं कपर्दिनम्।

शेपुश्च शापैर्विविधैर्मायया तस्य मोहिताः॥ (कूर्म० ४७, २२)

किन्तु अरुन्धतीने शिवकी अर्चनाकी। ऋषिगण शिवको 'यष्टि मुष्टि' प्रहार या लाठी और घूँसेकी चोट करते हुए बोले— 'तू यह लिङ्ग उत्पाटन कर'। महादेवको वही करना पड़ा। शिवपुराणके धर्मसंहिताके दसवें अध्यायमें देखा जाता है कि शिव ही आदि देवता हैं, ब्रह्मा और विष्णुको उनके लिङ्गका आदिमूल अन्वेषण करने जाकर हार माननी पड़ी (१६–२१)। (सच पूछा जाय तो आज भी धर्मके इतिहासके गवेषक यह खोज कर पता नहीं लगा सके कि लिङ्ग पूजाका प्रारंभ कहाँसे और कबसे हुआ।) देवदारुवनमें सुरतप्रिय शिव विहार करने लगे (धर्म संहिता, १०,७८,७९)। मुनिपत्नियां काम मोहित होकर नानाविध अश्लीलाचार करने लगीं (वही, ११२, १२८,)। शिवने उनकी अभिलाषा पूरीकी (वही, १५८) मुनिगण काममोहिता पत्नियोंको सम्भालनेमें व्यस्त हुए (वही, १६०); पर पत्नियाँ मानीं नहीं (वही १६१)। फलतः मुनियोंने शिवपर प्रहार किये (वही, १६२-१६३) इत्यादि। अन्य सब मुनिपत्नियोंने शिवको कामार्त होकर ग्रहण किया था; पर अरुन्धतीने वात्सल्य भावसे पूजाकी (वही १७८)। भृगुके शापसे शिवका लिङ्ग भूतलमें पतित हुआ (वही १८७)। भृगु धर्म और नीतिकी दुहाई देने लगे (वही, १८८–१९२); किन्तु अन्तमें मुनिगण शिवलिङ्गकी पूजा करनेको बाध्य हुए (वही २०३,२०७)। पद्म पुराण नागर खण्डके शुरूमें भी यही कथा है। आनर्त देशके मुनिजनाश्रय वनमें किस प्रकार भगवान्

शंकर नग्नवेशमें पहुंचे (१-१२), किस प्रकार मुनिपत्नियोंका आचरण शिष्टताकी सीमा पारकर गया (१३–१७), मुनिगण यह सब देखकर क्रुद्ध होकर बोले,—रे पाप, तूने चूँकि हमारे आश्रमको विडम्बित किया है, इसलिए तेरा लिङ्ग अभी भूपतित होवे।

अस्मात्पापात्त्वयास्माकं आश्रमोऽयं विडम्बितः।
तस्माल्लिङ्गं पतत्वाशु तवैव वसुधा तले॥
(पद्मपुराण, नागरखण्ड १–२०)

"किन्तु यहाँ भी मुनियोंको झुकना पड़ा। जगत्में नाना उत्पात् उपस्थित हुए (२३–२४); देवतागण भीत हुए और धीरे धीरे शिवपूजा स्वीकार कर ली गयी"। (क्षितिमोहन सेनकृत 'भारतवर्षमें जातिभेद'से उद्धृत पृ० ६५)

पाठकोंके मनमें यह प्रश्न उठ रहा होगा कि सर्प क्यों पुरुष लिंगका प्रतीक है। चित्ताकी अव्यक्तावस्थामें प्रतीकोंकी उद्भावना सम्बन्धी मानसिक क्रियाओंके सम्बन्धमें पहले जो कुछ कहा जा चुका है उसके प्रकाशमें इसका कारण समझना कठिन नहीं है। यद्यपि व्यक्त चित्तको सर्प और पुरुषलिंगमें कोई सादृश्य नही प्रतीत होता, किन्तु इनमें एक छिपी हुई समानताका इतना संकेत तो अवश्यही है कि अव्यक्त चित्त इनके सादृश्यको ग्रहण कर ले। हम यह देख चुके हैं कि किस प्रकार अनुभावोंको देखनेसे भावोंका उद्बोधन और तर्पण होता है और अनुभावयुक्त शारीरिक अङ्गो और चेष्टाओंके सदृश वस्तुएँ सादृश्यानुबन्ध नियमसे अनुकूल भावोंकी प्रतीक बन जाती हैं। इस तरह लिङ्ग तो कामवासनाका स्वाभाविक उद्बोधक और तर्पक है ही और तदृश सर्प उसका प्रतीक होना ही चाहिये। उपर्युक्त विचारसे यह भी स्पष्ट है कि इस प्रतीकमें लिङ्गके आकार प्रकारका अंश ही जन्मना प्राप्त हो सकता है। अपने मूर्त्त और

विशिष्ट रूपमें सर्प नहीं। सर्प तो इसीलिए प्रतीक होगा कि लिङ्गसादृश्य उसमें अबोधपूर्वक ग्रहण किया गया। किन्तु ऐसी तो अनेक वस्तुएँ हो सकती हैं। और इसमें सन्देह नहीं कि अनेक वस्तुएँ लिङ्ग और कामके व्यक्तिगत उपमान और उद्बोधक बन जाती हैं। फिर सर्पादि थोड़ीसी वस्तुओंको ही जातिगत सामान्य प्रतीकका पद क्यों प्राप्त हुआ? बात यह है कि सब वस्तुएँ मानव जातिके सामान्य अनुभवका विषय नहीं हैं। किन्तु सर्पादि वस्तुओंसे मनुष्यको आदिम अवस्थासे काम पड़ा है और ये उसके सामान्य अनुभवका विषय रही हैं। जातिगत अनुभव भी सर्प रूपी प्रतीकका एक अंश है जो हमें साहित्य एवं जनश्रुति द्वारा विरासतके रूपमें सामाजिक वायु-मण्डलसे मिला है। यही उसे प्रतीकत्वका पद प्रदान करता है। सर्पके सम्बन्धमें यह जाति परम्परा हम ऊपर देख चुके हैं।

भारतीय परम्परामें कामका धन, स्वास्थ्य और मंगल मात्रसे सम्बन्ध समझ लेनेके बाद अब हम कुछ और सार्वभौम प्रतीकोंको समझ सकते हैं। मकान शरीरका एक पुराना और प्रसिद्ध प्रतीक है। हम प्रायः शरीरको अपने रहनेके घरके रूपमें बोलते हैं और पशु व्यक्तिके प्रतीकके रूपमें बहुत सामान्य है है और सवारी करना तथा सीढ़ी चढ़ना मैथुन या रतिका प्रतीक है।

> महाप्रासादसफलवृक्षवारणपर्वतान्।
> आरोहेद्द्रव्य लाभाय व्याधेरपगमाय च॥ (चरक)
> हर्म्येष्वारोहणं चैव प्रासाद शिरसोऽपिवा।
> एवमादीनि संदृष्ट्वा नरः सिद्धिमवाप्नुयात्॥ (चरक)
> शैलप्रासादनागाश्च वृषभारोहणं हितम्।
> (बृहद्यात्रा ग्रन्थमें वराहमिहिर)

हस्तिनीवडवानां च गवां च प्रसवो गृहे ।
आरोहणं गजेन्द्राणां रोदनं च तथा शुभम् ।। (वराह)
आरोहणं गोवृषकुंजराणां प्रासाद शैलाग्रवनस्पतीनाम् ।
विष्टानुलेपो रुदितं मृतं च स्वप्नेऽ्वगम्यागमनं प्रशस्तम् ।।
(आचारमयूख)
बलाकां कुक्कुटीं क्रौंचीं दृष्ट्वा यः प्रतिबुध्यति ।
कुलजां लभते चान्यां भार्यां च प्रियवादिनीम् ।।
(आचारमयूख)
वड़वां कुक्कुटीं दोलां लब्ध्वा यस्तु विबुध्यते ।
सकामां लभते भार्यां सुभगां प्रियवादिनीम् ।। (बृहस्पति)

आसने शयने याने शरीरे वाहनेऽपि वा ।
ज्वलमाने विबुध्येत तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ।। (बृहस्पति)
स्वाङ्ग प्रज्वलनं परोपशमनं शक्रध्वजालिङ्गनत् ।
संयुक्तोऽपि नैरर्विपद्यपि विपत्प्रक्षेपणं दिक्षु च ।।
बद्धो वा निगडैर्ग्रसेञ्च दहनं चारित्ततो बाहुना ।
छत्रं वा द्विरदादि रोहणविधौ दिव्योऽपि च ब्राह्मणः ।।
(पराशर संहिता)

विपुल रण विमर्दद्यूतवादैर्जयश्च ।
पशुमृग मनुजानांलब्धि रदध्यासनं वा ।।
विवसन परिलेपोऽगम्यनारीगमो वा ।
स्वमरण शिखिलाभः सस्यसंदर्शनं च ।।
दिनकर शशिताराभक्षणस्पर्शनानि ।
विशरणमपि मूर्ध्नः सप्तपञ्चत्रिधावा ।।
वृषभगृहनरेन्द्र श्वेतसिंहाधिरोह
ग्रसनमुदधिभूमौ भूमिराज्यप्रदानि ।। (पराशर संहिता)
मरणं वह्निलाभश्च वह्निदाहो गृहादिषु ।

तथोदकानां तरणं तथा विषमलंघनम् ॥
हस्तिनी वड़वानां च गवां च प्रसवो गृहे ।
आरोहणं गजेन्द्राणां रोदनं च तथा शुभम् ॥

(वृहद्यात्रा ग्रन्थमें श्री वराहमिहिर)

आचार मयूखके दूसरे और वृहस्पतिके पहले उद्धरणमें पशु-पक्षियोंसे स्त्रीका स्पष्ट सम्बन्ध दिखलाया गया है। बादके उद्धरणोंमें अग्निका प्रतीक भी आया है। अग्नि और उष्णता प्रेमके प्रतीक हैं। अन्य साहित्योंकी भाँति हिन्दी और उर्दू काव्य साहित्यमें प्रेमके लिए अग्निकी उपमा बहुत प्रसिद्ध है। यही कारण है कि वृहस्पतिके दूसरे उद्धरणमें शरीरमें और वाहन (घोड़ा-हाथी आदि) पर अपनेको जलता देखनेसे लक्ष्मीकी प्राप्तिका सम्बन्ध बताया गया है और वराहके अन्तिम उद्धरणमें अग्निसे घर (शरीर) फूँकनेको शुभ कहा गया है। पराशर-संहिताके दूसरे उद्धरणमें अग्निके साथ साथ 'रण' का प्रतीक भी आया है। लड़ना भी मैथुनका प्रतीक है।

अनेक दूसरे सामान्य स्वप्न प्रतीकोंमें दाँत गिरनेका एक प्रतीक है जो स्त्रियोंमें कभी कभी सन्तानकामनाकी काल्पनिक पूर्त्तिका द्योतन करता है और पुरुषोंमें साधारणतः हस्तमैथुनका द्योतक होता है। इसी कारण यह अशुभ प्रतीक समझा गया है।

दन्ता यस्य विशीर्यन्ते केशा यस्य पतन्ति च ।
धननाशो भवेत्तस्य व्याधिपीड़ाप्यसंशयम् ॥ (मार्कण्डेय)

ग्रन्थान्तरमें भी कहा है—

दन्त चन्द्रार्कनक्षत्र देवता दीपचक्षुषाम् ।
पतनं वा विनाशो वा स्वप्ने भेदो नगस्य वा ॥
इत्येते दारुणाः स्वप्ना रोगी यैर्यातिपञ्चताम् ।
अरोगः संशयं गत्वा कश्चिदेव विमुच्यते ॥

अब दो एक स्वप्नोंमें प्रतीकोंका प्रयोग देखें।

(१) "कुमारी एस. ने स्वप्नमें देखा कि—'वह एक बड़ी ऊँची इमारतसे गुजरीं जिसमें धुवां निकल रहा था। तब कुछ लपटें निकलीं और उन्हें भयानक गर्मीका अनुभव हुआ।'

विश्लेषणः—कुमारी एस. प्रेममें बहुत सौभाग्यवती नहीं रही हैं। वह सुशिक्षित, बुद्धिमती और सुन्दरी हैं किन्तु ज़रा ज्यादा संयत होनेके कारण साधारण युवकके अनुकूल नहीं पड़तीं। उनके बहुतसे प्रशंसक थे, किन्तु किसी न किसी कारणसे वरणीय पुरुष या तो मिलता नहीं था, या विवाहके मार्गपर अग्रसर नहीं होता था। स्वप्न-रात्रिके पहले वाले दिन वह अपने एक मित्रके यहाँ गयीं जिसने उन्हें उनके एक प्रशंसक टी. के बारेमें चिढ़ाया। मित्रने कहा कि उसके सुननेमें आया है कि टी. कुमारी एस०से निरन्तर मिलते हैं और यह पूछा कि मंगनीका एलान कब होगा, इत्यादि। कुमारी एस. परीशान हुईं और उन्होंने विरोध करते हुए कहा कि इस अफवाहमें कोई सचाई नहीं है और यह बिलकुल गप्प है। किन्तु उनके हृदयमें यह भाव था कि टी. उनके साथ विवाह कर सकते हैं। इस बातचीतका अन्त उनके मित्रके इस साभिप्राय कथनसे हुआ कि 'यत्र यत्र धूमः तत्र तत्र वह्निः'। कुमारी एस. का स्वप्न उनकी इच्छाकी पूर्त्ति करता है। बहुत ऊँची इमारत वे स्वयं हैं वे बहुत लम्बी हैं। वह धुआं देखती हैं फिर लपटें देखती हैं और अत्यधिक उष्णताका अनुभव करती हैं। "यत्र यत्र धूमः तत्र तत्र वह्निः" इस कथनको ही स्वप्नने मूर्त्तिमान किया है। और चूँकि स्वप्नद्रष्टा ही स्वप्नका मुख्य पात्र होता है—वे स्वयं ऊँची इमारतके रूपमें अवतरित हैं। इमारत शरीरका तथा आग और गर्मी प्रेमके प्रतीक हैं।

यह स्वप्न इस बातका बड़ा अच्छा उदाहरण है कि किस प्रकार अमूर्त विचार स्वप्नमें मूर्त्तिमान किये जाते हैं।" (त्रिल)

(२) "एक युवतीने स्वप्न देखा कि 'एक पुरुष एक बड़ी चंचल छोटी भूरी घोड़ीपर सवार होनेकी कोशिश कर रहा है। उसने तीन बार प्रयत्न किया, किन्तु हर बार गिर गया। आखिरकार चौथी बारके प्रयत्नमें सफल हुआ और घोड़ीको आगे पीछे दौड़ाने लगा।" प्रकट रूपसे स्वप्न देखनेवाली स्वप्नमें दिखाई नहीं दे रही है। किन्तु हम जानते हैं कि वह पुरुष और घोड़ी इनमेंसे किसी न किसीके छद्म वेशमें अवश्य ही होगी। क्योंकि स्वप्नकी नाटकीयताके सम्बन्धमें यह एक विशेष सिद्धान्त है (दूसरा विशेष सिद्धान्त प्रतीकोंका प्रयोग है) कि स्वप्नद्रष्टा अवश्य ही स्वप्नमें किसी न किसी रूपमें रहता है और प्रायः वही उसमें मुख्य पात्र होता है। प्रस्तुत स्वप्नके विश्लेषणमें यह बात इस प्रकार प्रकट हुई। जब उक्त युवतीसे पूछा गया कि 'घोड़ी'से उसके मनमें किन बातोंका उदय होता है, तो उसे अकस्मात् याद आया कि जब वह छोटी लड़की थी उस समय उसके पिताने उसे बताया था कि उसके औपाधिक नाम 'शेवाल'का अर्थ फ्रेंच भाषामें घोड़ी है। वह स्वयं भी छोटी, सांवली और चञ्चल है। अर्थात् वैसी ही है कि जैसा कि उसने अपने स्वप्नकी घोड़ीका वर्णन किया था। अतएव यह सन्देह होता है कि यह घोड़ी उसीका प्रतिनिधित्व करती है। स्वप्नके पुरुषको पहचानकर उसने अपना एक अत्यन्त घनिष्ट मित्र बताया। जब उसे यह बतानेको कहा गया कि इस पुरुषके सम्बन्धमें उसके मनमें क्या आता है, तो उसने अन्तमें प्रकट किया कि वह उसके साथ बहुत ही सरगर्मीके साथ प्रेम-प्रदर्शन कर रही थी। उसके लिए उस पुरुषका बड़ा प्रबल आकर्षण था।

और तीन वार उसकी ओरसे इतनी कामोत्तेजना व्यक्त हो गयी थी कि पुरुषने उसके साथ रतिकी चेष्टाकी थी। किन्तु हरवार उसकी नैतिक भावनाओंने उसे बचा लिया था और उसने उस पुरुषको तिरस्कृत कर दिया था। स्वप्नमें उस पुरुषकी तीन वार घोड़ीपर सवार होनेकी चेष्टा इन्हीं सब वातोंका प्रतीक है। किन्तु निद्राकी अवस्थामें वे निग्रह शक्तियाँ उतनी सक्रिय नहीं थीं जिन्होंने जाग्रदवस्थामें उसकी रक्षा की थी। उनका दमन ढीला पड़ गया था और उसने स्वप्नमें देखा कि उसने वह कामतृप्ति पाई जिसकी उसे वस्तुतः अभिलाषा थी। स्वप्नमें पुरुषके अन्तिम बार घोड़ीपर सवार हो जाने और उसे इधरसे उधर दौड़ानेमें यही बात व्यक्त हुई है।" (फ्रिंक)

प्रतीकोंके और अधिक उदाहरण प्रसंगान्तरमें मिलेंगे। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सार्वभौम होने पर ये विभिन्न व्यक्तियोंमें विल्कुल ही भिन्न तात्पर्य रख सकते हैं और आमतौरपर स्वप्नका मतलव तबतक नहीं जाना जा सकता जबतक कि विश्लेषक स्वप्नद्रष्टाको अच्छी तरह जानता न हो। साँपोंके स्वप्न बहुत होते हैं, किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि हर हालतमें साँप पुरुषलिंगका ही द्योतन करता है। कालान्तरमें मूल प्रतीक विकृत और विकसित भी हो जाते हैं।

व्यक्तिगत विशिष्ट उपमानों और सार्वभौम प्रतीकोंके मध्यमें हर राष्ट्र या जातिमें अपने अपने राष्ट्रीय या जातीय प्रतीक होते हैं जो तत्तत् राष्ट्र या जातिमें सामान्य रूपसे पाये जाते हैं। नागों और सुपर्णोंके जातीय लांछनों (टोटेम्स) का उल्लेख ऊपर हो चुका है। रंगोंके प्रतीकात्मक अभिप्रायसे हम सभी परिचित हैं।

सर्वाणि शुक्लान्यतिशोभनानि कार्पास भस्मौदनतक्र वर्ज्यम्।

सर्वाणि कृष्णान्यतिनिन्दितानि गोहस्तिदेवद्विजवाजिवर्ज्यम् ॥
(बृहस्पति)

यहाँ स्वप्नमें आमतौरपर सफेद रंगको शुभ और कालेको अशुभ बताया गया है। साहित्यिक रूढ़िमें भी रंगोंका तात्पर्य इसीप्रकार बताया गया है। अन्य जातीय प्रतीकोंके उदाहरण प्रकरणान्तरमें दिये जायंगे।

स्वप्नको नाटकीय प्रणालीसे जिन मानसिक व्यापारोंका सीधे तरीक़ेसे चित्रण नहीं हो सकता, उनके व्यञ्जनके लिए उसे जिन विशेष उपायोंका अवलम्बन करना पड़ता है उनमेंसे कुछका उल्लेख ऊपर हो चुका है। इसी प्रकार स्वप्नतत्त्ववेत्ताओंने स्वप्नकी नाटकीय वृत्तिके कुछ और निश्चित नियम स्थिर कर दिये हैं जिनका प्रयोग स्वप्नके उदाहरणोंमें ही देखना उपयुक्त और सरस होगा।

नाटकीय प्रणालीसे अव्यक्त चित्तके विचारोंको चित्रोंके रूपमें मूर्त्तिमान् किया जाता है। ये चित्र अधिकतर दृश्यात्मक या चाक्षुष होते हैं, हालाँ कि स्पर्श, शब्द तथा अन्य ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष भी होते हैं। इस प्रकारकी कार्यप्रणालीकी शक्ति स्वभावतः सीमित है। कुछ बातोंका तो यह चित्रण कर ही नहीं सकती। न्यायमूलक (मानसिक) सम्बन्धोंका चित्रण प्रायः नहीं ही हो सकता। जैसे 'यदि', 'जब', 'या', 'क्योंकि' इत्यादि भाव चित्रित नहीं किये जा सकते और प्रायः इन्हें चित्रित करनेकी कोई चेष्टा नहीं की जाती। कभी कभी स्वप्नके भिन्न भिन्न अव्यक्त विचारोंमें इस प्रकारके जो सम्बन्ध रहते हैं उन्हें विशेष उपायोंसे चित्रित किया जाता है। जैसे गौण या हेतु वाक्यके विचारोंको एक प्रारंभिक स्वप्नमें चित्रित कर दिया जाता है और फिर मुख्य या निर्णय वाक्यके विचार मुख्य स्वप्नके रूपमें बादको आते

हैं। दो भावों, वस्तुओं या व्यक्तियोंके तादात्म्य या समानताको उनके चित्रोंके मुख्य अंशोंका संमिश्रण करके व्यक्त किया जाता है। इस प्रकारका सम्मिश्रण स्वप्नकी कार्यप्रणालीका एक मुख्य अङ्ग है यद्यपि यह नाटकीय वृत्तिका ही परिणाम और अङ्ग है। तदात्मीकरणके प्रसंगमें पिछले अध्यायमें एक ऐसे पुरुषका उल्लेख हो चुका है, जिसकी आदर्श पत्नीकी कल्पनामें पन्द्रहसे कम स्त्रियोंके गुणोंका समावेश नहीं था। यदि कोई पुरुष किसीसे अपनी आदर्श स्त्रीका वर्णन करने लगता है तो देखिये वह कितनी स्त्रियोंसे मसाला इकट्ठा करता है। 'वह अमुक स्त्रीकी तरह लम्बी होगी, उसके वाल अमुक स्त्रीकी तरह होने चाहिएं इत्यादि। ऐतिहासिक व्यक्तियोंके सम्बन्धमें भी हमारी कल्पना प्रायः बहुतसे ऐसे व्यक्तियोंकी कल्पनाओंका संमिश्रण ही होती है जिन्हें हम अपने सामने देखते या जानते हैं। इसी प्रकार एक स्त्रीके वर्णनसे मालूम हुआ था कि उसके आदर्श पौराणिक देवता अपोलोके चरित्रमें कमसे कम आधे दर्जन व्यक्तियोंका समावेश था। कविताओंमें तो अनेक उपमानोंके सम्मिश्रणसे एक पूरा शिखनख तैयार कर देनेकी प्रणालीसे हम खूब वाकिफ़ हैं। कभी कभी व्यङ्ग चित्रोंमें हम कवियोंकी इस प्रकारकी मिश्र कल्पनाओंके चित्र पाते हैं अन्य चित्रों, कहानियों तथा पौराणिक कल्पनाओंमें भी औपम्यमूलक मिश्रचित्र जानवरों और मनुष्योंके दिखाई देते हैं।

किन्तु यहाँ पर यह ख्याल कर लेना चाहियेकि स्मरणकी, जिसके आधार पर स्वप्नचित्र उपस्थित होते हैं, साहश्य और साहचर्यमूलक अनुवन्ध मात्रसे पूरी व्याख्या नहीं होती। वर्त्तमान उद्बोधकसे अनुवद्ध अनेक स्मृतियोंमें चुनावका काम सदा स्वारस्य या इच्छाका संवेग ही करता है, बल्कि यों कहना

चाहियेकि साहश्य और साहचर्यके ग्रहणमें भी मूल आवेग ही है। कुछ हद तक उसे इनका निर्माता भी कहा जा सकता है। स्वारस्य न होने पर स्पष्टसे स्पष्ट साहश्य और साहचर्य ग्रहण नहीं किये जाते और स्वारस्य होने पर खाहमखाह साहश्य ढूँढ़ लिये जाते हैं और एक बारका साहचर्य भी ग्रहीत होता है। बाज-मामिलोंमें तो साहचर्य और साहश्यका अंश इतना गौण होता है कि उसे नहींके बराबर कह सकते हैं। आवेगकी ही सर्वथा प्रधानता होती है। ऐसे मौकों पर एक तीसरे प्रकारके आवेगमूलक अनुबन्धकी कल्पना करनी पड़ती है। हालांकि आवेग हर प्रकारके अनुबन्धका एक आवश्यक अङ्ग होता है और सिद्धान्ततः उसे दो प्रकारके अनुबन्धोंके मुकाबले तीसरे प्रकारका अनुबन्ध नहीं कहा जा सकता। वास्तवमें अनुबन्धका मूल तो आवेग ही है, साहश्य और साहचर्य तो उसकी अभिव्यक्तिके मार्गमात्र हैं। किन्तु व्यावहारिक सुविधाके लिए आवेगकी प्राधान्यमूलक स्पष्टताके कारण एक तीसरे प्रकारका आवेगमूलक अनुबन्ध भी स्वीकार किया जा सकता है। इसका नियम यह है कि समान आवेगोंसे संश्लिष्ट मानसप्रत्यय परस्पर अनुबद्ध हो जाते हैं। अर्थात् इन पृथक् प्रत्ययोंमें आवेग ही संयोजकका काम करता है न कि उनका साहश्य या साहचर्य। वे इसलिए नहीं जुड़े होते कि वे पहले साथ साथ देखे गये हैं या सदृश प्रतीत हुए हैं, किन्तु इसलिए कि वे समान अवेगसे अनुरञ्जित अर्थात् समान रस-ध्वनिसे ध्वनित हैं। हर्ष, शोक, राग, द्वेष, विस्मय, निर्वेद, अभिमान आदिमेंसे प्रत्येक भाव एक आकर्षण-केन्द्र बन सकता है जिसके चारों ओर ऐसे अनेक प्रत्यय या घटनाएँ एकत्र हो जाती हैं जिनमें कोई बौद्धिक सम्बन्ध नहीं होता, किन्तु जो उसी भावसे भावित हैं। चूँकि

इस प्रकारका अनुबन्ध आवेगसे घनिष्ट भावसे जड़ित है और उसीका चिह्न होता है, इसलिए स्वप्न और काव्यमें इसका बाहुल्य देखा जाता है जहाँ कि दृश्यात्मक कल्पना, जो आवेगकी भाषा है, पूर्ण स्वच्छन्दतासे काम करती है। वास्तवमें इस प्रकारकी कल्पना सर्वथा उन आवेगोंसे प्रेरित होती है जो कल्पनाप्रसूत चित्रोंसे संश्लिष्ट रहते हैं। ये चित्र उस आवेग-केन्द्रका उद्‌घाटन करते हैं जिसके चारों ओर वे जमा हुए हैं। यहीं एक बात पर और विचार कर लेना चाहिये। यह तो स्पष्ट ही है कि 'सम्मिश्रण' दृश्यात्मक और नाटकीय भाषाका आवश्यक अङ्ग है क्योंकि विचारोंको मूर्त्तरूप देनेमें, जैसे चित्रकला में, 'समान', 'सदृश' आदि औपम्यसूचक भावोंके-जो कि भेदको कायम रखकर आंशिक अभेदकी सूचना देते हैं—द्योतन का कोई सीधा तरीका नहीं रहता। या तो दो वस्तुओं को अलग अलग, साथ साथ या पास पास चित्रित कर दिया जाय, या दोनोंको मिला दिया जांय। आवेगमूलक अनुबन्धमें सादृश्यादि बाह्यगुणों के गौण होनेके कारण, उपमान और उपमेय को अलग रखनेसे उनके अनुबन्धका ग्रहण होना कठिन है। यही कारण है कि स्वप्न और काव्यकी आवेगबहुल भाषा सम्मिश्रण का ही सहारा लेती है। आवेगकी तीव्रताके कारण जो चित्र पारस्परिकसामीप्यसे सन्तुष्ट नहीं होते; वे सम्मिश्रण द्वारा सायुज्य लाभ करके तृप्त होते हैं। इस दृष्टिसे आवेगकी ओरसे चलनेपर, जो काव्यको उसकी विशेता प्रदान करता है, उपमाका मूल रूपक दिखाई देता है। इस दृष्टिसे रूपकको उपमाका अतिशय कहनेके बजाय उपमाको रूपक का बिखराव कहना चाहिये। रूपक और उपमाका वही सम्बन्ध है जो अनुबन्धके कारणोंमें आवेग तथा सादृश्यका है। उपमामें आवेग बिखरकर सदृश वस्तुओंमें विनियुक्त हो जाता है।

और रूपकमें आवेगके चारों ओर अनेक चित्र सम्मिश्रित हो जाते हैं। इस अर्थमें उपमा रूपकका उल्टा भी है। (दे० 'विनियोग') रूपकका मूल उपमाको मानने या समानताको पृथक् सामीप्य द्वारा व्यक्त करनेमें आवेगपर बुद्धिवृत्तिका प्रभाव लक्षित होता है। इसी कारण सिवाय वृत्त्यात्मक काव्यके अन्य शुद्धमूर्तिमती और ध्वन्यात्मक कलाओंमें इस उपायका अधिक आश्रय नहीं लिया जाता। काव्यमें बुद्धिगम्य संकेतोंका प्रयोग होनेसे भेदाभेद सम्बन्ध आसानीसे गृहीत हो सकता है। आवेग अधिक मूर्तिमत्ताकी ओर प्रवृत्त होता है। जहाँ बुद्धिके विषय अमूर्त सम्बन्ध होते हैं, आवेगके विषय मूर्त पदार्थ होते हैं।

स्वप्नमें सम्मिश्रणके उदाहरण बड़ी आसानीसे मिल जायँगे शब्द, चित्र, प्रत्यय और स्थितियाँ सभीमें सम्मिश्रण होता है। अनेक ऐसे विभिन्न व्यक्तियोंके आंशिक गुणोंके मिश्रचित्र बहुत आते हैं जिनकी स्मृतियाँ हमारे मनमें उनके प्रति समान भावके द्वारा जुड़ी रहती हैं। स्वप्नमें कोई दृश्य दिखाई देता है जिसे हमने कभी नहीं देखा है फिर भी वह देखा-सा प्रतीत होता है। यह दृश्य अनेक देखे हुए दृश्योंका सम्मिश्रण ही होता है। इसी प्रकार हमें बहुधा प्रतीत होता है कि हमने किसी व्यक्ति या वस्तुको स्वप्नमें देखा 'जो कि फिर भी ठीक वही व्यक्ति या वस्तु नहीं थी'। एक छ बरसकी लड़कीने नृसिंहकी कथा सुननेके बाद देखे हुए अपने स्वप्नका बड़ा मनोरञ्जक वर्णन किया था, 'मैंने मनुष्यसिंहका स्वप्न देखा, वह पिताजी नहीं था, किन्तु वह एक मनुष्य था जो कि पिताजी था। कोई सिंह नहीं था, किन्तु फिर भी ऐसा प्रतीत होता था कि एक सिंह था।" यह स्पष्ट और सीधा सादा सम्मिश्रण पिता और नृसिंहका है। स्वप्नकी बहुतसी अत्यन्त विचित्र शकलें जैसे कि विचित्र रूपके

जानवर या आधे मनुष्य और आधे पशुरूपी व्यक्ति सम्मिश्रणके ही फल होते हैं। ये तभी तक हास्यास्पद रहते हैं जबतक कि इनके अवयवोंका विश्लेषण नहीं हो जाता। ऐसे अपरिचित और निरर्थक प्रतीत होनेवाले मिश्र चित्रोंके निर्माणमें दमनकी प्रेरणा भी काम करती है। इनके मूलमें ऐसे आवेग हो सकते हैं जो हमारी जाग्रत् चेतनासे अस्वीकृत और छिपे हुए हैं। जिस प्रकार विभिन्न दृश्यों या वस्तुओंकी स्मृतियोंके सम्मिश्रणसे नये दृश्य या वस्तुएँ प्रस्तुत हो जाती हैं और विभिन्न व्यक्ति नये मिश्रव्यक्ति बन जाते हैं, उसी प्रकार अनेक भिन्न शब्द या वाक्योंसे नये शब्द बन जाते हैं जो जाहिरा बिलकुल निरर्थक होते हैं। एक रोगीने स्वप्नमें एक पत्र पाया जिसपर हस्ताक्षरके स्थानपर 'हेल्वा' लिखा था। विश्लेषण करनेपर यह शब्द हेलेन और एल्वा इन दो शब्दोंमें विभक्त हो गया। ये दो नवयुवतियोंके नाम थे जिनसे वह खत किताबत करनेके लिए उत्सुक था।

सम्मिश्रणका एक आवश्यक परिणाम या दूसरा पहलू 'संक्षेपण' है। सम्मिश्रण अपने अनेक अवयवोंके द्वारा इन अवयवोंसे अनुबद्ध अव्यक्त चित्तके बहुतसे विकारोंको एक ही चित्रमें व्यक्त कर देता है। इसलिए स्वप्नकी व्यक्त सामग्री सदा अव्यक्त सामग्रीकी अपेक्षा बहुत कम और संक्षिप्त होती है। इसके अतिरिक्त अक्सर व्यक्त स्वप्नका एक अवयव अव्यक्तके अनेक विचारोंका द्योतक होता है। व्यक्त-स्वप्नके ऐसे अवयव अतिनिर्दिष्टकहलाते हैं। किन्तु अतिनिर्देश कोई स्वप्नकी विशेषता नहीं है। सभी प्रत्ययोंके साथ अनेक अनुभवोंकी स्मृतियां अनुबद्ध रहती हैं। इसी प्रकार स्वप्नका प्रत्येक अंग अपने अनेक अनुबन्धोंसे निर्दिष्ट होता है। अपने अनेक अनुबन्धोंकी योग्यता और

अनुकूलताके कारण ही वह स्वप्नके मूल अव्यक्त आवेगका प्रतिनिधि चुना जाता है। इस प्रकार वह अपने सारे अनुबन्धोंके साथ वस्तुतः उस आवेगका ही द्योतन करता है, किन्तु दूसरी दृष्टिसे अपने सारे अनुबन्धोंका भी द्योतन करता है। इसी अर्थमें स्वप्नों और पौराणिक कथाओंकी अनेक अविरोधी व्याख्याएँ संभव होती हैं। काव्यकी अनेक ध्वनियां भी इसी प्रकार होती हैं। अतिनिर्देश निम्न लिखित उदाहरणमें अच्छी तरह दिखाई देता है।

"एक रोगिणी युवतीने अपना एक स्वप्न इस प्रकार बताया—'गतरात्रिमें मैंने स्वप्न देखा कि मैं अपनी एक सखीके साथ एक खास स्थानमें टहलने गयी। हम एक दुकान पर रुकीं और खिड़कीपर सजे हुए कुछ टोप देखे। मैं समझती हूँ कि आखिर-कार मैं अन्दर गयी और एक टोप खरीदा'। स्वप्नका विश्लेषण इस प्रकार है:—जब रोगिणीसे यह पूछा गया कि स्वप्नकी सखीके साथ टहलने की बातसे उसे क्या याद आता है तो उसे फौरन स्वप्नके पूर्व दिनकी एक घटना याद आई। इसदिन वह सचमुच उसी जगह उसी लड़कीके साथ टहलने गयी थी और उसी दुकानकी खिड़कीमें टोप देखे थे, जिसे कि उसने स्वप्नमें देखा था; किन्तु उसने टोप खरीदा नहीं था। यह पूछनेपर कि उसके मनमें और क्या आ रहा है उसे यह ख्याल आया: स्वप्नके दिन उसके पतिकी तबीयत कुछ खराब थी और यद्यपि वह जानती थी कि यह कोई चिन्ताकी बात नहीं है, फिर भी वह बड़ी उद्विग्न थी और इस भयको दूर नहीं कर पाती थी कि पतिकी मृत्यु हो सकती है। इसी कारण जब स्वप्नवाली सखी संयोगवश उसके यहां आ गयी, तो पतिने सलाह दी कि सखीके साथ टहल आनेसे उसका जी बहल जायगा। इतना कहनेके

बाद रोगिणीको यह भी खयाल आया कि टहलते वक्त एक पुरुषकी चर्चा हुई थी जिससे वह अपने विवाहके पहिले परिचित थी। और बतलानेके लिए जोर देनेपर वह हिचकी, किन्तु अन्तमें उसने बतलाया कि उसका विश्वास है कि एक समय वह उस पुरुषसे प्रेम करती थी। यह पूछने पर कि फिर उसने उससे शादी क्यों नहीं की, तो उसने हँसकर जवाब दिया कि उसे इस बातकी कभी संभावना ही नहीं दिखाई दी। इसका कारण उसने यह बताया कि वह पुरुष इतना धनी था और उसकी सामाजिक मर्यादा इससे इतनी ऊपर थी कि इसने उसे सदा अपनी पहुंचसे बाहर समझा था। इसके बाद जोर देनेपर भी वह इस विषयको आगे बढ़ानेके लिए प्रवृत्त नहीं हुई और यही कहती रही कि वह सब लड़कपनकी एक बेवक़ूफ़ी थी जिससे कोई नतीजा नहीं था।

"तब उसे टोप खरीदनेके सम्बन्धमें सोचने और उससे उसके मनमें जो कुछ आये बतानेको कहा गया। तब उसने बताया कि उसने दुकानकी खिड़कीमें देखे हुए टोपोंको बहुत पसन्द किया था और उसकी इच्छा थी कि वह उनमेंसे एक खरीद सकती यद्यपि वह जानती थी कि यह संभव नहीं है, क्योंकि उसका पति गरीब है। किन्तु स्पष्ट है कि स्वप्नमें उसकी यह इच्छा पूरी हुई, क्योंकि वहाँ वह टोप खरीद लेती है। किन्तु इतनेसे ही मामला खत्म नहीं होता। उसे एकाएक याद आया कि स्वप्नमें उसने जो टोप ख़रीदा था वह काला टोप अर्थात् 'मातमीटोप' था।

"इस छोटीसी बात पर जो कि अब तक छिपाई गयी थी, पूर्वप्राप्त अनुबन्धोंके साथ विचार करने पर स्वप्नकी व्याख्याकी कुञ्जी फौरन हाथ लग जाती है। स्वप्नके दिन रोगिणी अपने

पतिकी मृत्युकी आशंकासे चिन्तित थी। वह स्वप्नमें 'मातमी-टोप' खरीदती है। जिसका तात्पर्य यह निकलता है कि उसकी कल्पनामें उसके पतिकी मृत्यु हो गयी है। वास्तव जीवनमें वह टोप नहीं खरीद सकी थी, क्योंकि उसका पति गरीब आदमी था। स्वप्नमें वह टोप खरीद लेती है इससे अवश्य ही ऐसे पतिका संकेत मिलता है जो गरीब नहीं है। वह पति कौन हो सकता है, इस प्रश्नके उत्तरके लिए हमें केवल स्वप्नके पूर्वांशके अनुबन्धोंको लेना होगा, अर्थात् उस पुरुषको जिसके बारेमें बात करनेसे उसने इनकार कर दिया था और जिसके साथ उसका प्रेम रहा हो सकता है। वह पुरुष उसके कथनानुसार धनी है और उसकी पत्नी होने पर वह जैसे टोप चाहती खरीद सकती है। अतएव यह परिणाम निकाला जा सकता है कि यह रोगिणी अपने पतिसे असन्तुष्ट थी, अव्यक्तरूपसे वह उससे, उसकी जान गवाँ कर भी, मुक्त होना चाहती थी और उस दूसरे पुरुषसे विवाह करना चाहती थी जो कि उसकी इच्छाओंकी पूर्ति इससे अच्छी तरह कर सकता था।

"जब रोगिणीको उसके स्वप्नकी यह व्याख्या बताई गयी, उसने न सिर्फ इस परिणामकी सत्यता स्वीकार की, बल्कि, चूँकि अब उसका संकोच भंग हो गया था, इसके समर्थनमें और बातें बताई। इनमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि विवाहके बाद उसे मालूम हुआ कि जिस पुरुषको उसने अपनेसे इतना ऊपर समझा था, वह वस्तुतः उसके प्रति इतनी उपेक्षा नहीं रखता था जैसी उसने कल्पनाकी थी। उसने स्वीकार किया कि इस बातसे उस पुरुषके प्रति उसका पुराना प्रेम जाग्रत् हो उठा था और उसे विवाहमें जल्दी करनेके लिए पश्चात्ताप होता था, क्योंकि उसने यह महसूस किया कि यदि वह कुछ ही

दिन और प्रतीक्षा करती, तो उसकी अवस्था इससे अच्छी होती।

"इस उदाहरणमें रोगिणी द्वारा बताई स्वप्नकी व्यक्त सामग्री जिन अव्यक्त विचारोंको चेतनामें प्रकाशित करती है, उन्हें इस प्रकार कहा जा सकता है: 'मैं ग़रीबीसे तंग आ गयी हूँ। मैं अपने पतिकी परवा नहीं करती। वह मरकर मुझे मुक्त करता है। मैं उस आदमीसे विवाह करती हूँ जिसे मैं पसन्द करती हूँ और इस प्रकार मैं गरीब नहीं रहती'।" (फ्रिक)

इस उदाहरणमें एक 'मातमीटोप' खरीदनेकी घटनासे गरीबीसे मुक्ति, पतिकी मृत्यु तथा नये, अच्छे विवाहका द्योतन होता है। इसलिए स्वप्नकी यह घटना अतिनिर्दिष्ट कही जायगी। ध्यान देनेकी बात है कि अव्यक्त स्वप्नके दो विचार इस घटनाके दो पहलुओंके रूप में सम्मिश्रित हैं, एक टोपके 'खरीदे जा सकने'में, दूसरा टोपके 'काले होने'के गुणमें। यह भी ख़्याल करनेकी बात है कि अपने विभिन्न अनुबन्धोंके द्वारा अव्यक्त स्वप्नके अनेक पहलुओं अर्थात् प्रस्तुत भावसे सम्बद्ध अनेक विचारधाराओंको द्योतित करनेकी योग्यताके कारण ही यह घटना व्यक्त स्वप्नमें इन विचारोंके प्रतिनिधि रूपमें चुनी गयी है। स्पष्ट है कि यद्यपि इन अनुबन्धोंमें से किसी एकको या दोनोंको अलग अलग, बिना विरोधके स्वप्नका अर्थ बनाया जा सकता है, किन्तु उसके वास्तविक अर्थमें—अपनी वर्तमान अवस्थासे असन्तोष—में ये दोनों अर्थ अविच्छिन्न रूपसे मिले हुए हैं और उसके अविच्छेद्य अंग और कारण हैं, जो उस असन्तोषके मूलभावका स्वरूप और विषय बताते हैं और स्वयं उसके द्वारा अभिन्न रूपसे प्रकाशित और समन्वित होते हैं। अनेक ध्वनियोंसे युक्त काव्यके अनेक अर्थोंका समन्वय भी इसी प्रकार होता है।

एक और बात जो इस उदाहरणमें दिखाई देती है वह यह है कि स्वप्नकी व्यक्त सामग्रीमें आमतौर पर ऐसे मामिले पेश होते हैं जो बड़े तुच्छ प्रतीत होते हैं। इस स्वप्नमें व्यक्त सामग्रीका सबसे मुख्य प्रतीत होनेवाला अंश 'टहलने'की क्रिया है, यद्यपि वस्तुतः वह स्वप्नका सबसे कम महत्वका अंश है। साथ ही स्वप्नके सबसे महत्त्वपूर्ण अंश—टोप खरीदनेकी क्रिया—को गौण स्थान दिया गया था और रोगिणीने उसका जिक्र इस प्रकारसे किया था, जैसे वह बादको याद आगया हो।

विनियोग

विनियोग एक अर्थमें सम्मिश्रणका उल्टा कहा जा सकता है। इसमें आवेग अपने चारों ओर अनेक चित्रोंको एकत्र करनेके बजाय स्वयं अनेक अनुबद्ध चित्रोंपर बिखर जाता है। विनियोग सादृश्यके कारण हो सकता है। जब कोई बुद्धिवृत्ति किसी तीव्र आवेगसे संश्लिष्ट होती है तो उससे सादृश्य रखनेवाली वृत्ति भी उसी भावको जाग्रत् करती है। विनियोग साहचर्यके कारण भी हो सकता है। जब अनेक बुद्धिवृत्तियाँ साथ साथ रही हैं तो पहली वृत्तिके साथ संश्लिष्ट आवेग, यदि काफी प्रबल हो तो, दूसरी वृत्तियोंमें सञ्चरित हो जाता है। पहले प्रेमीका जो भाव प्रेमिकाके व्यक्तित्वसे अनुबद्ध होता है, वही भाव उसके कपड़े, सामान, मकानमें स्थानान्तरित हो जाता है। अनियन्त्रित राजतन्त्रमें राजाके व्यक्तित्वके प्रति जो भक्ति होती है वह राज गद्दी, दण्ड, छत्रादि प्रभुताके चिह्नोंमें अर्थात् राजासे कमोबेश घनिष्ट सम्बन्ध रखनेवाली हर चीजमें विनियुक्त हो जाती है।

सम्मिश्रण और विनियोग दोनोंमें अनेक मौकोंपर चित्रों और भावोंका यह सम्मेलन अज्ञातरूपसे होता है। इस क्रियाका एक भाग अर्थात् नये चित्रोंका ग्रहणमात्र चेतनामें होता है। दूसरा भाग, अर्थात् किसी पूर्वानुभूत चित्रके साथ उसकी समताका ग्रहण और उससे संश्लिष्ट आवेगसे संचरित होना, चेतनाके लिए अज्ञात रहता है। अर्थात् नयी वस्तुएँ देखने पर तुरन्त ही स्पष्ट रूपसे उनका पूर्वानुभूत वस्तु और उसके आवेगसे सम्बन्ध प्रतीत नहीं होने लगता। बहुधा ये मूल वस्तुएँ याद नहीं आतीं। ये मूलविषय किंचित् प्रयत्नके बाद याद आ सकते हैं। और कभी कभी तो ये

दमनके प्रभावसे बिल्कुल ही विस्मृत हो जाते हैं। इसी प्रकार बहुतसे कर्मकाण्डोंका मूल विस्मृत हो गया है। स्मृति चिह्नोंकी पूजा मूल व्यक्तित्वोंकी आराधना से सर्वथा स्वतन्त्र रूपसे होने लगती है और उसका स्थान ले लेती है। व्यक्तिगत जीवनमें भी ऐसा बहुत होता है। कुछ खास फूलों या रँगोंके प्रति हमारे अहैतुक रागका बहुधा यही कारण होता है कि ये फूल या रंग हमारे बचपनमें किसी ऐसे प्रिय व्यक्तिसे अनुबद्ध हो गये थे जिसे अब हम भूल गये हैं। अहैतुक भय भी इसी प्रकार उत्पन्न हो सकते हैं। इसी प्रकार चित्रोंके सम्मिश्रणके मूलमें भी ऐसे आवेग हो सकते हैं जो हमारी जाग्रत् चेतनासे अस्वीकृत और छिपे हुए हैं। किन्तु जब हम इस बातपर ध्यान देते हैं कि इन चित्रोंका व्यूहन किस प्रकार हुआ है तब हमें उस आवेगका ज्ञान होता है जिसपर हमने अभीतक ध्यान नहीं दिया था। प्रेमियोंके जीवनमें ऐसे गूढ़ अनुभवोंके अवसर बहुत आते हैं।

दमनके द्वारा हमारा मन स्वयमेव अप्रिय विषयोंसे अपनी रक्षा करता है। इसलिए समान आवेगसे संश्लिष्ट अनेक अनुबद्ध चित्रोंके व्यूहमेंसे आवेगके वास्तविक विषयतो अव्यक्त चित्तकी गहराईमें चले जाते हैं और अल्प महत्त्वके चित्र मुख्य चित्रोंसे अनुबद्ध होनेके कारण चेतनाके सामने मुख्य रूपमें उपस्थित होते हैं। कोई अव्यक्त विचार या प्रत्यय जिसका प्रवेश निग्रह शक्ति द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया है, अपनी क्रिया शक्तिको किसी ऐसे अनुबद्ध प्रत्यय में विनियुक्त करके, जो अधिक स्वीकार योग्य हो, चेतनामें प्रवेश और अपने आवेगको चरितार्थ करनेका अवसर पा सकता है। इस प्रकार व्यक्त स्वप्नमें जो चित्र मुख्य प्रतीत होता है वह अव्यक्त स्वप्नके मुख्य विचारका द्योतन नहीं करता। यही कारण है कि इतने

स्वप्न पूर्व दिनके तुच्छ अनुभवोंसे बने होते हैं और हमारी मुख्य चिन्ताएँ स्वप्नमें बहुत कम आती हैं। वस्तुतः वे आती तो हैं, किन्तु भेस बदले हुए होनेके कारण हम उन्हें पहचान नहीं पाते। व्यक्त सामग्रीकी तुच्छता देखकर यह न समझना चाहिए की स्वप्नमें तुच्छ बातोंका ही अभिव्यञ्जन है। इस प्रकारके दमनके साथ साथ विनियोगके द्वारा इन अल्प महत्त्वके चित्रोंमें ही आवेगका संचार भी हो जाता है। स्वप्नोंके अव्यवस्थित प्रतीत होने और विरोधाभासका मुख्य कारण यही है। अगर हम स्वप्नमें किसी बिल्लीके प्रति उन भावोंका अनुभव करें जो वस्तुतः हम उसके मालिकके प्रति अनुभव करते हैं तो हमें अजीब परीशानी होती है, किन्तु इसमें एक ऐसे विनियोगके सिवाय और कुछ नही है जिसका प्रस्थान बिन्दु विस्मृत हो गया है। मान लीजिये कि हमें बाल्यावास्थामें एक परीक्षा देनी पड़ी थी जो हमारी प्रौढ़ावस्थाकी किसी कठिनाईके साथ अनुबद्ध हो गयी है। अब यदि हम इम्तहानका स्वप्न देखते हैं तो हमें खयाल नहीं होता कि हम अपनी इस वर्तमान समस्याका स्वप्न देख रहे हैं जो हमें जाग्रत् जीवन में तंग कर रही है। हम यही समझते हैं कि हम उस मुद्दत पहिलेकी परीक्षाका ही स्वप्न देख रहे हैं और हमें आश्चर्य होता है कि स्वप्नमें हमें वह इम्तहान इतना महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ता था। इस प्रकारका विनियोग प्रायः भयानक स्वप्नोंमें प्रमुख रूपसे दिखाई देता है। जागनेपर हमें यह हास्यास्पद मालूम होता है कि हम किसी ऐसी चीजसे इतने डर गये जिससे कोई आशंका नहीं हो सकती थी। डरका कारण यह था कि हमने इस महत्त्व हीन वस्तुमें उस आवेगका विनियोग कर दिया था जो आशंकाके किसी वास्तविक कारणसे संश्लिष्ट था। "एक व्यक्तिने एक

पीले कुत्तेके द्वारा अपने ऊपर आक्रमण होनेका स्वप्न देखा। इस स्वप्नका आधार बचपनमें एक कुत्ते द्वारा सचमुच आक्रान्त होनेकी स्मृति थी, किन्तु स्वप्नके कुत्तेका विशेष पीलारंग एक डाक्टरके वेस्ट कोटका रंग था जो हालमें इस रोगीकी चिकित्सा कर रहा था। यहाँ पर कुत्तेके आक्रमणका डाक्टरके आक्रमण (रोगीका चिकित्सासे भय) के साथ सम्मिश्रण हुआ था। किन्तु स्वप्नमें तकलीफका वर्तमान कारण कुत्तेके चित्रमें प्रायः छिप गया था जो कि पहले कभी तकलीफका कारण हो चुका था। एक गर्भिणी नवयुवती इस भयके साथ सोई थी कि उसे रविवारके दिन बच्चा होगा और उस दिन डाक्टर न मिल सकेगा। उसने स्वप्न देखा कि अँगीठीकी नली वन्द हो गयी है और रविवार होनेके कारण चिमनी झाड़नेवाला नहीं मिलसका (वोदवें)।"

अनुयोजना

दृश्यात्मकता या नाटकीयता, सम्मिश्रण और विनियोगके अतिरिक्त स्वप्नकी कार्यप्रणालीका एक चौथा अङ्ग अनुयोजना है जो स्वप्नसे जागनेके बाद अपना काम करती है। स्वप्नको बयान करने और, यदि स्वप्न भूल गया है या भूल गया प्रतीत होता है तो,उसे याद करनेके समय वास्तविक स्वप्न इस क्रियाके द्वारा बहुत कुछ परिवर्त्तित हो जाता है। क्योंकि जाग्रत् मन स्वप्न-के विरोधोंको दूर करके और उसे कुछ हद तक बुद्धि सम्मतक्रम सहित एक कहानीका रूप देकर उसकी वास्तविक स्मृतिको संशोधित और परिवर्तित कर देना चाहता है। इस क्रियासे स्वप्नके वे भाग सबसे अधिक प्रभावित होते हैं, जहाँ अव्यक्त विचारोंका रूप परिवर्त्तन सबसे कमजोर होता है और ये परिवर्त्तन आम तौरपर इस रूप परिवर्त्तनको मजबूत बनानेका काम करते हैं। अधिकांश स्वप्नोंमें इस क्रियाका कोई महत्त्वपूर्ण भाग नहीं होता।

(४)

भयानक स्वप्नकी समस्या

पहले उन भयानक स्वप्नोंका जिक्र हो चुका है जो अव्यक्त आवेगकी प्रबलताके कारण स्वप्नद्रष्टाको जगा देते हैं अथवा जिनमें काल्पनिक भय निवृत्ति या इच्छापूर्तिकी चेष्टा सफल नहीं होती। ये तो ऐसे निवृत्यात्मक आवेगोंके कारण होते हैं जो मनुष्यकी जीवनरक्षाके लिए जरूरी हैं। इनका विषय सचमुच कोई भयकी वस्तु होती है, यद्यपि स्वप्न भयकी मात्राको बहुत बढ़ा देता है। किन्तु कुछ ऐसे भी भयानक स्वप्न होते हैं जिनकी व्याख्यापर यह सिद्धान्त लागू नहीं होता। ऊपरसे देखनेसे तो वे इच्छापूर्तिके चित्र नहीं प्रतीत होते पर उनके विश्लेषणसे प्रतीत होता है कि वे ऐसे आवेगोंमें केन्द्रित हैं जिनके विषयोंसे अव्यक्त चित्तकी निवृत्ति नहीं, बल्कि उनमें उसकी प्रवृत्ति है। बजाय भयके ये रागकी ही अन्तःप्रेरणासे बने होते हैं। इनमें इच्छापूर्तिका प्रयत्न ही चित्रित होता है, बल्कि कभी कभी इच्छापूर्ति हो भी जाती है। फिर भी आदमी तीव्र भयके साथ जागता है। ऐसे स्वप्न यह प्रश्न उपस्थित करते हैं कि इस प्रकारके भयके अतिरिक्त और सर्वथा प्रतिकूल कारणके साथ होनेवाले भयका कारण क्या है? इस प्रश्नके उत्तरका प्रयत्न करनेके पहले ऐसे एक स्वप्नका उदाहरण और उसकी व्याख्या समझ लेना जरूरी है।

"एक स्त्रीने स्वप्न देखा कि—'वह 'टाइटानिक' जहाज पर थी। जहाज डूब रहा था। भयभीत स्त्रियाँ और बच्चे भयानक चीत्कार कर रहे थे। तब किसीने चिल्लाकर कहा—'पहले स्त्रियाँ और बच्चे जायँ'। उसने अपने पतिको छोड़ना स्वीकार नहीं किया। एक अफसर आया जो उसे उसके विरोध करनेपर भी खींच ले गया। वह भयके मारे चिल्ला उठी और जाग गयी।' इस स्वप्नका स्वाभाविक आधार अनुबन्धोंसे यह मालूम हुआ कि एक दिन पहले उसने पढ़ा था कि किस प्रकार 'टाइटानिक' परके एक प्रमुख व्यक्तिकी पत्नीने सचमुच अपने पतिसे अलग होनेसे इनकार कर दिया था और बिना हिचकके उसके साथ मृत्युका आलिंगन किया था। आप देख सकते हैं कि स्वप्नमें स्थिति बिल्कुल उल्टी है। उसे भयानक दुःख है, क्योंकि वह अपने पतिसे अलग कर दी गयी।

"बात यह थी कि वह एक अफसरसे प्रेम करती थी जो उसके पासके ही स्थानमें तैनात किया गया था। इस सम्बन्धमें उसे अपने मनसे बड़ा संघर्ष करना पड़ा था। उसकी चिकित्साके लिए आनेमें वह भी एक कारण था। बोधपूर्वक तो वह स्वभावतः उस अफसरके प्रति आत्मसमर्पण नहीं कर सकती थी किन्तु अबोध पूर्वक स्वप्नमें वह समर्पण कर देती है और अपने पतिसे पृथक् हो जाती है। इस प्रकार एक ओर तो इच्छा पूर्तिकी सफल प्रेरणा दिखाई देती है, दूसरी ओर आशंका, जो दो विरुद्ध मानसिक शक्तियोंका द्वन्द्व मात्र है। हम यह भी देखते हैं कि स्वप्नका टाइटानिककी दुर्घटनासे वस्तुतः बहुत कम सन्बन्ध था। वह तो उसके दमित भावोंको व्यक्त करनेका माध्यम मात्र थी।" (ब्रिल)

स्वप्नमें इच्छापूर्ति ही चित्रणका मुख्य विषय है, यह तो स्पष्ट

ही है। क्योंकि यदि पतिके और अपने डूबनेके भयका चित्रण होता तो स्वप्नके निर्णीत सिद्धान्तोंके अनुसार इस आशंकाके कारण स्वरूप वास्तविक जीवनकी कोई आशंका होती जो कि अनुबन्धोंसे प्राप्त होती जिसके सर्वथा प्रतिकूल अनुबन्ध हम वस्तुतः पाते हैं। दूसरे ऐसा मानें तो स्वप्नमें पतिसे अलग हो जानेकी प्रेरणा कहाँसे आयी, इसका पता नहीं चलता, खासकर जब स्वप्नकी आधारभूत वास्तविक दुर्घटनामें स्थिति ठीक इससे उल्टी थी। इस दुर्घटनाको स्वप्नके आधार रूपसे चुनने और इस वास्तविक स्थितिको उल्टा कर लेनेकी स्वप्नकी क्रियाकी व्याख्या तो अनुबन्धोंसे प्राप्त इच्छा पूर्तिकी प्रेरणासे ही होती है। भयका चित्रण तो इस वास्तविक घटनाको ज्योंका त्यों रखकर भी हो सकता था। स्पष्ट है कि स्वप्नमें इच्छापूर्ति पति प्रेम और तज्जनित भयसे प्रबल पड़ गयी है। इसमें इच्छापूर्ति हो जाती है किन्तु बहुत बड़ा दाम चुका कर, कर्तव्य भावना और तज्जनित आत्मसम्मानकी हत्या करके। दुःखपूर्ण भय, इसी विरुद्ध भावका द्योतक है। स्पष्ट है कि यदि इच्छा पूर्तिमें अव्यक्त चित्तकी वासनाकी प्रेरणा थी तो यह विरोधी पश्चात्ताप दमनकारी सामाजिक कर्तव्य भावनाकी चोट खाई हुई निग्रह शक्तिकी प्रेरणा है, भय समाजका भय है। इस प्रकार ऐसे स्वप्न चित्तके असामञ्जस्य अर्थात् उसकी विभिन्न शक्तियोंके—वासना और निग्रहके—संघर्षके द्योतक होते हैं। चित्तकी इच्छाओंकी समञ्जसरूपसे पूर्ति न कर सकनेके कारण वे जगादेनेवाले होते हैं और उनका अन्त भयानक पश्चात्तापमें होता है। जैसे चटोर और बीमार आदमी, जिसे मिठाई खाना मना है, मिठाई खा तो लेता है, किन्तु उसका सारा मजा नुकसानके डर और पश्चात्तापसे किरकिरा हो जाता है। यहांपर प्रश्न यह उठता है कि

स्वप्नमें निद्रा रक्षाकी प्रवृत्ति तो इसीलिये वासनाओंकी तृप्ति उनका भेस बदल कर करती है कि वे निग्रह शक्तिको चौंका न दें, फिर इन स्वप्नोंमें ऐसा क्यों नहीं होता। किन्तु यह भी पहिले ही कहा जा चुका है कि वासनाओंके वेगकी और निद्रा अथवा निग्रहकी शक्तिके तारतम्यपर ही यह निर्भर करता है कि स्वप्न जगानेवाला होगा या सुलानेवाला।

साधारण इच्छापूरक और साधारण भयानक स्वप्नोंमें क्रमशः निद्राकी प्रवृत्ति और इच्छा (जाग्रति)का प्रावल्य होता है। इसी प्रकार दमित इच्छापूरक स्वप्नोंमें निग्रहके शासनके अन्दर रहकर ही यानी अपना रूप परिवर्तन करके जिससे आवेगका प्रस्फुटन भी कम ही हो सकता है—इच्छा सन्तुष्ट हो जाती है जिससे निद्रामें वाधा नहीं पड़ती। किन्तु जहाँ इच्छा इतनी प्रवल होती है कि वह निग्रहसे शासित नहीं हो पाती, वहाँ जाग ही जाना पड़ता है।

इस प्रकरणमें वर्णित द्वन्द्वात्मक भयानक स्वप्न इसी प्रकारका है। इसमें इच्छापूर्ति करीव करीव विना रूप परिवर्तनके हुई है। यहांपर निग्रहको तृप्त करनेवाला मूल इच्छापर कोई आवरण नहीं है। ऐसी हालतमें निग्रहका भयभीत हो उठना स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त अन्य आवरणके अभावमें निग्रह द्वारा प्रेरित भयानक दुःख ही उस (अनावृत इच्छा पूर्ति) का पर्दा वन जाता है। गोया इस वातका दुःख ही उस स्त्रीके स्वप्नका प्रधान विषय है कि वह अफसरके द्वारा जवरदस्ती अपने पतिसे अलग कर दी गयी। यह जवरदस्तीकी वात ध्यान देने योग्य है। इसमें उसके कार्यकी सफाईका संकेत मिलता है। यही कारण है कि

असमन्वित मानसिक जीवनके कारण जहां पर किसी प्रवल इच्छाकी पूर्ति निग्रहके दुःखके विना नहीं हो सकती, वहांपर स्वप्न प्रायः ऐसी आकस्मिक दुर्घटनाओंका उपयोग करता है जिनके द्वारा इच्छाके कार्य सिद्ध हो जाते हैं और इच्छाकी तृप्ति लाचारीके दुःखमें छिप जाती है। 'टाइटानिक'की दुर्घटना ऐसी ही घटना थी। इसने वहुतोंके स्वप्नोंको सामाजिक आधार प्रदान किया था।

ऐसी घटनाओंके चुनावसे यह तथ्य भी प्रकट होता है कि ऐसे स्वप्नोंमें भी प्रारम्भसे ही निग्रह सर्वथा लुप्त नहीं होता। हां, वह दवा जरूर रहता है। जव आवेगकी अदम्य प्रवलताके कारण आवृत न रहकर इच्छा अपनी पूर्तिकी आखिरी काष्ठापर पहुंचती है जहां उसका रूप नग्न और स्पष्ट होने लगता है उस समय निग्रह आहत होकर सचेत और सक्रिय हो उठता है और उसका स्थान भय ले लेता है जिससे स्वप्नद्रष्टा जाग जाता है। इसी कारण स्वप्नमें इच्छापूर्तिके ठीक पहले ही अपना अस्तित्व जाहिर करके इच्छापूर्तिकी अन्तिम क्रियाको उसने विरोध प्रकाशके द्वारा लाचारीका रूप दे दिया है।

किन्तु यहींपर इस स्वप्नमें एक और आवरण दिखाई देता है। स्वप्नमें स्त्रीको जवरदस्ती उसके पतिसे अलग करनेवाले अफसरका व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं हो पाया है। किन्तु अनुवन्धोंमें वही मुख्य विपय है। इसके द्वारा यह स्वप्न इच्छापूर्तिके और करीव चला जाता है। अवतक तो हम मूलतः इच्छापूर्ति द्वारा प्रेरित स्वप्नोंमें सञ्चारित भयको स्वप्नका निग्रह द्वारा प्रेरित एक अनिवार्य अङ्ग ही मान सकते थे, किन्तु इस अंशपर विचार करनेसे यह भय स्वयं इच्छापूर्तिका अंग वन जाता है। क्योंकि पुरुपकी धृष्टता और स्त्रीका आत्मसमर्पण रति और प्रीतिके आवश्यक

और अविच्छेद्य अंग हैं। यही कारण है कि किशोरावस्थामें लड़कियां प्रायः निष्क्रिय समर्पणके (जैसे—दौड़कर पीछा किये जाने, पकड़ लिये जाने या विजित हो जाने, आक्रान्त होने और शस्त्राघात किये जानेके) और लड़के सक्रिय धृष्टताके और आक्रमण करनेके स्वप्न देखते हैं। क्योंकि इस उम्रमें लड़के लड़कियोंका स्वाभाविक भेद विशिष्ट और प्रस्फुट हो जाता है! इसीलिए भारतीय विचारोंमें भी आक्रमणको प्रेमसे संबद्ध किया गया है। कामशास्त्रमें रतिको मदन युद्ध कहते ही हैं। हम 'रण' को प्रेम और मैथुनके प्रतीकके रूपमें देख चुके हैं।

ऐसे स्वप्न विशेष रूपसे लड़कियोंमें किशोरावस्थामें होते हैं, क्योंकि इसी उम्रमें वे काम प्रवृत्तिके वेगसे परिचित होती हैं, किन्तु अभी उनकी नयी प्रवृत्तियोंका उनके मानस जीवनमें समन्वय और नये जीवनके साथ उनका सामञ्जस्य स्थापित नहीं हुआ होता। साथ ही अविवाहिता स्त्रियोंको रतिकी शारीरिक और नैतिक भीषणतासे बहुत डराया भी जाता है। रतिको मृत्यु तुल्य ही बताना उनकी शिक्षाका एक आवश्यक अंग रहा है। इस दृष्टिसे स्वप्नकी लाचारी जो इच्छापूर्त्तिका आवरण मात्र प्रतीत होती थी, प्रेमीके प्रति स्त्रीकी समर्पणेच्छाका चित्र बन जाती है जो कि प्रेमकी इच्छाका स्वाभाविक अंग है। यहाँ तो भय स्वयं अपने लिये वाञ्छित होता है, क्योंकि उससे कामेच्छाकी आंशिक तृप्ति होती है। निग्रह द्वारा प्रेरित भय भी वाञ्छित होता है, किन्तु केवल आवरणके लिए। वह मूलतः स्वयं तर्पक नहीं है। यदि किसी मौलिक वासनाकी तृप्ति न हो तो उस भयका कोई उपयोग नहीं रहता। किन्तु यहां तो भय स्वयं बिना किसी अन्य वासनाकी अपेक्षाके स्वतन्त्र रूपसे तर्पक है। वह सीधे और अकेले ही स्वप्नका मूल प्रेरक हेतु हो सकता है। ऐसे स्वप्नोंमें

निग्रहशक्ति उसकी मात्राको बढ़ाकर और आलम्बनका स्वरूप छिपाकर उसकी व्याख्याको बदलकर उसके स्वरूप पर पर्दा मात्र डाल देती है जैसे प्रस्तुत स्वप्नमें यह मालूम होता है कि भयका कारण 'जबरदस्तीसे अलग किया जाना है' जो कि अवाञ्छित है, कि 'आफिसरकी जबरदस्ती' जो कि वाञ्छित है। यहाँ देहरी-दीपक न्यायसे स्वप्नका 'जबरदस्ती' का अंश एक साथ ही दो विचारधाराओंका अंग बनकर इच्छा और निग्रह दोनोंकी सहायता करता है। इस प्रकार सही कारणके स्थानपर ग़लत कारण से प्रसूत बताये जाने मात्रसे जिस भयका स्वरूप उल्टा प्रतीत होने लगता है इसे 'प्रतीप आवेग' का उदाहरण कहते हैं क्योंकि इसमें वस्तुतः प्रवृत्यात्मक कामेच्छा ही प्रत्यावर्तित रूपमें व्यक्त होकर निवृत्यात्मक भय बन गयी है। इस प्रकारके भय वास्तविक जीवनमें भी स्वयं अपने लिए खोजे जाते हैं। इनकी विकृत अतिमात्रा भी सर्वथा आवरणके लिए ही नहीं होती। निगृहीतकामैषणा अपना सारा आवेग इसीको प्रदान कर देती है। क्योंकि निग्रहके कारण वह प्रकृत अवस्था की तरह अपनी भयकी मंजिलसे आगे बढ़कर अपनेको पूर्ण रूपमें चरितार्थ नहीं कर सकती। साधारण जीवनमें इस प्रकारका अंगोंमें अंगीका, और साधनमें साध्यका विनियोग वह देखा जाता है। जैसे प्रेमपात्रको न पाकर प्रेमीका सारा प्रेम उससे संबद्ध वस्तुओंपर ही उमड़ पड़ता है और संयोगकी सम्भावना न होने पर दरसपरसमें ही अत्यधिक आनन्द मिलता है। इसी प्रकार से भयमें कामैषणाके विनियोगको भी प्रत्यावर्तन कह सकते हैं, क्योंकि यद्यपि यह भय कामैषणाका साधन और अंग ही है, किन्तु भयसामान्यका स्वरूप कामसे ठीक उल्टा है। उपर्युक्त भय-सामान्यके कामभयके रूपमें बौद्धिक परिवर्त्तनके अतिरिक्त यहां

काम (की शक्ति) का भय (की अतिमात्रा) में सचमुच परिवर्त्तित हो जाना ही कामके आवेगका प्रत्यावर्त्तन है। भयग्रस्त मानस-रोगियोंमें अक्सर इस प्रकारके प्रत्यावर्तित भयका विकार होता है। चोरोंके अतिरञ्जित डरमें भी यही विकार होता है। बहुत-सी स्त्रियां और कुछ पुरुष भी चोरोंसे अति भयभीत रहते हैं। इस प्रकारका भय आम तौरसे ऐसी स्त्रियोंमें पाया जाता है जिनकी काम तृप्तिका मार्ग अवरुद्ध है। इसके पीछे स्थूल शारीरिक कामवासनाके सिवाय और कुछ नहीं होता।

विलायतमें अधिक उम्रकी अविवाहित स्त्रियोंमें यह बात खास तौरसे देखी जाती हैं—"एक ऐसी ही स्त्री 'न्यूयार्क' के एक बहुत ही शानदार मकानमें रहती थी। यद्यपि उसका कमरा उसके पिता और भाईके कमरोंके ठीक बीचमें था, फिर भी वह भयभीत रहती थी और सोनेके लिये जानेपर वह बड़ी सावधानीसे बिस्तरके नीचे देख लिया करती ही थी कि कोई अपरिचित व्यक्ति चोरीसे घुस तो नहीं आया है। यह स्त्री स्वयं समझती थी कि उसका भय कितना हास्यास्पद था। वस्तुतः जब वह चिकित्साके लिए आयी तो उसने कहा 'डाक्टर साहब, आपको मुझे यह न समझाना पड़ेगा कि मेरे कमरेमें चोरका घुसना असम्भव है,क्योंकि मैं स्वयं इस बातको बहुत अच्छी तरह समझती हूँ लेकिन फिर भी मैं भयभीत रहती हूँ।' आप समझ सकते हैं कि उस उम्रकी स्त्री जिसकी शिक्षा-दीक्षा बड़ी सतर्कतासे हुई हो किसी वासनात्मक विचार या कल्पनाके मनमें आते ही किस प्रकार उसका दमन करदेगी। किन्तु संसारव्यापी काम निरन्तर चेतनाकी सतहपर आनेके लिए प्रयत्नशील है, उसका मन पूर्णरूपसे इसके विरुद्ध विद्रोह कर रहा है। ऐसी स्थितिमें मन द्रविड़ प्राणायाम करता है और अनुचित रूपसे शय्या-

गृहमें किसी पुरुषके प्रवेशकी छिपी हुई इच्छा अनिच्छित चोरके भयके रूपमें व्यक्त होती है।" (ब्रिल)

उपर्युक्त स्वप्न द्वन्द्वात्मक तो है ही, साथ ही साथ उसमें कामावेगका भयके रूपमें प्रत्यावर्त्तन भी है। प्रत्यावर्तित भयानक स्वप्न द्वन्द्वात्मक तो होते ही हैं उनमें भय, काम और निग्रह दोनोंका प्रतिनिधित्व करता है। अर्थात् उनमें भयके रूपमें प्रत्यावर्तित कामकी तृप्ति भी होती है और भय ही आलम्बनके परिवर्तनसे बौद्धिक प्रत्यावर्त्तन द्वारा आवरणका भी काम करता है। लेकिन कुछ द्वन्द्वात्मक स्वप्न ऐसे भी होते हैं जिनमें आवेगका प्रत्यावर्त्तन नहीं होता । न इनमें भय आवरणका काम करता है। इनमें साधारण भयानक स्वप्नोंकी तरह सचमुच किसी बातका भय (निवृत्त्यात्मक इच्छा) होता है, किन्तु साधारण भयानक स्वप्नोंकी भाँति यह सीधासादा आत्मरक्षात्मक शारीरिक भय नहीं होता, बल्कि किसी अप्रिय वस्तुका दमित मानसिक भय होता है। जहाँ प्रत्यावर्तित भय काम-प्रवृत्त्यात्मक होनेके कारण अपनी पूर्ति चाहता है, वहाँ यह भय अपनी निवृत्ति चाहता है। साथ साथ उसमें निग्रहका भय भी मिला रहता है। ऐसे भय और प्रत्यावर्तित भयके स्वरूपमें जो भेद होता है वह अनुभवगम्य होता है। इन दोनों प्रकारके भयातक स्वप्न देखनेवाले उनमें होनेवाले भयको एक विचित्र प्रकारका बताते हैं। स्पष्ट है कि प्रत्यावर्तित भयमें कुछ तो कामभोगकी मात्रा होती है, क्योंकि भय कामका अंग होने के कारण कामका ही प्रत्यावर्तित रूप हो सकता है, और कुछ तज्जनित पश्चात्ताप जिसे सामाजिक भय भी कह सकते हैं। किंतु शुद्ध द्वंद्वात्मक स्वप्नोंमें कामका भाग नहीं रहता, केवल दमित भय और चेतनामें उसके आक्रमणका भयमात्र होता है, जो भी

सामाजिक भय ही है, किन्तु इसमें पश्चातापका कोई सवाल नहीं होता, क्योंकि ऐसे स्वप्नोंमें दमित इच्छाका भोग (दमित भयकी निवृत्ति) नहीं हो पाता, केवल निग्रहसे उसका संघर्ष दिखाई देता है। अन्तमें इच्छा (भय) की प्रबलता जगानेवाली हो जाती है। इस प्रकारके स्वप्न वास्तवमें प्रत्यावर्तित भयानक स्वप्न और साधारण भयानक स्वप्न के बीचमें पड़ते हैं। साधारण भयानक स्वप्नोंमें—जो कि बच्चोंमें अधिक होते हैं—कोई दमित इच्छा व्यक्त नहीं होती। अतएव ये द्वन्द्वात्मक नहीं होते । इनमें शुद्ध जीवन-रक्षा सम्बन्धी भय ही व्यक्त होता है और उसके आवेगकी तीव्रता ही जगानेवाली होती है। अतएव इनमें कोई रूपपरिवर्तन और आवरण भी नहीं होता। शुद्ध द्वन्द्वात्मक भयानक स्वप्नमें जो भय होता है वह दमित मानसिक भय और निग्रह रूपी सामाजिक भयका मिश्रण होता है जो अपने दोनों अङ्गोंके असन्तुष्ट रह जानेके कारण जगानेवाला होता है। और प्रत्यावर्तित भयानक स्वप्नका भय कामभोग और तज्जनित पाश्चात्ताप भी लिये रहता है जिससे इसका रूप सम्मोहनका-सा हो जाता है, जिस मनःस्थितिमें भय भी होता है और आकर्षण भी और आदमी मंत्रमुग्ध-सा परवश हो जाता है। प्रत्यावर्तित भयानक स्वप्नका भय इसी प्रकार के भयानक आकर्षणका आवेग पैदा करता है, जिसमें विवशता, दुःख और आकर्षणकी मात्रा ही अधिक होती है और स्वप्न देखनेवाला जागनेपर भयके साथ-साथ बड़े दुःखका अनुभव करता है। भय तो आगे आनेवाली आपत्तिसे होता है और पश्चात्ताप तथा दुःख आयी हुई आपत्तिका होता है । शुद्ध द्वन्द्वात्मक और प्रत्यावर्तित भयानक स्वप्नोंके भयमें यह भेद भी दमित मानसिक भय और प्रत्यावर्तित कामकी मात्राके अतिरिक्त-

होता है, यद्यपि दोनों निग्रह-जनित सामाजिक भयके ही रूप हैं जो दोनों प्रकारके स्वप्नोंका एक अंश होता है। आवेगकी इन्हीं विशेषताओंके कारण दोनों प्रकार के द्वन्द्वात्मक स्वप्न देखनेवाले उसमें अनुभूत भयकी विचित्र प्रकारकी प्रतीति बताते हैं। स्पष्ट है कि द्वन्द्वके कारण इन दोनों प्रकारके स्वप्नोंमें कुछ आवरण जरूर रहता है यद्यपि दमित आवेगकी प्रबलताके कारण यह आवरण (निग्रहके सन्तोषके लिए) काफी नहीं होता जिससे जाग जाना पड़ता है। इस प्रकार आस्वाद-भेदसे ये दोनों प्रकारके स्वप्न–शुद्ध द्वन्द्वात्मक और प्रत्यावर्तित—पहचाने जा सकते हैं और इन दोनोंका साधारण भयानक स्वप्नसे भी विवेक किया जा सकता है। साधारण भयानक स्वप्नसे ये दोनों प्रकारके स्वप्न तो आवरणके अस्तित्वसे भी भिन्न हो जाते हैं।

स्वभावतः पुरुषोंको प्रत्यावर्तित भयानक स्वप्न नहीं आते क्योंकि पुरुष-स्वभावमें भय कामका अंग नहीं होता। शुद्ध द्वंद्वात्मक भयानक स्वप्न ही उन्हें आते हैं। उनके कामज स्वप्न—जिनमें कामावेग उसी प्रकार तीव्र होता है और उसी प्रकार शारीरिक विकार उत्पन्न करता है जिस प्रकार आवरणकी कमी तथा अपने सुखात्मक आवेगके अनुकूल स्त्रियोंके प्रत्यावर्तित स्वप्नोंमें भयका आवेग जो अपने अनुकूल शारीरिक अनुभाव, स्वेद, कम्प आदि उत्पन्न करता है और इस प्रकार दोनों में बहुत समानता है—सीधे काम तृप्तिकी चेष्टामें ही समाप्त होते हैं। यहाँ भी दमित आवेग निग्रहको पराजित करके स्वप्न-द्रष्टाको जगा देता है, किंतु इसमें भय नहीं होता, क्योंकि न तो इसमें प्रत्यावर्तित स्वप्नकी तरह दमित कामरूपी प्रत्यावर्तित भयका आधार विद्यमान होता है और न द्वंद्वात्मक स्वप्नकी तरह किसी अनिष्टका दमित भय। फिर भी इसमें निग्रहजनित

पश्चात्ताप तो होता ही है जो प्रत्यावर्तित स्वप्नोंके आवेगका एक अंग होता है। इसी कारण यह स्वप्न भी यत्किञ्चित असन्तोष और परेशानी लिये हुए प्रधानतः सुखात्मक आवेगमें समाप्त होता है। इस दृष्टिसे इसे उपर्युक्त तीन स्वप्नों—साधारण-भयानक, द्वन्द्वात्मक और प्रत्यावर्तित—के बाद चौथा नम्बर दिया जा सकता है। या यों कह सकते हैं कि प्रत्यावर्तित भयानक स्वप्न इसके—जिसमें सीधे तरीके पर काम-तृप्ति होती है—और साधारण तथा द्वन्द्वात्मक भयानक स्वप्न के—जिसमें सीधे तरीके पर यानी अपने निवृत्त्यात्मक रूपमें भयकी पूर्त्ति होती है—बीचमें पड़ता है जिसमें भयके रूपमें कामकी तृप्ति होती है तथा काम और भय दोनोंकी एक साथ पूर्ति होती है। वास्तवमें यह उसी प्रकार पुरुषोंका स्वाभाविक कामज स्वप्न है जिस प्रकार प्रत्यावर्तित स्वप्न स्त्रियोंका स्वाभाविक कामज स्वप्न है। इस दृष्टिसे ये दोनों एक ही कक्षामें आ जाते हैं। कामका अंश छोड़कर द्वन्द्वात्मक भयानक स्वप्नसे भी ये आवरणकी कमी और दमित आवेगकी तीव्रताके कारण शारीरिक परिणाम उत्पन्न करनेमें समान होते हैं। दमन और निग्रहको छोड़कर यह बात साधारण भयानक स्वप्न और साधारण असफल इच्छापूरक स्वप्नमें भी समान होती है, केवल निग्रहके प्रभाव और भयके स्वरूपके कारण आवरण इनमें बहुत कम होता है। काम और भय दोनोंके एक रूप हो जाने और दोनोंकी पूर्ति एक साथ ही होनेके कारण ही प्रत्यावर्तित भयानक स्वप्नोंमें काम और भयका अर्थात् इच्छा और निग्रहका द्वन्द्व स्पष्ट नहीं दिखाई देता और यही बात स्वयं आवरणका काम करती है, अन्य आवरण नहीं-सा होता है, इच्छा और निग्रह स्वप्नमें अलग-अलग प्रतिनिधियोंके द्वारा झगड़ते दिखाई नहीं देते। किन्तु द्वन्द्वात्मक

स्वप्नमें इच्छा (भयसे निवृत्ति की) और निग्रहका स्वरूप अलग-अलग होनेसे इनका संघर्ष स्पष्ट दिखाई देता है। इस बात को देखनेके लिए द्वन्द्वात्मक भयानक स्वप्नका एक उदाहरण देना पड़ेगा।

यह डाक्टर रिवर्सके एक मरीजका स्वप्न है जो स्वयं एक डाक्टर और आर० ए० एम० सी० में कैप्टन था और फ्रांसमें काम कर चुका था। इस कार्यसे और एक फ्रांसीसी बन्दीकी मृत्युसे जो जर्मन फौजसे भागते हुए बुरी तरहसे घायल हुआ था सम्बन्ध रखने वाले कुछ अनुभवोंने उसे डाक्टरीके कामसे ऐसा भयभीत कर दिया था कि वह अपने कामपर लौटनेसे बहुत ही घबराता था। उसके सम्बन्धी और खासकर उसकी ससुरालके लोगों ने जो कनाडासे आये थे—उसकी घबराहटका वास्तविक हेतु न जानकर उसे डाक्टरीके कामपर लौटानेके लिए अपना पूरा प्रभाव डाल रहे थे। स्वप्नसे कुछ ही दिन पहले वह सारी स्थिति डॉ० रिवर्ससे बता चुका था और डॉ०रिवर्सने उसे 'सार्वजनिक स्वास्थ्य'का काम करनेकी सलाह दी थी जिसमें शायद ही कभी ऐसे अवसर आयें जो उसे लड़ाईकी नौकरीके भयानक अनुभवोंकी याद दिलायें। इस सलाहके कुछ ही दिन बाद उसने इस स्वप्नका यह विवरण भेजा था :—

"मैं 'गोल्डर्स ग्रीन एम्पायर' के बड़े कमरेके अग्रभागमें बैठा हुआ था। मैं 'वर्तमान संघर्ष' पर व्याख्यान देने वाला था। मैं बहुत घबरा रहा था। क्योंकि इस विषयपर मेरे मनमें द्वन्द्व था। जब मैं स्टेज पर चढ़ा उस समय उसपर आप (डॉ० रिवर्स) मेरे साथ थे और मेरे सब परिचित लोग वहाँ मालूम होते थे। साहस करके मैंने प्रारम्भ किया: 'देवियो और सज्जनो, मैं आपके समक्ष "वर्तमान संघर्ष" पर बोलना चाहता हूँ।' जैसे

ही मैंने बोलना शुरू किया, मैंने देखा कि जिस जगहको मैंने अभी खाली किया है उसपर एक आदमी बैठा हुआ है, हालाँकि मैंने उसे आते हुए नहीं देखा था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं इस आदमीकी तरफ खास तौरसे मुखातिब होनेके लिए विवश हूँ। वह मुझे अपरिचित मालूम होता था फिर भी उसमें कुछ परिचित-सा लगता था। वह समुद्री डाकुओंके नेताकी तरह लगता था, यानी जहाँतक उसके रंग, बाल और आँखोंका संबंध था। मेरा तात्पर्य यह है कि उसकी आँखोंमें भीषण नीली चमक थी और उसके बालमें सुनहली चमक।

"मैंने अपना व्याख्यान जारी रखा: 'हमें अन्तिम मनुष्य तक अपना संघर्ष जारी रखना चाहिये। अपने मनुष्यत्व और स्वतन्त्रताको खोकर विदेशियोंके गुलाम बन जानेकी अपेक्षा हमें मर जाना ही अच्छा।'

"मेरे इन शब्दोंके कहनेके साथ ही मेरी जगह बैठा हुआ मनुष्य अत्यन्त खिन्न दिखाई देने लगा फिर भी उसने मेरी बातको पसन्द किया। हॉलके दूसरे भागोंमें उसके प्रति कुछ असन्तोष दिखाई पड़ा। और तभी मैंने देखा कि निष्क्रमणके दोनों मार्गोंपर दो परिचारक थे, मेरे बाईं ओरका कारिन्दा मेरे श्वसुरकी शकलका एक कनाडा-निवासी था और मेरे दाहिनी ओरका आदमी डाक्टर 'क' थे जो अपना मृत्यूत्तर परीक्षाका लबादा और दस्ताने पहने हुए थे। मैंने यह बताना जारी रखा कि किस प्रकार सब कुछ इस बातपर निर्भर करता है कि हम संग्राममें अपनी पूरी शक्ति लगा दें। मेरी कुर्सीका आदमी प्रसन्न हुआ और उसकी आँखें चमक उठीं।

'शान्त रहो,' कनाडा-निवासीने उस आदमीकी ओर देखकर कहा, 'नहीं तो मैं तुम्हें ठीक करूँगा, मैं तुम्हें इसका मजा चखा

दूँगा', और यह कहकर उसने उस आदमीकी ओर एक डंडा उठाया। जब मैंने देखा कि एक साँप डंडेपर ऊपरकी ओर रेंग रहा था। वह उस आदमीको शंकित करता जान पड़ा। मैं अत्यन्त भयभीत हुआ और तब मैंने देखा कि वह आदमी बदल गया है। जब कनाडा-निवासीकी ओर देखा, उसकी आँखें काली और अत्यन्त तीव्र पीड़ासे युक्त हो गयीं, और वह करीब-करीब एक दूसरा ही आदमी हो गया, क्योंकि उसके बाल काले हो गये थे और उसकी त्वचाका रङ्ग स्वच्छ नहीं रह गया था। उसने मुझे इतना प्रभावित किया कि मेरा आत्मविश्वास कम हो गया। मैंने कहा 'मैं जानता हूँ कि हम लोगोंने भयानक यातनाएं भोगी हैं और भोग रहे हैं। इसपर वह आदमी, जिसकी आंखों और चेहरेका रङ्ग अभीतक गहरा था, पीड़ाके कारण जोरसे कराह उठा।

"मैं कहता गया 'शान्ति, हमें कैसी शान्ति देगी।' इस समय उसकी आखोंमें इतनी पीड़ा थी कि मुझे यह ख्याल हुआ कि यदि मैं तुरन्त ही इसे मार डालूँ तो उसपर बड़ी दया होगी। डाक्टर 'क' ने शायद मेरे विचारोंको जान लिया, क्योंकि वे मुस्कराये। कानाडा-निवासीने चिल्लाकर कहा—'मैं उससे निबट लूंगा', और अपना सर्पयुक्त दण्ड नीचे रखकर उसने एक स्त्रीकी चोली उठायी और कहाः 'मेरे पास उसके लिए एक सीधा वेस्ट-कोट है।' इस बीचमें आप (डॉ० रिवर्स) प्लेटफार्मसे बोले—शान्ति ! शान्ति ! उस आदमीको छोड़ दो। कैप्टन, आगे बढ़ो। वह आदमी बीमार है, बहुत बीमार है।'

"साहस करके मैं आगे बढ़ा और यह बताने लगा कि तीव्र कष्टको भोगते हुए भी हमें आगे बढ़ना चाहिये, 'आत्मसमर्पण कदापि न होना चाहिये। हमें हार हर्गिज न माननी चाहिये।' फिर वह आदमी दूसरा हो गया। उसका कद बढ़ गया-सा लगा।

उसकी आँखोंमें पुनः नीली अग्नि चमकने लगी, उसके बाल सुनहले हो गए और वह जोरसे हर्षध्वनि करने लगा। इससे बाहर जानेके द्वारपर स्थित वह कनाडा-निवासी क्रुद्ध हो गया और उसने फिर अपना वह डंडा उठाया जिसमें साँप लिपटा हुआ था। उसने ऊँची आवाज में कहा–'मैं उसे इसका मजा चखा दूंगा', और मेरी कुरसीका आदमी सिमट-सा गया। फिर वह भयानक वेदनासे पीड़ित था और मैं इसे देख नहीं सकता था। उसकी आँखोंमें इतनी पीड़ा दिखायी दी कि मुझे यह प्रतीत होने लगा कि मैं उसे अवश्य मार डालूँ। डाक्टर 'क' ने उग्ररूपसे सहमतिसूचक मुस्कराहटके साथ मेरी ओर देखा और ऊँची आवाजमें कहाः 'शान्तिके देवताके लिए यही मार्ग है'—तब आपने (डॉ० रिवर्स) बीचमें कहा कि वह मनुष्य बहुत बीमार है। मैंने कहाः 'मैं उसे दुःखसे मुक्त कर दूंगा', और मैंने मेजपर रखी हुई एक पिस्तौल उठायी। मैंने कहा, 'उसे मालूम न पड़ेगा, खून भी न निकलेगा और उसकी साँस फौरन बन्द हो जायगी।' आपने कहा 'ऐसा न करो, वह आदमी बीमार है, किन्तु वह अच्छा हो जायगा'। मैं अब उस आदमीकी आँखोंकी दृष्टि को सह न सका और गोली चला देनेका संकल्प किया। जैसे ही मैं पिस्तौल उठा रहा था, मैंने अपने बेटे की आवाज सुनी—'ऐसा न करो पिताजी! तुम मुझे भी चोट पहुंचाओगे।'

"मैं जाग गया, बीमार-सा और बहुत उदास। स्वप्न बड़ा भयानक प्रतीत हुआ। अपने जीवन भरमें मैंने ऐसा खराब स्वप्न नहीं देखा था।"

विश्लेषण:—बचपनसे रोगीकी यह इच्छा रही थी की उसके बाल शुभ्र और आँखें नीली होतीं। इस इच्छाके साथ अगर

इस मरीजका स्थान लेनेकी बातको मिलावें तो हमें सन्देह नहीं रह जाता कि मरीजकी कुरसीपर बैठनेवाला आदमी उसीका स्वप्न-प्रतिनिधि था और उसकी स्वप्न-प्रतीतियों की व्याख्या मरीज के अनुभवों के रूपमें होनी चाहिये। उसके स्वसुरकी शकलका कनाडा-निवासी, उसकी ससुरालके लोगोंका प्रतिनिधि था और उसका डंडा, जिसमें साँप पहले चढ़ रहा था और बादको लिपटा हुआ था, डाक्टरी (चिकित्सा) के पेशेका प्रतीक था जिससे उसके ससुरालके लोग उसे वास्तवमें डरा रहे थे। डाक्टर 'क' जो हॉलके एक निर्गम मार्गके रक्षक थे, स्वप्नद्रष्टाके एक मित्र थे जिन्होंने कुछ ही दिन पहले आत्महत्या कर ली थी, जिससे रोगीके अपनी कुरसी के आदमी को मार डालनेके संकल्पसे उनकी सहमति समझमें आजाती है। चूँकि यह आदमी मरीजका ही स्वप्न-प्रतिनिधि था, उसे पिस्तौल से मारनेकी क्रिया यदि सम्पन्न हुई होती, तो स्वप्नकी यह नर-हत्या आत्म-हत्याका प्रतीक होती। इस कार्यके आत्म-हत्याके स्वरूपको स्वप्नने मरीजको एक श्रोता-का रूप देकर आवृत कर दिया था।

स्वप्न में स्वप्न-द्रष्टाके लड़केकी आवाज द्वन्द्वके सामाजिक भावनाके पक्षका प्रतिनिधित्व करती थी जिसके अनुसार आत्महत्या उन लोगोंको कलंकित करती है जिन्हें वह अपने पीछे छोड़ता है।

उस श्रोताको दिखायी गयी 'चोली' के प्रति उसकी मनोवृत्ति निस्सन्देह अपनी पत्नीके साथ स्वप्न-द्रष्टाके सम्बन्धको व्यक्त करती है। किन्तु स्वप्नके वर्णनसे इस सम्बन्धका ठीक स्वरूप सन्दिग्ध रह जाता है। चोली दिखलाये जानेके बाद श्रोताकी आँखें फिर नीली हो गयीं और त्वचा स्वच्छ हो गयी। किन्तु यह सन्दिग्ध

है कि इस परिवर्तनका सीधा सम्बन्ध चोली दिखाये जानेसे था या व्याख्यानके तात्पर्यसे । चोली और सीधे वेस्टकोटकी तुलनासे कम-से-कम अपनी पत्नीके प्रति स्वप्न-द्रष्टाकी मनोवृत्तिका एक पक्ष तो विरोधका मालूम होता है। सम्भव है कि व्याख्या की सन्दिग्धता पत्नीके प्रति उसकी द्वन्द्वात्मक मनोवृत्तिकी ही सूचक हो और उसके प्रेमके साथ उसके प्रति विरोध मिल गया हो जिसका कमसे कम आंशिक कारण यह है कि उसे चिकित्सा-कार्यमें घसीटनेमें वह भी एक कारण है।

स्वप्न-द्रष्टाका व्याख्यान वस्तुतः उसके युद्धसम्बन्धी विरुद्ध भावोंका प्रत्यक्ष सूचक था। एक ओर तो उसका प्रत्यक्ष विचार था कि युद्ध अन्ततक लड़ा जाना चाहिये और दूसरी ओर उसकी गहरी भावना इसके विरुद्ध यह थी कि यह संग्राम जिसमें ऐसे भयानक अनुभव होते हैं जैसे उसे हुए थे,जारी रहे। साथ ही इस बातमें भी सन्देह नहीं हो सकता कि यह अपने पेशेके सम्बन्धमें उसके आन्तरिक द्वन्द्वका मूर्त रूप भी था जिसमें एक ओर तो अपने पेशेके कामको जारी रखनेकी इच्छा थी और दूसरी ओर उन विचारोंसे भय था जो उसके पेशेके कार्यसे डॉक्टर रिवर्स द्वारा बताये हुए संशोधित रूपमें भी (यानी सार्वजनिक स्वास्थ्यके कार्यमें भी) अवश्य ही उत्पन्न होंगे। श्रोताकी आँखोंमें पीड़ाकी अभिव्यक्तिको स्वप्नमें जो महत्व दिया गया है वह उस मरते हुए फ्रांसीसी कैदीसे सम्बन्ध रखनेवाले अनुभवके एक विशेष अंशसे उत्पन्न हुआ था जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। मारनेके लिए रिवाल्वर का चुनाव और खून न निकलनेका, तथा तुरन्त साँस बन्दहो जानेका उल्लेख भी उसी अनुभवसे सम्बन्ध रखता था। शान्तिसे प्राप्त होनेवाली शान्तिका उल्लेख और डाक्टर 'क' द्वारा मृत्युके लिए 'शान्तिके देवता' का शब्द-प्रयोग स्पष्ट रूपसे इस बातके

इस बातका द्योतक है कि युद्धसम्बन्धी व्याख्यान स्वयं स्वप्न-द्रष्टा केद्वन्द्वको और उसके अन्तके लिए मृत्युकी इच्छाको ही मूर्तिमान करता था।

हॉल से निकलनेके दो मार्ग इस द्वन्द्वके शमनके दो वैकल्पिक उपायोंके द्योतक हैं, एक चिकित्सा कार्यपर लौटना जिसका प्रतिनिधित्व दण्ड और सर्पके साथ उसके श्वसुर करते थे; दूसरा आत्महत्या जिसका प्रतिनिधित्व एक ऐसे सज्जन (डॉक्टर 'क') करते थे जिन्होंने कुछ ही दिन पहले आत्म-हत्या की थी।

व्याख्यान आरम्भ करते समय स्वप्न-द्रष्टाकी यह प्रतीति कि उसके सब परिचित लोग वहाँ उपस्थित हैं,इस विचार की द्योतक है कि आत्महत्याका कार्य, जो कि उस समय उसके विचारोंमें प्रमुख स्थान रखता था, ऐसा कार्य है कि वह अपनी शोहरतके कारण उसके तमाम परिचित लोगोंके मनमें उसी प्रकार मुख्य हो उठेगा जिस प्रकार प्लेटफार्म पर स्थान पानेके कारण तमाम उपस्थित लोगोंके लिए वह प्रमुख हो गया था।

इस स्वप्नसे अधिक महत्वपूर्ण परिणाम वाले कम स्वप्न होंगे। इससे तुरन्त स्पष्ट हो गया कि डॉक्टर रिवर्स द्वारा बताये हुए परिवर्तित रूपमें भी चिकित्सा कार्य पर लौटनेका विचार-मात्र मरीजके लिए इतना दुःखद था कि वह आत्महत्याका निश्चित विचार कर रहा था। उसका यह विचार उसके मित्र डॉक्टर 'क' की हाल ही की आत्महत्यासे यदि उत्पन्न नहीं तो पुष्ट तो अवश्य ही हुआ था, जिनका काम स्वप्नमें छद्मवेषी आत्महत्याको प्रोत्साहित करना था। डॉक्टर रिवर्सने रोगीके साथ सारी स्थिति पर विचार किया और यह निश्चय किया

गया कि वह चिकित्साका ख्याल बिल्कुल छोड़कर कोई दूसरा कार्य ग्रहण करे।

स्वप्नकी व्याख्यासे यह ज्ञात होता है कि यह स्वप्न एक ऐसे द्वन्द्वसे, जो कि असह्य हुआ जा रहा था, बचनेके लिए आत्मघात कर लेनेकी इच्छाका परिवर्तित रूप था। एक ओर तो मरीजकी चिकित्सा छोड़ देनेकी तीव्र इच्छा (या उस कार्यसे तीव्र भय) थी, क्योंकि इस कार्यसे, खास कर खूनके दृश्यसे, अनिवार्य रूपसे उद्बुद्ध होनेवाले भयानक अनुभवोंका डर तो उसे था ही, इसके अतिरिक्त उसे अपने मस्तिष्कके बिगड़ जानेका भी डर था जो कि तीव्र भयोन्मादसे पीड़ित प्रायः प्रत्येक व्यक्तिमें होता है। दूसरी ओर न केवल अपनी पत्नीके तथा अपने रिश्तेदारोंको प्रसन्न करनेकी इच्छा थी, वरन् अपने पेशेको—जिसकी तैयारीमें उसने कितने ही वर्ष लगाये थे—छोड़नेमें स्वाभाविक आपत्ति भी थी, साथ ही साथ उसे अपनी पत्नी और परिवारके गुजारेका और कोई स्पष्ट मार्ग भी नहीं दिखायी देता था। शायद सबसे अधिक स्पष्ट रूपसे उसे अपने बच्चेका प्रेम अपनी वृत्तिको जारी रखनेके लिए प्रेरित कर रहा था।

इस प्रकार यह स्वप्न स्पष्टतः दो भिन्न प्रकारकी इच्छाओं (एक चिकित्सका भय और दूसरी प्रेम तथा सामाजिक भावना या इनके खोनेका भय) के उत्कट द्वन्द्वका द्योतक था। रोगी निस्संदेह एक असह्य स्थितिसे बचनेके लिए आत्महत्या करना चाहता था। जाग्रत् जीवनमें वह जानता था कि वह आत्म-हत्याके ख़तरेमें है और कम-से-कम कभी कभी इससे बचना भी चाहता था। स्वप्नमें यह इच्छा आवृत आत्महत्याके घटित होनेके ठीक पहिले ही उसके बच्चेके बीचमें आ जानेसे पूरी हुई है। किन्तु उसके मनकी सचमुच महत्वपूर्ण इच्छा आत्महत्या अर्थात्

'मृत्युकी शान्ति' (जो कि चिकित्साके भयसे निवृत्तिका साधन है) की थी, जिसको स्वप्नके एक भागमें बहुत प्राधान्य प्राप्त है और इस दृष्टिसे यह स्वप्न इच्छापूरक नहीं था। कुल मिलाकर इस स्वप्नको स्वप्नद्रष्टाके मनके एक बहुत ही जटिल अन्तर्द्वन्द्वके शमनकी चेष्टामात्र कहा जा सकता है,जिसके दोनों पक्षोंके मुख्य अङ्गोंका उल्लेख हो चुका है, क्योंकि आत्महत्याकी इच्छा अपने कार्यके भयके साथ,जिसकी निवृत्तिका वह उपाय है, असामाजिक है और समाजविहित कर्त्तव्यसे विमुख करनेके कारण दमित और निगृहीत है। इसीलिए परिवार-प्रेम आदिकी प्रेरणाएँ जो कि समाजसम्मत हैं और जिनमें मुख्य इस बातका ज्ञान है कि आत्महत्या करने वालेके कुटुम्बी भी समाजमें कलंकित होते हैं उसके (दमित इच्छाके) विरुद्ध कार्य करती हैं। और स्वप्नमें इसी निग्रहके शासनको न माननेके कारण, जो कि स्वप्नद्रष्टाके पुत्रकी आवाजमें व्यक्त हुआ है द्वन्द्व-शान्ति की इच्छा व्याहत हो जाती है। किन्तु इसे वास्तवमें निग्रहकी जीत नहीं कह सकते, क्योंकि उस हालत में स्वप्न न केवल आत्महत्याके व्याघातसे किन्तु चिकित्साकार्यके भयकी निवृत्ति तथा उसकी स्वीकृतिसे समाप्त होना चाहिये था, जो कि दमित इच्छाके विरोधका मुख्य प्रयोजन था, और जिस हालतमें आत्मघातकी इच्छा तो खतम ही हो जाती। ऐसी स्थितिमें स्वप्न सचमुच इच्छापूरक हो जानेके कारण जगानेवाला भयानक स्वप्न न होता। वास्तवमें स्वप्नके आत्यन्तिक आवेग और दुःखद होनेका कारण एक ओर तो स्वप्नद्रष्टा के मनकी सबसे प्रबल और मुख्य इच्छाका व्याघात (यानी चिकित्साके भयकी निवृत्ति न होना) है और दूसरी ओर निग्रहका आहत होना अर्थात् दोनोंका पूर्ण रूपसे असफल समन्वय।

अब यहांपर इस समस्या पर भी अन्तिम रूपसे विचार कर लेना चाहिये कि स्वप्नके सुलानेवाला या जगानेवाला होनेमें आवेग और निग्रहका तारतम्य किस प्रकार काम करता है। हम कह आये हैं कि आवेग की प्रबलता और निग्रहकी पराजय ही इच्छा-घातक और जगाने वाली होती है, और निग्रहको आवेग पर विजय इच्छापूरक और सुलाने-वाली है। साथ ही इस बातका उल्लेख भी हो चुका है कि जिन स्वप्नोंमें निग्रहका अभाव होता है उनमें आवरणका भी अभाव होता है और चूंकि आवरणका अभाव जगानेवाला है, अतः इसका यह अर्थ हुआ कि निग्रहका अभाव जगानेवाला होता है। किन्तु यहांपर एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जहांतक जगानेवाले स्वप्नोंमें निग्रहके आहत होनेका सम्बन्ध है, वहां तक निग्रहका अभाव आवेगकी जगानेवाली शक्तिको कम ही करेगा और जितना ही निग्रह होगा, उतना ही वह इच्छाकी पूर्तिमें बाधक होकर जगानेवाला होगा। इस प्रकार यहां पर हमें एक विरोधाभास मिलता है। एक ओर तो हम देखते हैं कि आवेग पर निग्रहका प्रभुत्व इच्छापूरक और सुलानेवाला होता है। दूसरी ओर दूसरी दृष्टिसे–अर्थात् निग्रहपक्षसे–विचार करने पर ठीक इससे उलटी बात दिखाई देती है। यानी निग्रहका प्रभुत्व स्वरूपतः इच्छाघातक और जगानेवाला दिखाई देता है। वास्तविक बात यह है कि जो इच्छा वास्तविक जीवनमें दमित नहीं है वह तो स्वप्नकी कल्पनामें अनावृत रूपसे पूर्ण हो सकती है और इस कारण जबतक वासनाका वेग शारीरिक और अत्यन्त प्रबल न हो, उसके लिए जगाने का कोई कारण नहीं है। किन्तु जिन इच्छाओंका दमन किया गया है, वे अनावृत रूपसे स्वप्नमें आते ही निग्रहके लिए भयानक हो उठती हैं और फिर चाहे वे बहुत प्रबल भी न हों, केवल दमित होनेके कारण वे जगानेवाली हो जाती हैं।

इसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि दमित इच्छाएँ अन्दर-अन्दर शक्ति सञ्चय कर लेती हैं और स्वप्नमें थोड़ा-सा सर उभारनेका मौका पाकर खासकर यही इच्छाएँ व्यक्त होती हैं। किन्तु यह बात वास्तविक जीवनमें इच्छाओंके दमनकी मात्रासे सम्बन्ध रखती है, जिसके कारण इच्छाका स्वरूप ही अनिष्ट और अवाञ्छनीय हो जाता है। आवेगकी प्रबलताका मात्राके साथ इच्छाके प्रकारको जोड़कर ही यह ठीक ठीक निश्चय किया जा सकता है कि वह कहाँ तक जगानेवाली होगी। अगर ये दोनों बातें मिल जाती हैं, यानी अगर इच्छा दमित भी है और प्रबल भी तब तो वह जगानेकी अधिकतम शक्ति रखती है। इन दोनों बातोंका हमें इच्छा-पक्षमें ही विचार करना चाहिये। दूसरी ओर स्वप्नकी काल्पनिक इच्छापूर्तिके कार्यमें तो वहीं तक सफलता मिलेगी जहाँतक इस प्रकारकी दमित और बलवती इच्छा निग्रहका शासन मानकर आवृत रूपमें अपना आवेग कम कर सकेगी। यानी जहांतक निग्रहका बल अधिक होगा वहांतक तो निग्रहकी पराजय जगानेवाली ही होगी। मान लीजिये कोई इच्छा वास्तविक जीवनमें बहुत दमित है इस अर्थमें उसमें जगानेकी बहुत शक्ति है और यह बात दमनके आधिक्यके कारण है। स्वप्नमें इसकी काल्पनिक पूर्तिके लिए बहुत आवरण की आवश्यकता होगी। किन्तु यदि निग्रह काफी मजबूत हुआ तो वह उस इच्छाको काफी आवरणके अन्दर रहनेके लिए विवश कर सकेगा, जिससे निग्रहको उसकी काल्पनिक पूर्तिमें कोई आपत्ति न होगी और उसकी जगानेकी शक्ति जाती रहेगी। दूसरी ओर यदि कोई साधारण इच्छा जिसके दमनकी मात्रा वास्तविक जीवनमें कम है, स्वभावतः स्वप्नमें अपनी काल्पनिक पूर्ति अपेक्षाकृत अनावृत रूपसे कर सकती है। दमनकी कमीके

कारण इसमें जगानेकी शक्ति कम है। इसके लिए अधिक निग्रहकी आवश्कता नहीं है। किन्तु यदि उसे इतना भी निग्रह न मिला तो वह भी जगानेवाली हो सकती है। इस प्रकार वास्तविक जीवनका दमन और स्वप्नका निग्रह—ये दोनों स्वप्नमें विरोधी शक्तियोंके रूपमें आते हैं। पहला इच्छाके स्वरूपमें दाखिल होकर आता है, दूसरा शायद निद्राकी प्रवृतिमें मिलकर। इन दोनोंमें निग्रहका प्रावल्य सुलानेवाली और दमनका प्राबल्य जगानेवाली शक्ति है। और चूंकि दमनका सम्बन्ध वास्तविक जीवनसे है, वह स्वप्नको सिद्धवस्तुके रूपमें मिलता है। अतएव स्वप्नकी क्रियामें निग्रह ही काम करता है, इसलिए इच्छा पर निग्रहके प्रभुत्वको सुलानेवाला ही कहना चाहिए और निग्रह पर इच्छाके प्रभुत्वको जगानेवाला। फिर निग्रहकी जितनी भी मात्रा स्वप्नमें सुलाये रहनेके लिए जरूरी हो यदि उतनी है तो वह सुलायेगा, कम है तो जगायेगा। यानी इस बात-का फैसला स्वप्नके अन्दर प्राप्त दमन और आवेगकी तथा निग्रहकी शक्तिके तारतम्यसे होगा, केवल वास्तविक जीवनके दमनकी मात्रासे नहीं होगा। बाहरके दमन और अन्दरके निग्रहके अविवेकसे ही विरोधाभास पैदा होता है और जो चीज-दमनकी प्रबलता— एक तरफ जगानेवाली जान पड़ती है वही-निग्रहकी प्रबलता—दूसरी तरफ सुलाने वाली जान पड़ती है।

· किन्तु अब यह प्रश्न उठता है कि निग्रहका स्वरूप क्या है, यदि वह सदा निद्राकी ही सहायता करता है, तो फिर उसका निद्राकी प्रवृत्तिसे भेद ही कैसे किया जाय ? दूसरे, क्या वह जाग्रत् जीवनके दमनसे कुछ भिन्न है ? दमनका कार्य भी तो इच्छाको दबाये रहना ही है ! वह भी तो व्यावहारिक जीवनमें इच्छाको दबाये ही रहता है। वही काम स्वप्नमें निग्रह करता है,

उसका स्वरूप भी वही सामाजिक भावनाका है, फिर दमन स्वप्नमें उससे अलग हो कर जगाने वाला कैसे हो जाता है ? क्या स्वप्नमें दमनकी मात्रा कम हो जाती है, जिससे उसे निद्राकी सहायताकी जरूरत पड़ती है, जिससे पुष्ट होकर ही वह अपना काम पूरा कर पाता है ? इसमें सन्देह नहीं कि निद्राकालमें दमनकी उतनी आवश्यकता नहीं रहती जितनी व्यवहार में, क्योंकि शरीरके कर्ममार्गोंके अवरुद्ध होनेके कारण मनकी कल्पनाएँ व्यवहारमें नहीं आ सकतीं। वासनाओंकी एक स्वाभाविक रोक मिल जाती है, और मनके मैदानमें सीमित रहकर वासनायें कुछ बिगाड़ नहीं सकतीं। इसके अतिरिक्त दमनमें भी कुछ शक्ति लगती है, निद्रामें इसका शैथिल्य भी स्वाभाविक है। इसका स्वरूप ही सतर्कता और सचेतताका है। किन्तु जितना ही निद्राका प्रभाव कम और वासनाका अधिक होता है, उतनी ही निग्रहकी मात्रा स्वाभावतः बढ़ती जाती है और उसकी जरूरत भी होती है। वासनाके वेगको दबानेके लिए व्यवहारमें जितना दमन आवश्यक होता है, स्वप्नमें निद्रा और निग्रहकी सम्मिलित शक्ति अगर उतनी हो जाती है तब तो वह अपने काममें सफलता प्राप्त कर सकती है, अन्यथा नहीं।

इस तरह स्वप्नमें प्राप्त दमनकी मात्रा तो स्थिर रहती है किन्तु निग्रहकी मात्रा निद्राके विपरीत अनुपातमें घटती-बढ़ती रहती है। दमनका तात्पर्य तो यह होता है कि अमुक इच्छाका व्यवहारमें इतना सामाजिक दमन है, यानी वह इतनी प्रबल है-अन्यथा उसका दमन ही क्यों होता—या यों कहिये कि स्वप्नमें भी उसे इतने दमनकी आवश्यकता है और निग्रहका यह तात्पर्य होता है कि उस इच्छाको स्वप्नमें आवश्यक मात्रामें दमन मिला या नहीं। यदि मिल जाता है तो स्वप्नमें भी उस

इच्छाका दमन सफल होता है, जिससे इच्छा शासित रूपमें ही व्यक्त होकर पूर्ण हो सकती है। यह पिछला दमन दो शक्तियों-से मिलकर बनता है, निद्रा और सामाजिक दमन। इसीलिए इसे पहलेसे पृथक् करनेके लिए यहाँ निग्रहका नाम दिया गया है और निग्रहको सुलानेवाली शक्ति कहा गया है। ऐसा न समझना चाहिये कि सुलाने वाली शक्ति निद्रा ही है, दमन तो निद्राकी कमीके साथ ही बढ़ता है, इसलिए वह तो जागरणका ही सहायक है। सारांश यह निकला कि दमन स्वरूपतः तो इच्छाको दबाकर सुलानेकी ही चेष्टा करता है। हाँ, वासनाकी प्रबलताके मुकाबिलेमें स्वप्नका कमजोर दमन निद्राकी सहायता न पाकर असफल हो जाता है। दूसरे शब्दोंमें वह जागरणका कार्य है, न कि कारण। जाग्रत् जीवनकी प्रबल और दमित इच्छायें अपनी अज्ञातरूपसे सञ्चित शक्तिके साथ एकाएक पूर्ण विकासकी कोशिश करनेके कारण स्वप्नके निर्बल और अचेत निग्रहका हराकर जगा देती हैं, खासकर यदि निद्रा, जो कि उसकी सहायक है, कम हो गयी। किन्तु निद्राकी कमीसे जागनेपर आवेगकी उतनी प्रबलता न होगी, क्योंकि निग्रह सचेत हो गया रहेगा। साधारणतः इच्छा-का आवेगही निद्राको कम करता है।

(५)

स्वप्नके शारीरिक तथा मानसिक निमित्त

हिल्डेब्राण्टने लिखा है 'मैं सवेरे निश्चत समय पर जागनेके लिये नियमित रूपसे अलार्म घड़ीका उपयोग करता था। सैकड़ों बार ऐसा हुआ कि घड़ीकी आवाज बहुत लम्बा और सुसम्बद्ध प्रतीत होनेवाले स्वप्नमें इस तरह समन्वित हो गयी मानो सारे स्वप्नकी योजना विशेषकर उसीके लिये हुई हो और यह आवाज़ ही क्रमशः विकसित स्वप्नका उपयुक्त अन्तिम विन्दु और आवश्यक परिणाम हो'।

स्वप्न बाह्य आकस्मिक स्पन्दनोंको असाधारण योग्यताके साथ अपने ताने-बानेमें बुनकर क्रमशः विकसित मर्मस्थल उपस्थित कर देते हैं। इसी प्रकार किसी ज्ञानेन्द्रियको उत्तेजित करनेवाले बाह्य विषयजन्य स्पन्दनोंके स्थान पर आन्तरिक अंगोंसे उत्पन्न होनेवाले शारीरिक स्पन्दन भी काम कर सकते हैं, जैसे वीर्यके इकट्ठा हो जानेके कारण जननेन्द्रियोंकी उत्तेजनासे कामुकतापूर्ण स्वप्न आते हैं और मूत्रेन्द्रियके दबावसे तदनुकूल स्वप्न देखे जाते हैं। ऐसे स्वप्नोंका एक वर्ग ही है जिनसे जागने पर कोई उद्बोधक स्वप्नके एक अंशके इतना अनुरूप प्रतीत होता है कि वह स्पष्टतः स्वप्नके जन्मदाता रूपमें पहिचान लिया जाता है। यह विचार इस बातसे और भी दृढ़ हो जाता है कि नियमित रूपसे उत्तेजकोंका प्रयोग करके उनके अनुकूल

स्वप्न सफलतापूर्वक पैदा किये जाते हैं। निद्रावस्थामें जिन स्पन्दनोंका प्रयोग किया जाता है वे स्वप्नमें प्रकट होते हैं। 'मोरी'ने इस प्रकारके प्रयोग अपने ऊपर कराये थे और उनके परिणामस्वरूप उसने जो स्वप्न देखे उनका विवरण दिया है। (उनके इसी प्रकारके कुछ अन्य प्रयोगोंने कोई परिणाम उत्पन्न नहीं किया।)

१—सोते समय किसीने उसकी गर्दनपर धीरेसे चिकोटी काटी और उसने एक फफोला उत्पन्न करनेवाला प्लास्टर लगाये जाने और अपने बचपनके एक चिकित्सकका स्वप्न देखा।

२—एक गरम लोहा उसके चेहरेके पास लाया गया। उसने स्वप्न देखा कि उसके घरमें डाकू घुस आये हैं और घरवालोंके पैर जलते कोयलोंमें डालकर उन्हें अपना रुपया दे देनेके लिए विवश कर रहे हैं।

३—उसके माथेपर एक बूंद पानी गिराया गया और वह फौरन स्वप्न में इटली पहुंच गया जहां वह पसीने से तर होकर 'आरवीटो'की सफेद शराव पी रहा था।

४—जब जलती हुई मोमबत्तीकी रोशनी लाल कागजके अन्दरसे वार-वार उसपर डाली गयी तो उसने गरमीके मौसिम और समुद्री तूफानका स्वप्न देखा जिसका अनुभव उसे अपने जीवनमें एक वार हुआ था।

एक और परीक्षकने सोते वक्त अपने घुटनों को खुला रक्खा और स्वप्न देखा कि वह रातके समय घोड़ागाड़ीमें सफर कर रहा है। उसने इस सम्बन्धमें कहा था कि यात्री लोग अच्छी तरह जानते हैं कि रातको घोड़ागाड़ीमें सफर करनेमें घुटने कैसे ठण्डे हो जाते हैं। दूसरी वार उसने अपने सिरका पिछला भाग खुला रखा और स्वप्न देखा कि वह खुली हवामें एक

धार्मिक कृत्यमें भाग ले रहा है। जिस देशमें वह रहता था वहां ऐसे अवसरोंके सिवा हमेशा सिर ढका रखनेका रिवाज था।

इसी प्रकार और परीक्षकोंने भी कृत्रिम रूपसे स्वप्न उत्पन्न करनेके प्रयोग किये हैं। नार्वेके 'मार्लीवोल्ड' नामक लेखकने स्वप्न-सम्बन्धी प्रयोगोंपर दो बड़ी-बड़ी जिल्दें लिखी हैं जिनमें प्रायः निद्रावस्थामें केवल अंगोंकी स्थिति बदलनेसे शारीरिक स्पन्दनके परिणामस्वरूप होनेवाले स्वप्नोंका ही निरूपण है।

बाह्य स्पन्दनके उपर्युक्त उदाहरणोंमें निद्रित व्यक्ति पर प्रयुक्त स्पन्दन स्वप्नमें उदित हुए हैं। फिर भी इन बाह्य उद्बोधकोंके स्वरूपसे इस बातकी व्याख्या नहीं होती कि ये स्वप्न इसी रूपमें क्यों देखे गये, न उनसे स्वप्नके उन अंशोंकी व्याख्या होती है जो उत्तेजकसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रखते। किन्तु 'हिल्डेब्राण्ट'-के तीन स्वप्नोंमें, जिनमें तीनों अलार्म घड़ीकी आवाजसे उत्पन्न हुए थे, घड़ीका कोई निशान नहीं है। घड़ी की आवाज किसी दूसरी आवाज के रूपमें परिवर्तित हो गयी है जो (आवाज) हर स्वप्नमें अलग-अलग है। एक स्वप्नमें वह गिर्जेके घण्टेकी आवाज, दूसरेमें बर्फ पर चलनेवाली घोड़ागाड़ी 'स्ले'की घण्टियोंकी आवाज और तीसरेमें चीनीके बर्तनोंके नौकरानी-के हाथसे गिरनेकी खनखनाहट हो गई हैं। तीनों स्वप्नोंमें समानता यही है कि प्रत्येककी उत्पत्ति एक आवाजसे होती है जिसे स्वप्नद्रष्टा जागने पर घड़ीकी आवाजके रूपमें सुनता है। तीन स्वप्नोंमें एक ही आवाजको तीन रूपोंमें ग्रहण करनेका कारण अज्ञात रह जाता है। इससे यह परिणाम निकलता है कि बाह्य या आन्तरिक स्पन्दन स्वप्नके उद्बोधक या निमित्त मात्र हैं, उसके वास्तविक स्वरूपका वे रहस्योद्घाटन नहीं करते;

वे स्वप्नके एक अंशकी ही व्याख्या करते हैं, पूरे स्वप्नकी नहीं। स्वप्न उत्तेजक स्पन्दनकी पुनरावृत्ति मात्र नहीं करता, वरन् उसको विकसित करता है। उसपर अपनी कलाका प्रयोग करता है। उसे एक प्रकरणमें बैठाता है अथवा उसको किसी समान और सम्बद्ध रूपमें परिवर्तित करता है।

यही बात मानसिक उद्बोधकोंके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। यहाँ पहले शारीरिक और मानसिक उद्बोधकोंका भेद समझ लेना चाहिए। शारीरिक उद्बोधक हमने उन उद्बोधकोंको कहा है जो निद्राकालमें ही प्रत्यक्ष रूपसे ज्ञानेन्द्रियों पर प्रभाव डालकर तत्काल स्वप्नका उद्बोधन करते हैं। इन उद्बोधकोंके हम दो भेद देख चुके हैं—एक तो आभ्यन्तर या स्वतःप्रसूत, जो स्वप्न-द्रष्टाके शरीरसे ही उत्पन्न होते हैं, जैसे कोई शारीरिक पीड़ा अथवा भूख, प्यास आदि शारीरिक आवश्यकताएँ; दूसरे बाह्य या परतःप्रसूत, जो स्वप्नद्रष्टाके शरीरसे बाहर किसी अन्य वस्तु से प्रकट होते हैं, जैसे किसी घण्टेकी आवाज। मानसिक उद्बोधकोंकी इन दोनों प्रकारके शारीरिक उद्बोधकोंसे यह भिन्नता है कि मानसिक उद्बोधक स्वप्नद्रष्टाकी ज्ञानेन्द्रियोंको निद्राकालमें नहीं, बल्कि निद्रासे पूर्वकालमें प्रभावित करते हैं; निद्राकालमें इस प्रकार पूर्वगृहीत प्रत्यक्ष ज्ञानकी स्मृतिमात्र काम करती है; अर्थात् शारीरिक उद्बोधक प्रत्यक्ष या साक्षात् रूपसे काम करते हैं और मानसिक उद्बोधक परम्परित या अप्रत्यक्ष रूपसे। इस प्रकार हम इन्हें क्रमशः तात्कालिक और पूर्वकालिक उद्बोधक भी कह सकते हैं। मानसिक उद्बोधक वे अनुभव होते हैं जो स्वप्नरात्रिसे पूर्व दिनमें स्वप्नद्रष्टाको होते हैं। प्रायः स्वप्नोंमें ऐसा एक अंश अवश्य होता है जो स्वप्नरात्रिसे पूर्व उसी दिनके या कुछ ही दिन पहलेके किसी अनुभवकी या तो पुनरावृत्ति कर

देता है या उससे समानता रखता है। किन्तु इन स्वप्नोंसे इतना ही सिद्ध होता है कि स्वप्नकी सामग्री निकटपूर्वके दैनिक जीवनकी स्मृतियोंसे भी ली जाती है। किन्तु यह सामग्री न तो स्वप्नके अन्य अंशोंपर कोई प्रकाश डालती है और न अपनी ही व्याख्या करती है। यह प्रश्न रह ही जाता है कि इन निकटपूर्व अनुभवोंकी और इन्हीं अनुभवोंकी स्वप्नमें पुनरावृत्ति क्यों अर्थात् किसी कारण और किस प्रयोजनसे हुई।

उद्बोधक चाहे शारीरिक हों या मानसिक, उनका ग्रहण तो ज्ञानरूपमें होनेसे मानसिक ही होता है और इसी रूपमें वे स्वप्नमें ग्रहण किए जाते हैं, क्योंकि यह तो स्पष्ट ही है कि स्वप्न मानसिक सृष्टि है। उसकी रचना मानसिक उपादानोंसे ही हो सकती है। प्रश्न यह है कि स्वप्नकी सामग्री इन उद्बोधकोंके द्वारा कहाँ तक समझी जा सकती है। स्पष्ट है कि स्वप्नका कोई अंश अपने उद्बोधकका जितना ही ठीक ग्रहण करेगा, अर्थात् उसके जितना ही समान होगा उतना ही वह उस उद्बोधकके द्वारा समझा जा सकेगा। नतीजा यह निकलता है कि मानसिक उद्बोधक इस सम्बन्धमें अधिक महत्त्व रखते हैं, क्योंकि जो अनुभव जाग्रत् कालमें होते हैं, जिस समय हमारी सभी ज्ञानेन्द्रियाँ खुली रहती हैं, उनके स्वरूपका ठीक-ठीक ग्रहण होना स्वाभाविक ही है। किन्तु शारीरिक उद्बोधकोंका अनुभव निद्राकालमें होनेसे उनका ठीक-ठीक ग्रहण होना कठिन होता है और उनसे प्रेरित स्वप्नोंमें मनको उनका स्वरूप निर्धारित करने में अधिक कल्पनाक्षेत्र मिलता है। यही कारण है कि शारीरिक, विशेषकर बाह्य, उद्बोधकोंका स्वप्नकी व्याख्यामें बहुत कम महत्त्व है। मानसिक उद्बोधक उनसे अधिक महत्त्व रखते हैं, क्योंकि ये स्वप्नमें अक्सर ज्योंके त्यों आ जाते हैं और स्वप्नके भाग बन जाते हैं, और

कभी-कभी तो ये स्वप्नकी व्याख्या भी कर देते हैं। बात यह है कि स्वप्नकी व्याख्या उन प्रवृत्त्यात्मक या निवृत्त्यात्मक इच्छाओंसे होती है जो अपनी पूर्तिके प्रयोजनसे अर्धजागरणस्वरूप स्वप्नको जन्म देती हैं। स्वप्नमें उद्बोधकोंकी सार्थकता इन इच्छाओंको उद्बुद्धकर देना मात्र है। इसीलिए शारीरिक उद्बोधकोंमें आभ्यन्तर उद्बोधक खासकर शारीरिक आवश्यकताएँ जैसे भूख, प्यास आदि स्वयं इच्छारूप होनेके कारण स्वप्रेरित स्वप्नोंकी व्याख्या कर देती हैं। प्याससे उत्पन्न स्वप्न प्यास बुझानेके ही स्वप्न होंगे। अब यदि पूर्व दिनका कोई अनुभव स्वयं वाञ्छनीय होनेके कारण अपनी आवृत्तिकी इच्छा उत्पन्न करता है तो स्वप्नमें वही उस इच्छाका स्वाभाविक द्योतक बन जायगा और इस प्रकार उस स्वप्नकी व्याख्या कर देगा, क्योंकि इच्छाएँ तो किसी मूर्त्त प्रत्ययके सहारे ही व्यक्त हो सकती हैं। जैसे कोई बच्चा यदि दिनमें किसी दूसरे बच्चेको मिठाई खाते देखता है और उसे वह मिठाई नहीं मिलती है तो इस अनुभवसे उसके चित्तमें उस मिठाईको खानेकी इच्छा उद्बुद्ध होगी और यह अतृप्त इच्छा उसके स्वप्नमें इस दिनकी घटनाके रूपमें ही व्यक्त होगी। फर्क इतना ही होगा कि जहाँ दिनको उसे मिठाई नहीं मिली थी, वहाँ स्वप्नमें वह भी मिठाई खायगा। इस प्रकार प्रायः बच्चोंके स्वप्नों तथा वयस्क व्यक्तियोंके भी अनेक स्वप्नोंकी व्याख्या, जिनमें निर्दोष इच्छाएँ व्यक्त होती हैं, उन अनुभवोंसे हो जाती है जो दिनको इन अतृप्त इच्छाओंको उद्बुद्ध करके स्वप्नमें उनकी पूर्ति करनेके लिए स्मृति रूपसे पुनरावृत्त होते हैं। इस प्रकारके उद्बोधक जिन स्वप्नोंमें अपने स्वरूपमें प्रकट न होकर अन्य समान या सम्बद्ध रूपोंके द्वारा उपस्थित होते हैं, उन स्वप्नोंकी व्याख्या भी उनके द्वारा होती है, क्योंकि उन्होंने ऐसी स्वप्न-

प्रेरक इच्छाओंको उद्बुद्ध किया जिनकी पूर्तिमें इन अनुभवोंकी आवृत्ति आवश्यक है। ऐसे स्वप्नोंमें प्रेरक-इच्छा निर्दोष न होकर आत्मनिग्रहका विषय होती है। इसीलिए वह अपने मूल विषयों-के साथ चेतनाके सामने नहीं आती किन्तु उसे उद्बुद्ध करने-वाले ये मूल विषय अन्य समान या सम्बद्ध अनुभवोंके रूपमें विद्यमान रहते हैं।

किन्तु दिनका कोई अनुभव समानता या अन्य किसी प्रकारके सम्बन्धके कारण किसी ऐसी इच्छाको भी उद्बुद्ध कर सकता है जिसकी पूर्ति या अपूर्तिसे कोई उसका सम्बन्ध न हो, यह इच्छा पहलेसे अव्यक्त चित्तमें पड़ी हो और उसका विषय भी पहलेका कोई अनुभव हो, इस नये अनुभवने केवल उसे चित्त-में उद्बुद्ध कर दिया हो। ऐसी स्थितिमें यह नया अनुभव स्वप्नका उद्बोधक मात्र हो सकता है, उसका व्याख्याता नहीं, क्योंकि स्वप्नकी प्रेरणा उससे नहीं आती। वह स्वप्नकी सामग्री-का भाग हो सकता है और नहीं भी हो सकता। सम्भव है कि स्वप्नकी प्रेरक मूल इच्छा अपने जन्मदाता अनुभवोंके सहारे ही अपनेको व्यक्त करे। यदि आत्मनिग्रहके दबावसे उसे दूसरे अनुभवोंकी आड़में व्यक्त होना पड़ रहा हो तो उस हालतमें वह इन नवीन अनुभवोंको अपनी अभिव्यक्तिकी सामग्री मात्र बना लेती है।

उद्बोधकोंकी इस विवेचनासे यह भी सिद्ध होता है कि जिस प्रकार शारीरिक उद्बोधकोंके प्रयोग द्वारा कृत्रिम स्वप्न उत्पन्न किये जा सकते हैं उसी प्रकार प्रायोगिक रीतिसे मनमें तीव्र इच्छाओं या विषयोंकी भावना उत्पन्न करके भी इच्छानुरूप कृत्रिम स्वप्न देखे जा सकते हैं। किन्तु यहाँ भी यह याद रखना चाहिये कि बाह्य तथा आभ्यन्तर शारीरिक स्पन्दनोंकी भाँति

मानसिक अनुभव भी स्वरूपतः स्वप्नके उद्बोधक या निमित्त मात्र हैं और स्वप्नकी गति मूलतः शारीरिक या मानसिक उद्बोधकोंके स्वरूपसे स्वतंत्र और विचित्र है। अतएव हम कभी-कभी यह तो नियंत्रित कर सकते हैं कि कोई मनुष्य किस विषयका स्वप्न देखे, किन्तु यह कभी नहीं निर्दिष्ट कर सकते कि वह क्या स्वप्न देखेगा; क्योंकि स्वप्नकी कार्य-प्रणाली और अव्यक्त इच्छाको किसी भी बाहरी साधनके द्वारा प्रभावित नहीं किया जा सकता। यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि जिन विषयोंकी भावना उत्पन्न की जायगी वे किस इच्छाको व्यक्त करेंगे, यानी कौन-सी इच्छा उस विषयको अपनी अभिव्यक्तिका साधन बना सकेगी। जहाँ भूख-प्यास आदि शारीरिक अथवा अन्य मानसिक उद्बोधक स्वयं इच्छा अथवा इच्छाके व्यञ्जक अनुभवोंके रूपमें स्वप्नके प्रेरक बताये गये हैं वहाँ भी यह नहीं कहा जा सकता कि ये अव्यक्त इच्छाएँ तथा अनुभव साहचर्य द्वारा अपने अतिरिक्त और किसी अव्यक्त इच्छाकी अभिव्यक्तिके साधन न बन जायँगे। इस प्रकार स्वप्नमें अकसर अनेक इच्छाएँ व्यक्त होती हैं तथा एक व्यक्त इच्छाकी आड़में कोई दूसरी अव्यक्त इच्छा व्यक्त होती है और व्यक्त इच्छा अथवा तद्व्यञ्जक अनुभवको अपनी अभिव्यक्तिका उपादान बना लेती है। अतएव कृत्रिम रूपसे स्वप्न उत्पन्न करनेका इतना ही तात्पर्य है कि स्वप्नकी सामग्रीका एक अंश स्वप्नको इस प्रकार बाहरसे दिया जा सकता है। यह भी निश्चित नहीं किया जा सकता कि जिस दिन किसी विषयकी भावना की जायगी उसी रातको वह स्वप्नमें आ ही जाय। संभव है उस दिन उससे कहीं अधिक बलवती कोई अव्यक्त इच्छा भी किसी सिलसिलेमें उद्बुद्ध हुई हो। ऐसी स्थितिमें स्वप्नके क्षेत्रपर वह अन्य सब कमजोर इच्छाओंको हटाकर अपना अधिकार कर

लेगी। अगर भावित विषय उसकी अभिव्यक्तिके लिए उपादान बन सकता है तब तो वह भी स्वप्नमें आ जायगा अथवा उसे ऐसे ही अवसरकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जब वह अपने लिए स्वप्नक्षेत्र खाली पाये या किसी अन्य प्रबल अव्यक्त इच्छाके साथ व्यक्त हो सके। ऐसा अवसर उसे उसी दिन मिल जाना जरूरी नहीं है, किन्तु दो-चार दिनमें प्रायः मिल ही जाता है।

इस प्रकार हमने देखा कि किन सिद्धान्तोंके अनुसार और किन सीमाओंके साथ हम इच्छानुरूप स्वप्नोंका प्रवर्तन कर सकते हैं। किन्तु इन्हीं सिद्धान्तोंके अनुसार हम स्वप्नोंपर निवृत्त्यात्मक नियंत्रण प्राप्त करनेमें अधिक समर्थ हो सकते हैं। अर्थात् यदि हम चाहें कि किसी विशेष प्रकारके दुःखद, अवाञ्छित या भयानक स्वप्न हमें न आयें तो हम ऐसे स्वप्नोंसे बचनेमें सफल हो सकते हैं। इसके लिए मनमें ऐसे स्वप्नोंको रोकनेकी भावना करनी चाहिये। अभ्याससे इस भावनाके पुष्ट हो जानेपर इसका इन स्वप्नोंके साथ अनुबन्ध स्थापित हो जायगा और जब ऐसे स्वप्न उत्पन्न होंगे यह भावना भी उत्पन्न होकर या तो उन्हें रोक देगी या उनका अवाञ्छित रूप बदल देगी। धीरे-धीरे यह अनुबन्ध इतना प्रौढ़ हो सकता है कि इस भावनाके दबावके कारण ऐसे स्वप्न उदित ही न हों और चेतनामें प्रवेश करनेसे पहले ही रोक दिये जायें। स्वप्नमें भी निग्रहका प्रभाव तो होता ही है, जिसके कारण दमित इच्छाओंको वेश बदलकर आना पड़ता है, यद्यपि निद्राकालमें निग्रहकी शक्ति उतनी नहीं होती, जितनी जागरणकालमें। अवाञ्छित स्वप्नोंको रोकनेकी भावना करना स्वप्नकालीन निग्रहकी क्षीण शक्तिको जागरणसे शक्ति भेजकर पुष्ट करना मात्र है। जिस प्रकार अन्य अव्यक्त इच्छाएँ निद्राकालमें, जब मन अन्य सभी

विषयोंसे विरत रहता है तब भी, अपने वेगसे मनको अपने प्रति जाग्रत् रखती हैं और इस प्रकार उस अर्ध-जाग्रत् अवस्थाकी सृष्टि करती हैं जिसे स्वप्न कहते हैं, उसी प्रकार निग्रहकी भावना भी कुछ हद तक स्वप्नकालमें सचेत रहती ही है और पुष्ट करनेसे मन उसके प्रति और अधिक सतर्क रह सकता है।

तीव्र अवाञ्छित आवेगसे प्रेरित स्वप्नोंके मुकाबलेमें जब स्वप्नकालीन निग्रह अपनेको असमर्थ पाता है तब स्वप्नद्रष्टाको जाग्रत् करके भय उत्पन्न कर देता है; क्योंकि जागरणकालमें उसकी शक्ति अधिक होती है। इस प्रकार वह जागरणसे सहायता प्राप्त करके अपना काम पूरा करता है। यही काम विशेष प्रकार-के स्वप्नोंके प्रति मनको अधिक सावधान रखकर भी किया जा सकता है। यह सम्पूर्ण जागरणके स्थानमें आंशिक जागरण मात्र है। जैसे यदि हम सोते समय मनमें यह भावना करके सोते हैं कि हमें अमुक समयमें उठ जाना है तो अन्य विषयोंके प्रति सुप्त रहनेपर भी मन उस समयके प्रति जाग्रत् रहता है और हम उसी समय जाग जाते हैं। इसीलिए इन स्वप्नोंको रोकनेकी भावना करनेमें पहले ऐसे वाक्योंकी भावना कारगर सिद्ध हुई है जिनका अर्थ जागरण-परख है; जैसे दिनको अपने मनमें (आरम्भमें जोरसे कहना भी सहायक हो सकता है) यह वाक्य दुहराना कि 'हम तो सिर्फ स्वप्न देख रहे हैं'। (दिनको अभ्यासके बाद सोनेसे पहले इसे दुहरा लेना अधिक प्रभावकर होगा; अभ्यस्त हो जाने पर इतना ही काफी है।) इस वाक्यका प्रयोग करके श्रीमती आर्नल्ड फार्सटरने अपने दुःखद स्वप्नोंसे मुक्त होनेमें सफलता पायी थी। 'यह सब तो हम स्वप्न देख रहे हैं'—यह भावना स्वयं स्वप्नमें ही कभी-कभी ऐसी स्थितिमें उत्पन्न होती है। जब किसी दुःस्वप्नसे द्रष्टाके मनमें कुछ परेशानी होने लगती है और स्वप्न

भयके रूपमें परिणत होने ही वाला होता है उस समय यह आश्वासन कि 'यह तो स्वप्नमात्र है', जो स्वप्नका भाग न होकर जागरणकी आरम्भिक अवस्था द्वारा स्वप्नकी प्रकृतिका आलोचन है, जागरणकी तात्कालिक आंशिक सहायता लेकर निद्राकालीन निग्रहशक्तिको पुष्टकर उस स्वप्नको दवा देता है, और इस प्रकार निद्राकी रक्षा हो जाती है, अन्यथा साधारणतः भयानक स्वप्नमें निग्रहशक्ति प्रेरक वासनाके सम्मुख अपनेको अशक्त पाकर भयसे स्वप्नद्रष्टाको जगा ही देती है। श्रीमती फार्सटरको स्वप्नके अनुभवसे ही इस भावनाका प्रयोग करनेका विचार उत्पन्न हुआ था। किन्तु जब हम यह समझ चुके कि भावना द्वारा स्वप्नोंको रोकनेका तात्पर्य निग्रहकी शक्तिको बढ़ाना मात्र है, तब हम यह भी आसानीसे समझ सकते हैं कि इस प्रकार स्वप्नोंको रोकनेका अर्थ यही है कि हम उन अवाञ्छित स्वप्नोंकी प्रेरक इच्छाओंको, जो निग्रहके बलके अनुसार अपना रूप परिवर्तित कर छद्मवेषमें उससे बच निकलती हैं और बिना उसकी पहचानमें आये चेतनामें प्रविष्ट हो जाती हैं, और भी विकृत रूप बनानेका निमंत्रण देते हैं। अब वे ऐसे रूपमें आ सकती हैं जिसमें उनका वास्तविक रूप जरा भी पहचाना न जाय और निग्रहजनित दुःखका स्वप्नमें जरा भी प्रादुर्भाव न हो और इस प्रकार शुद्ध सुखद रूपमें, निर्विघ्न आनन्दके साथ अपनेको चरितार्थ कर सकती हैं। इस प्रकार हम उनके छिपावको और भी बढ़ाकर उन्हें अपने ज्ञान और पकड़के लिए और भी दुर्गम बना देते हैं तथा उनके सच्चे स्वरूपको ग्रहण कर उन्हें वास्तविक रूपमें प्रभावित करनेका एक साधन खो देते हैं, जो उनके द्वारा प्रेरित दुःखद स्वप्नोंमें हमें निग्रहजनित दुःखके रूपमें प्राप्त था। यह वैसी ही बात हुई जैसी किसी बीमारीके पीड़ायुक्त लक्षणोंसे उसका निदान कर

उसके कारणको दूर करनेकी अपेक्षा हम उन लक्षणोंको ही दबा दें, जिससे उसका पता भी न चले और वह बीमारी अन्दर ही अन्दर बढ़कर और भी घातक हो जाय। यहाँ हम प्रतिपक्ष भावना द्वारा स्वप्नपर नियन्त्रण प्राप्त करनेके प्रयत्नमें केवल स्वप्नकी प्रकट सामग्री-पर ही नियन्त्रण प्राप्त कर सकते हैं, उसकी मूल प्रेरक इच्छापर नहीं। हमने जिस स्वप्नसे मुक्त होना चाहा वह बन्द हो गया, इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि उसके मूलमें जो प्रवृत्ति थी वह जाती रही; बल्कि इसका मतलब यह है कि जिस स्वप्नके रूपमें वह व्यक्त होती थी उसका वह प्रकट रूप अब नहीं दिखाई देता। दुःखद प्रवृत्तियोंपर वास्तविक नियन्त्रण तो हम तभी प्राप्तकर सकते हैं जब कि हम पहले उनको मनोविश्लेषणके द्वारा चेतनामें लाकर उनके वास्तविक स्वरूपको अच्छी तरह जान लें। जबतक वे अव्यक्त हैं तबतक उन्हें किसी तरह प्रभावित नहीं किया जा सकता। जब हमें यह ज्ञान ही नहीं कि अमुक स्वप्नके रूपमें कौन-सी प्रेरणा काम कर रही है तबतक उस स्वप्नको रोक देनेसे हमें यह कैसे निश्चय हो सकता है कि हमने उस प्रवृत्तिको अनुशासित कर दिया ? और इस ज्ञानके लिए स्वप्न एक बड़ा भारी साधन है, और वह जितने ही अविकृत रूपमें हो उतना ही अच्छा।

किन्तु जिस प्रकार शारीरिक रोगके लक्षणोंकी पीड़ा भी घातक सिद्ध हो सकती है और उसे भी दबानेकी आवश्यकता चिकित्साकालमें पड़ सकती है उसी प्रकार अत्यन्त दुःखद स्वप्नों-का आधिक्य भी मानसिक स्वास्थ्यके लिए हानिकर सिद्ध हो सकता है और उस समय उनका दमन उपयोगी हो सकता है।

कुछ लोग, खासकर बच्चे, अकसर स्वप्नोंसे बड़ा दुःख उठाते हैं, और इनसे अपनी रक्षा करनेमें अत्यन्त असहाय होते

हैं। उनकी इस करुण स्थितिमें मानसिक भावना द्वारा दमनकी क्रियासे सहायता लेना आवश्यक हो जाता है। बच्चोंको ये भावनाएँ ऐसी सीधी-सादी छोटी कहानियोंके रूपमें दी जा सकती हैं जिनमें दूसरे बच्चों द्वारा कोई एक सीधा-सा छोटा वाक्य दुहराकर अपने बुरे स्वप्नोंको भगा देने या किसी काल्पनिक तरकीबसे उन स्वप्नोंकी दुःखद स्थितिसे बच जाने तथा अच्छे स्वप्न देखनेका वर्णन हो।

श्रीमती फार्स्टरको बचपनमें एक स्थानविशेष पर डर लगता था और उसी स्थानसे भागनेके भयानक स्वप्न भी वे देखती थीं। इससे बचनेका उपाय उन्हें स्वप्नमें ही यह मालूम हुआ कि वे उड़कर फौरन उस स्थानके भयसे मुक्त हो सकती हैं और उड़नेका आनन्द भी प्राप्त कर सकती हैं। दुहराये जानेवाले वाक्योंमें इसी प्रकारके स्वप्न-स्थित्यनुकूल अर्थकी भावना दी जा सकती है। इसके लिए बच्चोंको प्रोत्साहित कर उनके स्वप्न जान लेने चाहिए। बच्चोंको बुरे स्वप्नोंसे बचानेके लिए माताएँ जो यंत्र-तावीज आदि सोते समय उनके सिरहाने रखती या उन्हें पहनाती हैं उनका उपयोग भी यही है और तभी उनकी सफलता है जब बच्चोंमें उनके द्वारा यह भावना उत्पन्न हो जाय कि वे बुरे स्वप्न न देखेंगे जिससे यह भावना स्वप्नकालमें उनके बुरे स्वप्नोंको दबाकर उन्हें अच्छे स्वप्न दिखाये। खासकर दुःस्वप्नोंका दमन वहाँ आवश्यक हो सकता है जहाँ चित्तविश्लेषणके साधन उपलब्ध न हों। किन्तु यह याद रखना चाहिये कि यह सामयिक उपचार मात्र है। सुविधा मिलते ही रोगका मूलसे शमन करनेका प्रयत्न होना आवश्यक है।

इसीलिए भारतीय ग्रन्थोंमें यह संकेत मिलता है कि दुष्ट स्वप्नोंको प्रभावित किया जा सकता है। जैसे सुश्रुतके इस श्लोकमें—

जपेच्चापि शुभान्मंत्रान्गायत्रीं त्रिपदां तथा।
दृष्ट्वा च प्रथमे यामे सुप्याद्ध्यात्वा पुनः शुभम् ॥

रात्रिके प्रथम प्रहरमें दुःस्वप्न देखने पर शुभ वस्तुका स्मरण कर फिर शयन करनेकी बात इसीलिए कही गयी है कि शुभ भावनासे स्वप्नको प्रभावित किया जा सकता है और चूँकि एक रात्रिके स्वप्नोंमें प्रायः एक ही प्रेरणा होती है और इस अर्थमें उसी रातमें देखा गया दूसरा स्वप्न पहलेका ही विस्तार होता है अतएव शुभ भावनासे प्रभावित होकर वही स्वप्न जो अशुभ रूपमें आया था शुभ रूपमें परिवर्तित हो सकता है। और इस प्रकार तज्जनित दुःखसे बचा जा सकता है। इसी तरह दिनमें शुभ मंत्रोंके जपके द्वारा अशुभ स्वप्नोंसे छूटनेका उपाय बताया गया है—

पठेत्स्तोत्राणि देवानां रात्रौ देवालये वसेत् ।
कृत्वैवं त्रिदिनं मर्त्यो दुःस्वप्नात्परिमुच्यते ॥

—(मार्कण्डेय)

यहाँ भी दुष्ट स्वप्नके नाशकर्त्ता देवताओंके स्तोत्रोंके पाठ तथा रात्रिमें देवमन्दिरमें निवासके द्वारा शुभ भावना उत्पन्न करके दुःस्वप्न नाशका उपाय बताया गया है। किन्तु अशुभ स्वप्नोंका ऐकान्तिक रूपसे तिरस्कार नहीं किया गया है, बल्कि उन्हें चेतावनीस्वरूप मानकर उनका स्वागत किया गया है तथा स्वप्न देखनेकी इच्छा वाले पुरुषके लिए शुभाशुभ दोनों प्रकारके स्वप्न देखनेका विधान है—

एकवस्त्रः कुशास्तीर्णे सुप्तः प्रयतमानसः ।
निशान्ते पश्यति स्वप्नंशुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥

—(पराशर संहिता)

और शयनके समय स्मरणीय मंत्रमें स्वप्नाधिप देवतासे इष्ट और अनिष्ट दोनोंको ही बतानेकी प्रार्थना की गयी है—

भगवन् ! देवदेवेश ! शूलभृद्वृषवाहन !
इष्टानिष्टे मयाचक्ष्व स्वप्ने सुप्तस्य सांत्वतः ॥

—(पराशर संहिता)

(६)

अतीन्द्रिय स्वप्न

अबतक साधारण स्वप्नोंकी व्याख्या व्यक्त और अव्यक्त चित्तके साधारण मनोविज्ञानके अनुसार ही हुई है। किन्तु कुछ ऐसे स्वप्न भी बताये जाते हैं, जिनकी वास्तविकतामें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है, फिर भी वे साधारण मनोविज्ञान द्वारा अब तक निर्णीत नियमोंके आधार पर समझमें नहीं आते। क्योंकि इनके सम्बन्धमें यह दावा किया जाता है कि ये हमें ऐसा ज्ञान देते हैं जिसे प्राप्त करना हमारी साधारण मानसिक शक्तियोंके लिए असम्भव है। हमारा साधारण ज्ञान चाहे वह अनुमान-सिद्ध भी हो, सदा ऐन्द्रिय प्रत्यक्षके आधार पर ही आश्रित होता है। और हमारी इन्द्रियोंकी शक्तिकी भौतिक सीमाएँ हैं जैसे हमारी दृष्टि किसी दीवारको भेदकर उसके पार नहीं देख सकती। यदि हमें ऐसी दृष्टि प्राप्त होती है तो उसे दिव्य-दृष्टि ही कहना होगा। इसी प्रकारका ज्ञान देनेवाले स्वप्नोंको अतीन्द्रिय स्वप्न कहा जायगा। इनकी व्याख्याके लिए कुछ ऐसे अभ्युपगम सिद्धान्त मानने पड़ते हैं जो अभी तक अन्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तोंकी भाँति सर्वतन्त्र रूपसे सिद्ध और वैज्ञानिक नहीं कहे जा सकते। अतः इस लेखमें वर्णित स्वप्नोंकी व्याख्याको पाठक इसी दृष्टिसे देखेंगे और उसे अधिक अध्ययन द्वारा सिद्ध या असिद्ध होनेवाली दिग्दर्शक सामग्री मात्र समझेंगे।

सबसे पहले फ्रायड द्वारा वर्णित एक स्वप्न पर विचार कीजिये। एक समझदार आदमीने, जो अपनेको रहस्यवादसे सर्वथा अस्पृष्ट समझता था, फ्रायडके पास अपना एक स्वप्न लिख भेजा था जो उसे विचित्र प्रतीत हुआ था। उसने स्वप्नकी भूमिका स्वरूप यह लिखा था कि उसकी विवाहिता लड़की, जो उससे कुछ दूरी पर रहती थी, दिसम्बर मासके मध्यमें अपने प्रसवकी आशा करती थी। पिता-पुत्री एक दूसरेको बहुत प्यार करते थे। पिताने १६ और १७ नवम्बरके बीचकी रातको स्वप्न देखा कि उसकी पत्नीने दो जुड़ूआँ बच्चोंको जन्म दिया है। यह उसकी दूसरी पत्नी और लड़कीकी विमाता थी। इस पत्नीसे वह सन्तान नहीं चाहता था, क्योंकि उसके विचारसे वह सन्तानका समझदारीके साथ पालन करनेकी योग्यता नहीं रखती थी और स्वप्नके समयसे बहुत पहलेसे उसने उससे दाम्पत्य संबन्ध भी नहीं रक्खा था। उससे सन्तानोत्पत्तिकी उसे कोई आशंका नहीं थी। अतः यह स्वप्न स्पष्ट रूपसे उसकी इच्छाके प्रतिकूल प्रतीत होता था। किन्तु विचित्र बात यह हुई कि १८ नवम्बरको प्रातःकाल उसे इस आशयका तार मिला कि उसकी लड़कीने जुड़ूआँ बच्चोंको जन्म दिया है। तार एक दिन पहलेका भेजा हुआ था और प्रसव १६ और १७ नवम्बरके बीचकी रातको अर्थात् करीब-करीब स्वप्नके समय ही हुआ था। अब प्रश्न यह है कि यद्यपि स्वप्न और वास्तविक घटनामें प्रसूताके व्यक्तित्वका भेद है फिर भी दोनों में जुड़ुआँ बच्चोंके प्रसवकी समानता और समकालीनता क्या शुद्ध आकस्मिक कही जा सकती है ?

अब जरा स्वप्न-मीमांसाके निर्णीत सिद्धान्तोंके अनुसार इस स्वप्नका विश्लेषण कीजिये। स्वप्नद्रष्टा अपनी दूसरी पत्नी

से असन्तुष्ट है, और पहली पत्नीसे जन्मी हुई कन्याको वहुत प्यार करता है। वह दूसरी पत्नीके स्थान पर इस कन्याके 'समान' गुणवती स्त्रीको अधिक पसन्द करता। अव्यक्त चित्तके स्वभावानुसार साधर्म्यवाचक 'समान' शब्दका स्वप्नके अव्यक्त विचारमें लोप हो जाता है और तात्पर्यका द्योतन मूर्त रूपमें लड़कीके स्थान पर पत्नीको रखकर होता है। इस प्रकार यह स्वप्न जो व्यक्त रूपमें वास्तविक इच्छासे प्रतिकूल प्रतीत होता था वह वस्तुतः उस अव्यक्त इच्छाका पूरक हो जाता है। और वास्तविक घटना तथा स्वप्नमें प्रसूताके व्यक्तित्वका जो भेद दिखाई देता था वह भी जाता रहता है। क्योंकि स्वप्न-सिद्धान्तानुसार अव्यक्त इच्छाके प्रभावसे लड़की ही पत्नीका रूप ले लेती है। किन्तु यह सब तभी हो सकता है जब लड़कीके जुड़ुआँ बच्चोंको जन्म देनेका विचार मनमें उठे। तभी यह विचार स्वप्नकी कार्यप्रणालीके अनुसार वह विकृत और वास्तविक इच्छा को छिपानेवाला रूप ले सकता है जो कि प्रस्तुत स्वप्नका है। अब प्रश्न यह रहता है कि यह विचार कहाँसे आया, अर्थात् स्वप्नद्रष्टाके चित्तमें इसका उदय किस प्रकार हुआ ?

स्यात् उसका यह विचार रहा है कि उसकी लड़कीका प्रसवकालका अनुमान गलत है और वस्तुतः प्रसव उससे एक महीना पहले ही होगा। यदि यह ठीक है तो आजहीके दिन प्रसव होना चाहिये। यह भी सम्भव है कि जब उसने पिछली बार अपनी लड़कीको देखा था उस समय उसकी आकृतिसे उसे जुड़ुआँ बच्चे होनेका अनुमान हुआ हो। और उसका प्रसवकालका तथा जुड़ुआँ बच्चे होनेका अनुमान साधार होनेके कारण ठीक निकल गया हो। किन्तु इस प्रकार प्रसवकालका

दिन और घण्टे तक ठीक अनुमान करनेका कोई विज्ञानसिद्ध तरीका न होनेके कारण इस प्रकारका अनुमान साधारण बुद्धि-के द्वारा होनेकी कल्पना कष्टसाध्य प्रतीत होती है। यद्यपि इस अनुमानकी साधारताके साथ थोड़ा-सा आकस्मिक संयोग भी मान लिया जाय तो यह व्याख्या असम्भव नहीं है और सत्य सदा सरल भी नहीं होता, फिर भी ऐसी दूराक्षिप्त क्लिष्ट कल्प-नाओंसे यथासम्भव बचनेका सिद्धान्त सर्वसम्मत है। वस्तुतः ऐसे मामलोंमें कारणोंकी पूरी जाँच किये विना कोई निर्णय नहीं किया जा सकता, जैसे इस उदाहरणमें विना इस बातका निश्चय हुए कि वास्तवमें लड़कीकी आकृतिसे स्वप्नद्रष्टाको जुड़ुआँ बच्चे होनेका अनुमान और प्रसवकालके सम्बन्धमें लड़कीकी धारणामें एक महीनेकी गलतीका विचार किसी कारणसे हुआ था, इस स्वप्नकी व्याख्याके सम्बन्धमें कोई निश्चय नहीं हो सकता। और इन बातोंका पता लगना कष्टसाध्य होता है और सदा सम्भव भी नहीं होता। ऐसी स्थितिमें यदि कोई सरलतर व्याख्या सम्भव हो और विशेषकर जब उस व्याख्यासे अनेक ऐसी घटनाओं पर प्रकाश पड़ता हो जो उप-र्युक्त प्रकारकी व्याख्यासे बिलकुल ही न समझी जा सकें और उसे आकस्मिकताकी अपेक्षा न हो तो इस सरल व्याख्याका पक्ष बहुत प्रबल हो जाता है। जैसे प्रस्तुत उदाहरणमें यदि सामान्य विश्वासके अनुसार यह मान लिया जाय कि प्रसव-कालमें लड़कीको पिताका स्मरण हुआ और पिताके मनका उसके मनसे प्रेमके कारण साम्य होनेसे बेतारके तारसे प्राप्त समाचारकी भाँति या मिलाकर रक्खे हुए तारके दो बाजोंमें-से एकको बजानेसे जिस तरह दूसरेसे भी वही ध्वनि निक-लती है उसी प्रकार पुत्रीकी मनःस्थिति पिताके मन पर ज्यों-की त्यों उसी समय अंकित हो गई और इस प्रकार उसे लड़की-

के प्रसवकी सूचना मिल गई जिसे स्वप्नने अपने तरीके पर व्यक्त किया, तो इस स्वप्नकी व्याख्या बहुत सरल हो जाती है। इस प्रकारके मानसिक बेतारके तारके उदाहरण जिससे किसी दूरस्थित व्यक्तिकी चेतनामें इन्द्रियोंसे व्यवहित किसी घटना-का बिना किसी साधारण माध्यमके उसके घटित होनेके प्रायः साथ ही साथ उदय होता है, स्वप्नहीमें नहीं मिलते, बल्कि जाग्रत् जीवनमें भी इसके अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। स्वप्न-से इसका इतना ही विशेष सम्बन्ध है कि निद्राकी अवस्था इस प्रकारकी मानसिक सूचनाओंके ग्रहणके लिए बहुत ही उपयुक्त प्रतीत होती है। ये सूचनाएँ ऐसे ही व्यक्तियोंसे सम्बद्ध घटनाओं-की होती हैं जिनके साथ सूचना पानेवाले व्यक्तिका तीव्र हार्दिक-सम्बन्ध होता है। जाग्रत् जीवनमें इस प्रकारकी मानसिक प्रेपणीयता या दिव्यदृष्टिके एक-दो उदाहरण देख लेनेसे विषय अधिक स्पष्ट हो जायगा।

फ्रायडसे ही एक उदाहरण लीजिये। एक नवयुवकका अपनी एक बहनसे बड़ा प्रेम था और वह उससे अलग नहीं होना चाहता था। बहनका विवाह हो जानेके बाद वह उसके पार्थक्यके आघातको सह न सका और थोड़े ही दिन बाद मानसिक रोगसे ग्रस्त हो गया। वह जिस शहरमें पढ़ता था वहाँ एक स्त्री रहती थी जो भविष्य-कथनके लिए बहुत प्रसिद्ध थी। वह अपने ग्राहकसे केवल उसके जन्मसे सम्बन्ध रखने-वाली कुछ बातें पूछती थी। इसके बाद वह अपनी फलित ज्योतिषकी पुस्तकें देखकर गणना करती थी और उसके सम्बन्ध-में एक भविष्यवाणी करती थी। उक्त नवयुवकने उससे अपने बहनोईके विषयमें पूछा था और उसने यह भविष्यवाणी की थी कि 'यह व्यक्ति इस वर्ष जुलाई या अगस्तके महीनेमें

केकड़े या आयस्टर खाकर उनके जहरसे मर जायगा।' युवक को यह वात वड़ी ही आश्चर्यजनक लगती थी, यद्यपि जुलाई और अगस्तके महीने कबके वीत चुके थे और उसका वहनोई सहीसलामत था, अर्थात् भविष्यवाणी विलकुल गलत सिद्ध हो चुकी थी। युवकके कथनानुसार इसमें विचित्र वात यह थी कि उसका वहनोई सचमुच केकड़े और आयस्टर खानेका वहुत शौकीन था और भविष्यवाणीके पहलेकी गर्मीमें वह सचमुच आयस्टर खाकर विषसे मृतप्राय हो गया था।

इस उदाहरणमें उस प्रकारके अनुमानके लिये तो कोई आधार है ही नहीं जैसा कि स्वप्नके उदाहरणमें सम्भव था। अब बजाय यह विश्वास कर लेनेके कि आयस्टरके विषका आक्रमण ज्योतिषकी गणनासे निकला, यदि यह मान लिया जाय कि यद्यपि सुसंस्कृत युवकने अपने वहनोईके प्रति बोधपूर्वक सौहार्द ही रक्खा था किन्तु उसके अव्यक्त चित्तमें वहनके प्रेमसे वञ्चित हो जानेका साधन होनेके कारण वहनोईके प्रति द्वेषकी भावना संचित थी और महिला ज्योतिषीने इसी भावनासे प्रसूत युवकके इस विचारको ही व्यक्त किया था कि 'ऐसे व्यसन कभी नहीं छूटते और एक दिन यही व्यसन मेरे वहनोईका अन्त कर देगा,' तो इस घटनाकी अधिक मनोविज्ञानसम्मत व्याख्या हो जाती है। इस व्याख्यासे भविष्यवाणीका गलत होना भी समझमें आ जाता है और युवककी वहनकी शादीके बाद उत्पन्न होनेवाली मानसिक बीमारीका निदान भी वहनोईके प्रति उसके दमितद्वेषके द्वारा हो जाता है।

इसी प्रकार पेरिसके एक सामुद्रिकीने एक महिलाकी हस्तरेखायें देखकर जिसकी उम्र उस समय २७ वर्षकी थी और जिसे तब तक कोई सन्तान न हुई थी, विना यह वताये हुए कि

उसकी शादी हुई थी, यह भविष्यवाणी की थी कि वह शादी करेगी और ३२ वर्षकी उम्रमें उसे दो बच्चे होंगे। जिस समय महिलाने यह कथा फ्रायड को सुनाई उस समय वह ४३ वर्ष-की हो चुकी थी, बहुत बीमार थी और अब उसे सन्तानकी कोई आशा नहीं रही थी। इस प्रकार यहाँ भी भविष्यवाणी बिलकुल मिथ्या सिद्ध हुई थी, फिर भी वह उसका उल्लेख करने-में जरा भी कटुता व्यक्त नहीं करती थी बल्कि स्पष्ट रूपसे सन्तोष प्रकट करती थी मानो वह अपने पूर्व जीवनके किसी सुखमय अनुभवका सुखके साथ स्मरण कर रही हो, यद्यपि उसे इस सन्तोषके कारणका जरा भी आभास नहीं था, और न किसी को हो सकता था, यदि चित्तविश्लेषणके द्वारा इस बातका पता न चलता कि भविष्यवाणीमें उल्लिखित दो संख्याएँ—३२ वर्ष और २ बच्चे—रोगिणीकी माताके जीवन-में एक विशेष स्थान रखती थीं। उसकी माताने अधिक उम्र-में विवाह किया था जब कि वह ३० वर्षसे ऊपर थी, और उसके पहले दो बच्चे ३२ वर्षकी उम्रमें एक ही सन्में पैदा हुए थे जिनमें बड़ी स्वयं रोगिणी थी। उसके परिवारवाले अक-सर कहा करते थे कि इस प्रकार उसने अधिक उम्रमें शादी करनेकी क्षतिपूर्ति बड़ी सफलतापूर्वक कर दी। इस प्रकार सामुद्रिकीके कथनका आशय यह हो जाता है कि 'सब्र करो, निराश न हो, अभी तुम्हारी उम्र कोई अधिक नहीं है। तुम्हारा जीवन तुम्हारी माताका ही अनुसरण करेगा, जिसे भी अधिक उम्रमें सन्तान हुई थी, और तुम्हें भी ३२ वर्षकी उम्रमें दो बच्चे होंगे'। अर्थात् सामुद्रिकीने रोगिणीकी इस अव्यक्त इच्छाको ही व्यक्त किया था कि उसका जीवन उसकी माताके समान हो। और इस तीव्र इच्छाकी पूर्तिकी आशा दिलानेवाली

भविष्यवाणी और भविष्यवक्ताके प्रति उसकी सहानुभूति होना स्वाभाविक ही था। इस इच्छाकी पूर्ति होते न देखकर ही वह मानसिक रोगसे आक्रान्त होने लगी थी।

अब प्रश्न यह होता है कि सामुद्रिकीको उक्त महिलाका घरेलू इतिहास किस प्रकार मालूम हुआ जिससे वह उक्त दो संख्याओंके द्वारा उसकी प्रबलतम और गुप्ततम इच्छाको भविष्यवाणीमें प्रकट कर सका ? यहाँ भी इस प्रश्नका सरलतम समाधान विचार-प्रेषणके द्वारा ही हो सकता है।

चित्तविश्लेषणके द्वारा ऐसी ही बहुत-सी घटनाओंका उद्घाटन हुआ है जिनमें ज्योतिषी, सामुद्रिकी आदि अनेक प्रकारके पेशेवर दैवज्ञोंकी भविष्यवाणियोंकी इस प्रकार मनोवैज्ञानिक व्याख्या संभव हुई है। मानो वे रोगीकी मानसिक कल्पनाएँ हों और यह प्रतीति हुई है कि हर भविष्यवाणीमें दैवज्ञने अपने ग्राहकोंके विचारों और विशेषकर उनकी गुप्त इच्छाओंको ही व्यक्त किया है। इस तरह इन गुह्य विद्याओं और चित्त-विश्लेषणके संयोगसे गुह्य विद्याओंके मर्म पर प्रकाश पड़ता है और मानसिक प्रेषणीयताकी वास्तविकताका पक्ष-समर्थन होता है। इन दैवज्ञोंके ग्राहक आमतौरसे उनके कार्यसे सन्तुष्ट ही रहते हैं और उनकी भविष्यवाणी गलत साबित होने पर भी उनके प्रति कोई दुर्भावना नहीं दिखलाते। यह बात भी तब आसानीसे समझमें आ जाती है जब हम यह मान लें कि दैवज्ञ उनकी प्रिय चिरसंचित कामनाओंको ही व्यक्त करते हैं जिनमें उनकी परम आसक्ति होती है। साथ ही इस अभ्युपगमसे इस बात पर भी प्रकाश पड़ता है कि दैवज्ञ किस प्रकार लोगोंके भूत या वर्तमानके जीवनका कुछ ज्ञान प्रदर्शित करते हैं, और इसी आधार पर उनका सम्भावित भविष्य बताते हैं

जो कि स्वभावतः गलत भी हो सकता है। इस धारणाके अनुसार दैवज्ञोंको अकसर अपने ग्राहकोंके जीवनका ज्ञान उनके विचारोंके द्वारा ही होता है जिन विचारोंका ग्रहण उन्हें मानसिक प्रेषणीयताकी क्रियासे होता है।

दैवज्ञोंकी भविष्यवाणियोंके विश्लेषणको छोड़कर सामान्य विश्लेषणके क्षेत्रसे भी बड़े ही चमत्कारयुक्त उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनसे विचार-प्रेषणकी वास्तविकताकी पुष्टि होती है। डोरोथी बरलिंघमने अपने एक लेखमें अपने एक ऐसे अनुभव का उल्लेख किया है जिसमें एक माता और उसका पुत्र दोनोंका चित्तविश्लेषण साथ ही साथ हो रहा था। एक दिन विश्लेषणके समय माता एक सोनेके सिक्केके विषयमें बात कर रही थी जो उसके किसी बाल्यकालीन अनुभवसे सम्बन्ध रखता था। इसके तुरन्त ही बाद, उसके घर आने पर उसका दस बरसका लड़का एक सोनेका सिक्का लिये हुए उसके कमरे में आया और उसे रखनेके लिए दिया। उसने विस्मयान्वित होकर बच्चेसे पूछा कि यह सिक्का उसने कहाँ पाया। वह सिक्का उसे कई महीने पहले उसके जन्म-दिनके अवसर पर दिया गया था और कोई कारण नहीं था कि वह उसी समय उसे क्यों याद आता। माताने चित्तविश्लेषकको यह घटना बताई और उससे कहा कि वह बच्चेसे यह पता लगावे कि उसने ऐसा क्यों किया। लेकिन बच्चेके मनके विश्लेषणसे कुछ भी न निकला। उस दिन वह कार्य उसके जीवनमें जैसे बाहरसे प्रविष्ट हो गया था। कुछ सप्ताह बाद माता विश्लेषकके आदेशानुसार इस घटनाको लिखनेके लिए अपनी मेज पर बैठी थी। उसी वक्त लड़का कमरेमें आया और उसने वह सिक्का यह कहकर वापस माँगा कि वह उसे अपने विश्लेषकको दिखानेके लिए ले जायगा। इस बार

फिर बच्चेके विश्लेषणसे उसके मनमें इस इच्छाका कोई कारण नहीं मिला।

जागरण और स्वप्नके ये सभी उदाहरण विचार-प्रेषणकी ओर संकेत करते हैं जिसका अर्थ यह है कि शब्द, संकेत आदि विचार-विनिमयके साधनोंके प्रयोगके बिना ही एक व्यक्तिके मनके विचार या उसकी मानसिक स्थितियाँ या क्रियायें दूसरे व्यक्तिके मनमें पहुँच जायें। अब तक हमने विचार-प्रेषण और दिव्यदृष्टिका भेद नहीं किया है, किन्तु इनमें भेद किया जाता है।

स्वप्नमें दिव्यदृष्टि

दिव्य दृष्टिका अर्थ यह है कि एक व्यक्तिके विचार नहीं बल्कि उस व्यक्तिसे सम्बन्ध रखने वाली किसी घटनाका ज्ञान दूसरे दूरस्थित व्यक्तिको सूचनाके किसी ज्ञात साधनके प्रयोगके विनाही घटना घटित होनेके प्रायः साथही हो जाय। शर्त्त यह है कि घटना जिस व्यक्ति पर घटित हो उसके साथ सूचना पाने वाले व्यक्तिका तीव्र हार्दिक सम्बन्ध होना चाहिए। यह ज्ञान घटनाके दर्शन या श्रवणके रूपमें होता है। इस प्रकार-के ज्ञानके उदाहरण भी स्वप्नमें मिलते हैं। श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय द्वारा हिन्दी 'स्वप्न-विज्ञान'के रूपमें रूपान्तरित श्री रामचन्द्र विनायक कुलकर्णीकी मराठी पुस्तक 'स्वप्न-मीमांसा'से कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

(१) 'कई दिन पूर्व हत्या करके भागा हुआ एक व्यक्ति जब लन्दन पहुंचा, तो मृत व्यक्तिने एक बुढ़ियाको स्वप्नमें आकर पुलिसमें यह खबर देनेके लिये कहा कि अमुक मनुष्य मेरी हत्या करनेके बाद भागकर इस समय अमुक नामसे लन्दनके अमुक स्थानमें रहता है। इस पर बुढ़ियाने पुलिसको खबर दी और हत्यारेकी खोज की गई।

(२) 'उपर्युक्त स्वप्नके अनुसार खोजने पर पता लगा कि हत्यारा किसी दूसरी जगह चल दिया है। इसपर मृतव्यक्तिने

फिर उससे स्वप्नमें आकर कहा कि सुबह अमुक मकानमें तलाश करने पर हत्यारेका पता लग सकता है, वह उस मकानमें छिपा हुआ है ; किन्तु पुलिसके पहुँचते ही वह फिर वहाँसे निकल जायगा और शीघ्र न पकड़ा जा सकेगा। किन्तु वह व्यक्ति उसी मकानके पीछे वाली कोठरीमें घासके नीचे छिपेगा ; अतः पुलिसको उस स्थानमें ले जाकर घास हटानेकी सूचना देनी चाहिए। इस स्वप्नके अनुसार पुलिसने उस कोठरीमें घासके नीचेसे हत्यारेको पकड़ा।'

उपर्युक्त दो स्वप्नोंमेंसे पहला स्वप्न तो भूत तथा वर्तमान घटनाओंका सूचक है अर्थात् स्वप्नसे पूर्वकालमें हुई हत्या तथा स्वप्नकालमें हत्यारेके निवासस्थानकी सूचना देता है। किन्तु दूसरा स्वप्न हत्यारेके वर्तमान निवासस्थानके अतिरिक्त उसके भावी कार्यकी भी सूचना देता है। दूसरे शब्दोंमें वह उसके वर्तमान इरादोंकी सूचना देता है। उस सूत्रसे इस स्वप्न-को हम विचार-प्रेपक स्वप्नोंके वर्गमें ला सकते हैं अगर हम यह मान लें कि यहाँ स्वप्नद्रष्टाने हत्यारेके विचारोंको ग्रहण किया है। इस व्याख्यासे इस स्वप्न तथा पहले स्वप्नमें हत्यारे-के वर्तमान निवासस्थानकी सूचना भी हत्यारेकी मनस्थितिके —और मन पर उसकी परिस्थिति सदा अंकित रहती है—प्रेषण द्वारा सम्भव हो जाती है जिस प्रकार ऊपर दैवज्ञोंको लोगोंके जीवनका ज्ञान उनके विचारोंके द्वारा होनेकी सम्भावना बताई गई है। इसी प्रकार पहले स्वप्नमें पूर्वकालमें हुई हत्याकी सूचना भी हत्यारेके वर्तमान विचार-प्रेषणके द्वारा समझी जा सकती थी, किन्तु इस व्याख्यामें एक कठिनाई आती है। हम देख चुके हैं कि विचार-प्रेषण ऐसेही व्यक्तियोंके बीच होता है जिनका परस्पर तीव्र हार्दिक सम्बन्ध स्थापित हो। किन्तु इस

उदाहरणमें स्वप्नद्रष्टा और हत्यारेके बीच पहलेसे ऐसा कोई प्रिय या अप्रिय सम्बन्ध या पारस्परिक परिचय भी नहीं मिलता। इसलिये विचार-प्रेषणकी कार्यप्रणालीके अधिक अनुकूल यह कल्पना होगी कि स्वप्नद्रष्टाको हत्याकी घटना और हत्यारेकी सूचना मृतव्यक्तिके विचारोंके प्रेषणसे मिली जिसके साथ उसका रागात्मक सम्बन्ध था। इस प्रकार हत्यारेकी सूचना मिलनेके बाद स्वप्नद्रष्टाके मनका उसके मनके साथ द्वेषात्मक सम्बन्ध स्थापित हुआ और फिर इस सम्बन्धके सूत्रसे स्वप्नद्रष्टाने हत्याके बादके उसके कार्योंको उसके विचार-प्रेषणके द्वारा ग्रहण किया। विचार–प्रेषणके अन्य उपर्युक्त उदाहरणोंसे इस स्वप्नमें एक और विशेषता यह है कि यहाँ सम्बद्ध मृत व्यक्ति पर घटित घटनाका सूचक स्वप्न स्वप्नद्रष्टाको तत्काल न होकर कई दिन बाद हुआ। अतएव यहाँ पर इतना और अभ्युपगम करना पड़ेगा कि विचार-प्रेषणकी कार्यप्रणालीके अनुसार इस घटनाकी सूचना तो उसके मनको तत्काल पहुँच गई होगी। किन्तु जिस प्रकार किसी कार्यमें ध्यानमग्न होनेके कारण हमारा मन अपनी इन्द्रियों द्वारा ग्रहण होती हुई अनेक बातों पर उस समय ध्यान नहीं देता, किन्तु ये घटनाएं हमारे अव्यक्त चित्तमें पड़ी रहती हैं और बादको हमें उनका बोध होता है, और जिस प्रकार अव्यक्त चित्तमें बहुतसे विचार सञ्चित रहते हैं, किन्तु जाग्रत् कालमें व्यक्त न होकर निद्राकी अनुकूल स्थिति पाकर ही व्यक्त होते हैं, और निद्राकालमें भी हर विचार प्रतिदिन व्यक्त नहीं होता, जिस दिन उसके अनुकूल मनस्थिति होती है उसीदिन व्यक्त होता है, उसीप्रकार इस घटनाकी सूचना, चाहे वह जाग्रत् कालमें आई हो या निद्राकालमें, अनुकूल मनस्थिति न पाकर उस समय चेतनाके सम्मुख उदित न हो सकी और अव्यक्त चित्त

में पड़ी रही तथा कई दिन बाद जब उसे मनकी अनुकूल स्थिति मिली तब वह व्यक्तरूपसे चेतनामें आई।

(३) "एक यात्रीको मार्गमें किसी ऐसे स्थान पर उतरना पड़ा जहाँ सोनेके लिए उसे एक अलग कोठरी दी गई थी। दोपहरको भोजनके बाद जब वह मनुष्य सो गया तो उसने स्वप्नमें देखा कि एक बूढ़ा दढ़ियल मनुष्य एक बड़े उस्तरेसे अपनी गर्दन काटकर मर रहा है। इस दृश्यको देखते ही वह यात्री भयके कारण जोरसे चिल्ला उठा। इस पर तत्काल घरके लोग वहाँ आये तो यात्रीने उन्हें स्वप्नका हाल सुनाया; इसपर मकान वालेने कहा कि 'कई वर्ष पूर्व यहाँ एक बूढ़ेने आत्महत्या अवश्य की थी'।"

आपाततः यह प्रतीत होता है कि यह स्वप्न इतने अधिक पहलेकी एक सर्वथा अपरिचित और असम्बद्ध व्यक्ति सम्बन्धी घटनाकी सूचना देता है कि इससे विचार-प्रेषणका कोई सम्बन्ध नहीं मालूम होता। किन्तु हो सकता है कि जब यात्री इस कोठरीमें सोया जिसमें ऐसी घटना घट चुकी थी और जिसे इस कारण मकान वाले भूताविष्ट समझते और उसमें अकेले रहनेको शंकाकी दृष्टिसे देखते रहे होंगे, तो मकान वालेको उस घटनाका स्मरण हो आया हो और उसके विचार-प्रेषण द्वारा यह घटना यात्रीकी चेतनामें अंकित हुई हो।

(४) "एक लड़का जैसेही आकर अपने दादा या बाबाके बिस्तर पर लेटा कि उसे नींद आ गई। उसने स्वप्नमें देखा कि 'बूढ़े बाबा बहुत क्रुद्ध हो रहे हैं और गालियाँ देकर छोटी बहनको पीट रहे हैं।' इस दृश्यको देखकर वह तत्काल उठ बैठा और उसने अपनी दादीसे स्वप्न का हाल कहा। इस पर दादी

ने कहा—'सच है बेटा, तीसरे प्रहरको सोकर उठते ही उन्होंने इसी विस्तर पर उस बच्चीको पीटा था, ।"

इस स्वप्नमें भी लड़केको डोरोथी वरलिंघमकी रोगिणी-के लड़केकी भाँति, छोटी बहनके दादा द्वारा पीटे जानेकी थोड़ी ही देर पहलेकी घटनाकी सूचना दादा या दादीके विचार-प्रेषणसे मिली हो सकती है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि दिव्यदृष्टिके स्वप्नोंका विचार प्रेषक स्वप्नोंमें ही समावेश हो सकता है और इसप्रकार दोनों-का भेद आसानीसे मिटाकर तादात्म्य स्थापित किया जा सकता है। ऐसी स्थितिमें, जहाँ दोनोंमें एकही व्याख्यासे काम चल जाता है, दोनोंको भिन्न मानकर उनकी दो व्याख्या करना व्यर्थ प्रतीत होता है।

दिव्यदृष्टिके उपर्युक्त पहले दो उदाहरणोंमें व्यक्त स्वप्नमें हत्याकी सूचना स्वयं मृत व्यक्ति द्वारा दी गई है। ऐसे ही स्वप्नों-से स्वप्नकी कार्यप्रणालीका ज्ञान न होनेके कारण सामान्य धारणा हो गई है कि ये स्वप्न हमें प्रेतात्मायें अपने सूक्ष्म मान-सिक शरीर द्वारा हमारे मनसे सम्पर्क स्थापित करके देती है। तीसरे स्वप्नके सम्बन्धमें भी यही खयाल हो सकता है, यद्यपि वहाँ आत्महत्याकी घटनाकी सूचना मृत व्यक्तिके कथनके रूपमें नहीं बल्कि घटनाके प्रत्यक्ष दर्शनके रूपमें प्राप्त हुई है। किन्तु स्वप्नकी नाटकीय कार्यप्रणालीसे परिचित हो जानेके बाद इस कल्पनाकी आवश्यकता नहीं रहती। क्योंकि विचारोंको रूप या शब्दके द्वारा मूर्त और प्रत्यच्च करके दिखाना तो स्वप्न-की भाषा ही है। इस भाषाके व्याकरणको समझ लेनेके बाद, जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है, विचार-प्रेषणसे ही ऐसे स्वप्नों-की व्याख्या हो जाती है।

जिन स्वप्नोंमें देवी देवताओंका रूपदर्शन या शब्द श्रवण होता है, उनके रूपका कारण भी स्वप्न की नाटकीयता और मूर्तिमत्ता ही है। ये देवी देवताओंके रूपक हमें अपने पुराणों-से प्राप्त होते हैं।

कभी कभी विद्यार्थी परीक्षामें आने वाले प्रश्नपत्रोंको ज्यों-के त्यों स्वप्नमें देख लिया करते हैं। इन स्वप्नोंको भी परीक्षक-के विचार-प्रेषणके द्वारा समझा जा सकता है। परीक्षार्थियोंका मन परीक्षापत्रकी ओर लगा रहना स्वाभाविक ही है और यह मनस्थिति प्रश्नपत्रको बनाने या पढ़नेवालेके विचारोंको ग्रहण करनेके लिये अनुकूल अवस्था उत्पन्नकर देती है। यहाँ हम यह अभ्युपगम अवश्य कर रहे हैं कि सभी व्यक्तियोंके विचारों-की लहरें तो बेतारके तारके रूपमें चलती ही हैं और इनको ग्रहण करने वाले व्यक्तिके चित्तका इन व्यक्तियों या विचारों-में आसक्त होना इनके ग्रहणके लिये एक आवश्यक शर्त है। यदि विचारविशेषमें ही आसक्ति हो तो पहलेसे, या प्रेषण कालमें भी, यह ज्ञान आवश्यक नहीं है कि यह विचार अमुक व्यक्तिका है। न यही आवश्यक है कि विचारप्रेषकको विचारग्राहक-का पूर्व परिचय या उसमें कोई आसक्ति हो। और यदि व्यक्ति-के सारे जीवनमें आसक्ति हो तो फिर उसके किसी विचारविशेष-में आसक्ति होना आवश्यक नहीं है। किन्तु इस स्थितिमें प्रेषक-को ग्राहकका ध्यान होना सहायक होता है, आवश्यक वह भी नहीं है। विचारप्रेषकको यह ज्ञान तो किसी हालतमें होता ही नहीं कि उसके विचारोंका प्रेषण या ग्रहण हो रहा है।

(७)

रचनात्मक स्वप्न

कुछ स्वप्न ऐसे होते हैं, जिनमें स्वप्नद्रष्टाके जाग्रदवस्थाके विचार जारी रहते हैं और उसकी ऐसी बौद्धिक समस्याएँ, जिनमें वह जाग्रत् कालमें उलझा रहा है, हल हो जाती हैं और अक्सर उसे अन्तःस्फूर्तिका महत्त्वपूर्ण प्रकाश भी प्राप्त होता है। इन समस्याओंमें गणित तथा अन्य विज्ञानोंसे सम्बद्ध समस्याएँ अथवा विद्यार्थियोंकी परीक्षा सम्बन्धी कठिनाइयां भी होती हैं। किन्तु कविता या कहानी आदि कलात्मक रचनासे सम्बन्ध रखनेवाली समस्याएँ अधिक होती हैं। इस सम्बन्धमें कुछ कलाकारोंके अनुभव मनोरंजक हैं।

अंग्रेज़ीके कवि कॉलरिजकी 'कुबला खाँ' नामक कविताकी कल्पना उसे स्वप्नमें हुई थी, और पूर्णतः नहीं, तो अंशतः तो वह अवश्य स्वप्नके बाद तुरन्त ही स्मृतिसे लिख डाली गई थी। मिसेज़ आर्नल्ड फार्स्टरने एक लेखककी, जिसने आधुनिक उपन्यासकारोंमें एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है, एक मौलिक और नाटकीय कहानीके पूर्णतः स्वप्नरचित होनेका वर्णन किया है। जिस समय स्वप्न हुआ उस समय वह एक पुस्तक लिखनेमें व्यस्त था और अपनी सारी शक्ति और समय उसीमें लगा रहा था। पुस्तक का दो-तिहाई भाग लिखा जा चुका था और वह समाप्तिकी ओर बढ़ रही थी कि एक रात उसने एक असाधारण

रूपसे सजीव स्वप्न देखा, जिसमें एक अत्यन्त नाटकीय ढंगकी कहानी अंशतः व्यक्त हुई। दूसरी रातको वह जारी रही और अन्तमें पूर्ण हो गई। उसने फिर-फिर उस कहानीका स्वप्न देखा। सारा कथानक, नाटकके दृश्य और पात्र इतनी सजीवतासे उपस्थित होते थे और स्वप्नद्रष्टा पर उन्होंने ऐसा आग्रहपूर्ण प्रभाव डाला कि वह उनकी स्मृतिसे अपनेको मुक्त नहीं कर सकता था। वे उसके पुस्तक-लेखनके कार्यमें बाधा-स्वरूप आ उपस्थित होते थे और अन्तमें उसने पुस्तक लिखना तब तकके लिए बन्द कर दिया जब तक कि उसने स्वप्नकी कहानी पूरी लिख नहीं डाली। वह तेज लेखक नहीं है और जो प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है उसे धैर्य और सावधानीसे प्राप्त करता है। किन्तु जब वह इस स्वप्न-को लिखने लगा, तो वह उसे अपनी रचनाकी तरह नहीं बल्कि दूसरे किसीके द्वारा कही हुई कहानीकी तरह मालूम होता था, और उस लिखी हुई कहानीको पढ़नेसे सचमुच ऐसा प्रभाव पड़ता है कि उसके दृश्य और घटनाएँ कल्पित नहीं बल्कि लेखक द्वारा देखी हुई हैं।

इससे बहुत ही मिलता-जुलता अनुभव अंगरेज़ीके प्रसिद्ध लेखक स्टीवेन्सनका है। उसने एक निबन्धमें अपने रचनात्मक स्वप्नोंके विषयका वर्णन किया है जिनसे उसकी अनेक कहा-नियाँ उद्भूत हुईं। ये स्वप्न उसे अपनेसे सर्वथा बाहरसे प्रेरित तथा अपनी साधारण मानसिक क्रियाओंसे सर्वथा भिन्न और उन्नत शक्तियोंके कार्य प्रतीत होते थे। यहाँ तक कि उसने उन्हें मनमें रहनेवाले किन्हीं भिन्न सूक्ष्म जीवोंकी रचना कहा है जो उसके निद्रा-कालमें सचेष्ट हो जाते थे और उसके लिए कहानियों-के ऐसे कथानक विकसित करते थे जो उन कहानियोंसे कहीं अच्छे होते थे, जिनकी वह स्वयं दिनको कल्पना करता था।

उसने इस निबन्धमें एक ऐसी कहानीकी रूपरेखा दी है जिसके बारेमें वह सत्य ही कहता है कि उसकी स्थितियोंके नाटकीय प्रभावको उससे अच्छा बनाना कठिन है। कहानीके कथानकका आधार नायिकाकी गुप्त प्रेरणा थी, यह रहस्य अन्त तक गुप्त रखा गया था। उसने लिखा है—'स्वप्नद्रष्टाको इस प्रेरणाका, जो इस सुकल्पित कथानकका आधार थी, कोई अन्दाज नहीं था, जब तक कि वह अत्यन्त नाटकीय रूपसे व्यक्त नहीं की गई। वह स्वप्नद्रष्टाकी कहानी नहीं थी, वह सूक्ष्म जीवोंकी थी। और न केवल भेद ही गुप्त रखा गया बल्कि कहानी भी बड़ी ही कला-चातुरीसे कही गई थी। मैं इस समय जाग्रत् अवस्थामें हूँ, मैं इस कामको जानता हूँ, और फिर भी मैं इस कहानीको इससे अच्छी नहीं बना सकता। जितना ही मैं उसपर सोचता हूँ उतना ही मुझे यह प्रश्न करनेका आग्रह होता है कि ये सूक्ष्म जीव कौन हैं? निस्सन्देह वे स्वप्न द्रष्टाके निकट सम्बन्धी हैं और उसकी शिक्षा दीक्षामें उसके साथी हैं। स्पष्ट है कि उसीकी तरह उन्होंने एक सुव्यवस्थित कहानीकी योजना बनाना और भावोंको विकास-क्रममें रखना सीखा है। मेरे विचारसे उनमें केवल योग्यता अधिक है। और एक बात असन्दिग्ध है कि वे क्रमशः किस्तोंमें कहानी कहना और स्वप्नद्रष्टाको बराबर अपने उद्देश्यसे अन-भिज्ञ रखना जानते हैं।"

अब कुछ वैज्ञानिक उदाहरण भी देखिए। इस प्रसंगमें फ्रांसीसी विज्ञानवेत्ता कन्दार्सेका उदाहरण बहुत दिया जाता है, जिसने स्वप्नमें गणितका एक ऐसा प्रश्न हल किया था, जिसका उत्तर वह दिनमें नहीं निकाल सका था। मिसेज आर्नल्ड फार्स्टर-ने अपने पिताका उदाहरण दिया है, जिसने एक वैज्ञानिक समस्यापर कई घण्टे काम करनेके बाद विवश होकर उसे बिना

हल किए ही छोड़ दिया था और सो गया था। सोते ही उसे गहरी नींद आ गई और एक लम्बे स्वप्नके दौरानमें उस समस्याका हल उसके सामने आया। सवेरे तड़के ही वह जाग गया और उस हलको लिख डाला और बड़ी सतर्कतासे जाँचकर देखा कि वह शुद्ध था।

मिसेज़ आर्नल्ड फार्स्टरने इसीसे मिलता-जुलता अपने एक मित्रका एक और उदाहरण दिया है। उसने लिखा था—"कई बार परीक्षाकी तैयारी करते समय ऐसा हुआ कि मैंने दो-तीन दिन तक किसी समस्यापर मेहनत की, किन्तु उसके हल तक न पहुंच सकी और अन्तमें स्वप्नमें इतनी स्पष्टताके साथ उसे हल किया कि जागनेपर बड़ी आसानीसे उसका सही हल लिख सकी। यों स्कूलके दिनोंमें अक्सर ऐसा होता था और जब मेरे सामने बहुत कठिन सवाल आते थे तो मैं अपने बिस्तरपर कागज और पेंसिल रख लेती थी ताकि अगर जवाब स्वप्नमें आवे तो उसे लिखनेके लिए तैयार रहूँ।"

हेनरी फ्रैवरने लिखा है कि उसके लिए निद्रा अक्सर मनकी क्रियाको बन्द करनेवाली नहीं बल्कि उसे तेज करनेवाली अवस्था सिद्ध होती थी, और वह अक्सर नींदमें गणितके वे प्रश्न हल कर लेता था जिनमें वह दिनको उलझा रहता था। उसने लिखा है—"एक तीव्र ज्योति मेरे मस्तिष्कमें प्रज्ज्वलित हो उठती है और तब मैं अपने बिस्तरसे कूद पड़ता हूँ और रोशनी जलाकर उस हलको लिख लेता हूँ ताकि उसकी स्मृति चली न जाय। बिजलीकी चमककी तरह जैसे यह अकस्मात् प्रकट होती है, वैसे ही अकस्मात् गायब भी हो जाती है।

श्री रामचन्द्र विनायक कुलकर्णीकी मराठी पुस्तक 'स्वप्न मीमांसा' से भी इसी प्रकारके दो उदाहरण उद्धृत किए जाते हैं:

(१) एक विख्यात महिलाने अपने आत्मचरित्रमें लिखा है—"अनेक वार सिलाईके काममें कपड़ा काटनेका ढंग ठीक तरहसे समझ न आनेपर स्वप्नमें कपड़ोंके नापका दृश्य दिखलाई दिया, उसीके अनुसार जाग्रदवस्थामें मैंने ठीक तरहसे कपड़े नापकर काटे और सिए हैं।" (२) एक दूसरे सज्जनका कहना है—"विद्यार्थी अवस्थामें भूगोलका ज्ञान मुझे बहुत कम था; अतएव बार बार मुझे सजा मिलती थी। किन्तु एक दिन रातको जब मैं भूगोल लेकर पढ़ने बैठा तो थोड़ी देरमें मुझे नींद आ गई। उसी समय स्वप्नमें मैंने समग्र एशिया महाद्वीपका का नक्शा तैयार कर लिया। दूसरे दिन सुबह जागनेपर एशियाकी सारी बातें और नक्शेके सब भाग ज्योंके त्यों मेरे नेत्रोंके सम्मुख दिखाई देने लगे जिनका मुझे कई वर्ष तक स्मरण रहा।"

स्टीवेन्सन तथा एक और उपन्यासकारके जो अनुभव ऊपर उद्धृत हैं उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि रचनात्मक स्वप्नोंकी दो विशेषताएँ फौरन ध्यान आकृष्ट करती हैं। एक तो इनकी रचना अपनेसे सर्वथा बाह्य प्रतीत होती है और स्वप्नद्रष्टा केवल उसका श्रोता या द्रष्टामात्र प्रतीत होता है। फिर जिस मानसिक शक्तिसे इनकी रचना होती है वह स्वप्नद्रष्टाके मनसे स्वरूपतः किसी भी बातमें भिन्न नहीं होती। वह भी उसी सामग्रीसे काम करती है जो स्वप्नद्रष्टाके मनमें स्मृति रूपसे सञ्चित है। वह किसी ऐसी बातका प्रयोग नहीं करती जो स्वप्नद्रष्टाके जीवनमें अनुभूत न हुई हो और न वह उन शक्तियोंसे काम लेती है जो स्वप्नद्रष्टामें न हों। किन्तु उनके कार्यका पता स्वप्नद्रष्टाको नहीं होता। जाग्रत् और सुषुप्त जीवनकी साधारण तथा असाधारण अवस्थाओंसे प्राप्त ऐसा ही अनेक अनुभवोंने वैज्ञानिकोंको यह माननेके लिए विवश किया है कि

मनुष्यके मनकी दो सतहें हैं—एक व्यक्त और दूसरी अव्यक्त। जिस समय मनुष्यके विचारोंकी एक व्यक्त धारा प्रवाहित होती रहती है उसी समय अक्सर दूसरे विचारोंकी एक अव्यक्त धारा भी प्रवाहित होती रहती है जिसका व्यक्त चित्तको कुछ भी ज्ञान नहीं होता। विभिन्न व्यक्तियों तथा अवस्थाओंमें मनके इन दो स्तरोंका विलगाव विभिन्न मात्राओंमें होता है। कहीं अव्यक्त धारा थोड़ी ही देरमें व्यक्त होकर व्यक्त धाराका भाग बन जाती है। जब हम किसी आवश्यक कार्यमें दत्तचित्त होते हैं और उसकी अधूरी अवस्थामें ही कोई और समस्या हमारा ध्यान आकृष्ट करती है तो हम इस अन्तिम समस्यापर व्यक्तरूपसे ध्यान न देकर अपने प्रारब्ध कार्यमें लगे रह जाते हैं और यह समस्या अव्यक्त चित्तमें एक अलग विचारधारा प्रवाहित कर देती है। या यदि हम इस समस्यापर ही सोच रहे थे और कोई अत्यन्त तात्कालिक कार्य आ पड़ा तो हमारा व्यक्त चित्त इस कार्यकी ओर खिंच जाता है और वह समस्या अव्यक्त रूपसे काम करने लगती है। किन्तु इन दोनों स्थितियोंमें जरूरी कार्यके समाप्त होते ही अव्यक्त समस्या हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेती है। कभी कभी तो कार्यके बीचमें भी वह अपनी सक्रियताका पता देती रहती है। इसीलिए मनकी प्रवृत्ति स्वभावतः यही होती है कि व्यक्त क्षेत्रके खाली होते ही वह अव्यक्त विचारधारासे उसे घेर ले ताकि उसका स्थान कोई अन्य व्यक्त विचार या आवश्यकता न ले ले। मनोविज्ञानका यह सिद्धान्त है कि हर विचारकी स्वाभाविक गति अभिव्यक्तिकी ओर होती है। एक समयमें अपनी सारी अविभक्त शक्ति एक ही विचारमें लगानेमें सुविधा होती है, अर्थात् उसे अपने कार्यके लिए अधिक शक्ति प्राप्त होती है। उदाहरणके लिए, हम कभी किसी प्रसंगमें कोई

बात याद करना चाहते हैं और उस अवसरपर उसे याद नहीं कर पाते ; पर कुछ देर बाद वह एकाएक बिना प्रसंगके खुद-ब-खुद याद आ जाती है। किन्तु जब हमारा मन किसी ऐसे धारावाहिक कार्यमें उलझा रहता है जो दिन-ब-दिन हमारे जाग्रत् जीवनका सारा समय ले लेता है और उसे एक ही दिशामें निर्दिष्ट रखता है, तो समय-समयपर हमारा ध्यान आकृष्ट करने-वाली अन्य विचारधाराएँ स्वप्न कालमें ही व्यक्त होनेका अवसर पाती हैं। इनमें से कोई विचार धारा स्वयं काल साध्य हुई, तो वह नित्यके स्वप्न जीवनमें उसी प्रकार जारी रहेगी, जिस प्रकार जाग्रत् जीवनमें पहली विचारधारा। जाग्रत् समयमें वह अव्यक्त रूपसे चलती रहेगी और अपनी आवश्यकता तथा सम्वेगके अनु-सार मनकी कुल शक्तिका एक भाग अपनेमें उलझाये रहेगी। यही कारण है कि जब इस प्रकार विभक्त मनमें कोई अव्यक्त विचारधारा काम करती रहती है उस समय मनके व्यक्त कार्यमें भी कुछ अन्यमनस्कताका परिचय मिलता है। और एक प्रकारका दूसरी दिशासे आता हुआ अप्रासंगिक बोझ, शीघ्रता और परीशानीका विघ्नस्वरूप अनुभव होता है, जिसका कारण व्यक्त चेतना पर अव्यक्त विचारधाराका दबाव—अर्थात् मनकी कुछ शक्ति अव्यक्तमें खिंच जानेके कारण व्यक्त चेतनाकी शक्ति-क्षीणता—है, जिससे यह खीझ और अनुभव होता है कि उसकी शक्ति कहीं इस तरह उलझ गई है कि वह अपने कार्यमें पूरी तरहसे वह शक्ति नहीं लगा पा रहा है जो उसमें विद्यमान है।

मनकी शक्तिके एक भागके इस प्रकार किसी आकर्षक समस्यामें उलझकर अव्यक्त रूपसे विभक्त होकर काम करते रहने-के कारण ही रचनात्मक स्वप्नोंमें यह प्रतीति होती है कि इनका हल एकाएक कहीं बाहरसे प्राप्त हो गया है ; क्योंकि वास्तवमें

उस समस्यापर हमारा मन अव्यक्त रूपसे जो काम करता रहा वह, अर्थात् उसके पकनेकी क्रिया, तो हमारी चेतनाके सामने आ पाई नहीं, केवल उसका पका-पकाया फल ही एकाएक उसके सम्मुख उपस्थित हुआ। जिस तर्कसे वह समस्या हल हुई उसकी कड़ियाँ तो हमारी चेतनासे परे बनती रहीं। केवल बनी बनाई शृंखला ही एकाएक हमारे सामने आ गई। इसी कारण वह हमें बौद्धिक सृष्टिकी परिचित कष्ट साध्य मञ्जिलोंसे क्रमशः निर्मित अपनी रचना नहीं मालूम होती, बल्कि कहींसे बनी-बनाई पूर्ण रूपमें हमें अकस्मात् और अनायास प्राप्त प्रतीत होती है।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि स्वयं स्वप्नमें कोई बौद्धिक सृष्टि नहीं होती। सृष्टि तो अव्यक्त मनमें होती है। केवल यह सृष्टि जितनी और जहाँ तक हुई होती है, स्वप्न कालमें चेतनाका क्षेत्र खाली पाकर व्यक्त हो जाती है। वस्तुतः निद्राके विश्रामकालमें मनको उतनी शक्ति नहीं प्राप्त होती जितनी कि बौद्धिक प्रयासके लिए आवश्यक है। यही कारण है कि लगातार कई रात्रियोंमें हल होनेवाली समस्याका जो भी भाग स्वप्नमें आता है वह अप्रयाससिद्ध प्रतीत होता है। वस्तुतः यह उस समस्याका उतना ही भाग है जितना अव्यक्त विचार द्वारा वह आगे बढ़ चुकी है। इसे व्यक्त करनेके बाद स्वयं स्वप्न उसे आगे न बढ़ाकर वहीं समाप्त हो जाता है और उसे हल करनेके लिए स्वयं कोई प्रयास नहीं करता। दूसरे दिन फिर वह समस्या अव्यक्त रूपसे आगे बढ़ती है और दूसरी रात्रिका स्वप्न उसे इस उन्नत रूपमें हलके अधिक समीप देखता है, अर्थात् वह उसके हलकी दूसरी कड़ी देखता है। इसी प्रकार क्रमशः वह समस्या हल हो जाती है और

उसका पूर्ण रूप, अर्थात् उत्तर या रचनाकी अन्तिम मञ्जिल स्वप्न-में हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाती है।

इसी प्रकार यह भी समझमें आ जाता है कि स्वप्नमें अकसर बड़ा लम्बा दीर्घकालव्यापी सुसम्बद्ध घटनाचक्र घटित हो जाता है, और वस्तुतः उसका स्वप्नकाल बहुत ही थोड़ा होता है। चन्द मिनटोंके स्वप्नमें बरसोंकी पूरी कथा सामग्री सिमट आती है। यह वैसी ही बात है जैसे हम वस्तुतः बरसोंमें घटी हुई घटनाओंका महीनोंमें लिखा हुआ वर्णन इतिहास या उपन्यासमें मिनटोंमें पढ़ लेते हैं। स्वप्नमें इतने कम समयके लिए पूरी तफसीलके साथ इतनी बड़ी कहानीकी रचना करनेकी कठिनाई उपस्थित नहीं होती। वह तो अव्यक्त मन द्वारा पहलेसे तथा एक स्मृति शृङ्खलाके रूपमें सञ्चित पूरे कालको एक साथ ही उद्बुद्ध करके चित्रवत् देख लेता है। जैसे हमारी स्मृतिमें सञ्चित कोई पूर्वकालमें स्वनिर्मित या पढ़ी हुई या सुनी हुई परनिर्मित कहानी किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा, जो उसको जानता हो, याद दिलाए जानेपर एकदम हमारे चित्तमें उदित हो जाती है और उसको क्रमशः बयान करनेकी आवश्यकता नहीं होती। यह इसलिए सम्भव है कि मूर्त्त कल्पनामें अमूर्त विचारसे कम शक्ति लगती है।

रचनात्मक स्वप्नोंकी दूसरी विशेषता यह है कि उनकी रचनामें स्वप्नद्रष्टाको अपने मनकी साधारण शक्तिसे अधिक योग्यता प्रतीत होती है। इस प्रतीतिका एक कारण तो उसको अनायास शक्ति प्राप्त होनेकी प्रतीति ही है जिसका कारण हम ऊपर देख चुके हैं। स्वप्नद्रष्टा जिस कार्यको जाग्रत् जीवनमें धीरे-धीरे परिश्रमके साथ करता है, उसे एकदम और बिना प्रयासके होते देखकर उसे विचारकी गतिमें विस्मयजनक तीव्रता और

अपनेसे अधिक योग्यताकी प्रतीति होना स्वाभाविक है। किन्तु कोई ऐसा व्यक्ति उपन्यासकी रचना या गणितका सवाल स्वप्नमें नहीं करता, जो इन कामोंको सर्वथा जानता नहीं। प्रश्न केवल यह रह जाता है कि फिर जो लोग स्वप्नमें इन कामोंको कर लेते हैं वे जाग्रत् कालमें इन्हीं कामोंको क्यों नहीं कर सके? इसका कारण यह है कि हर कामके लिए उपयुक्त समय, अवस्था तथा परिस्थिति चाहिए। अन्य आवश्यकताओंके दबावमें या थकानके कारण जब हम किसी कामको जल्द खत्म कर देना चाहते हैं और वह काम उससे अधिक समय चाहता है, या जब अनेक विक्षेपकारी बाह्य विषय हमारे मनकी एकाग्रतामें बाधक हो रहे हैं, तब हम स्वभावतः घबराकर उसे असम्भव मान लेते हैं। अगर हममें उस समय उस मानसिक प्रयासके लिए अधिक शक्ति होती और हमारी ऐसी मानसिक अवस्था तथा परिस्थिति होती, जिसमें इतर विषय हमारे मनको विचलित न कर सकते तथा हम उस कामपर और अधिक समय लगाते और हमारी संचित स्मृतियोंमेंसे, जितनी उसके लिए प्रासंगिक हैं, उन सबको उस प्रसंगमें उद्बुद्ध होनेका अवसर देते, तो हम यों भी कामयाब हो जाते।

किसी बौद्धिक समस्याको हल करनेमें अनेक दृष्टियोंसे उसपर विचार करना पड़ता है। किसी समय हम एक दृष्टिसे विचार करनेमें इतने तन्मय रहते हैं कि विचारकी दूसरी दिशा उस समय हमें सूझती ही नहीं। और हमारी स्मृतियोंका उद्बोधन हमारे आग्रहकी दिशासे ही निर्दिष्ट होता है। जिस प्रसंगकी स्मृतियाँ हम चाहते हैं वही उद्बुद्ध होती हैं, अन्य नहीं। प्रस्तुत समस्याके लिए मालूम नहीं हमारा कौन सा संचित ज्ञान उपयोगी है। इस समय हम उसपर जिस दृष्टिसे विचार कर रहे

हैं, यदि उसे बिलकुल छोड़कर दूसरी दृष्टिसे विचार करना आरम्भ कर दें, तो हमारे स्मृत्युद्बोधनकी दिशा बदल जायगी। मुमकिन है, उस समय कोई ऐसी स्मृति उद्बुद्ध हो, जिसका हमारी समस्यासे उपयुक्त अनुबन्ध बैठ जाय और समस्या हल हो जाय। विचार करनेकी क्रियाका स्वरूप ही वर्त्तमान ज्ञान या समस्याके साथ सञ्चित ज्ञानरूपी पूर्वकी स्मृतियोंका सम्बन्ध जोड़ना है। जिन स्मृतियोंके अनुसार विचारको ऐसा रूप दिया जा सकता है, जो हमारे ज्ञानके अनुसार उस विचारकी सारी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति करता है, अर्थात् जिन स्मृतियों के आधारपर हम अपनी तर्क-शृङ्खलाकी कड़ियोंको पूरी करके आवश्यक परिणाम या अपने ज्ञानानुसार अबाधित नवीन ज्ञान पर पहुँच जाते हैं उनके मिल जाने पर हम उस समस्याको हल समझते हैं। जब तक हमें अपनी वे स्मृतियाँ, जो उस समस्याके लिए प्रासङ्गिक हैं, नहीं प्राप्त होतीं तब तक हमारी तर्क-शृंखलाकी कड़ियाँ पूर्ण नहीं होतीं और अपने दिमागमें स्मृतियोंकी खोज जारी रखनी पड़ती है। यदि हम किसी समय गलत दिशामें आग्रहपूर्वक विचार करते रहने के कारण या स्मृतिके विघ्न स्वरूप विस्मृतिके अन्य कारणोंसे अनुकूल स्मृतियोंको नहीं पाते, तो सफलतासे निराश हो जाते हैं। थकानके कारण उस समय हमारा मस्तिष्क दूसरी दिशामें प्रयत्न नहीं करता; किन्तु उस समस्यापर हमारा प्रारम्भ किया हुआ प्रयत्न अव्यक्तमें जारी रहता है। वहाँ उसे बाह्य विषयोंकी बाधासे दूर रहकर धीरे धीरे प्रस्तुत समस्यासे समानता रखनेवाली हमारी अन्यसञ्चित स्मृतियोंके सम्पर्कमें आनेका अवसर मिलता है और उपयुक्त स्मृतिके मिल जानेपर हमारी तर्क-शृङ्खलाकी खोई हुई कड़ी मिल जाती है। उसके योगसे हम आवश्यक

परिणामपर पहुँच जाते हैं तथा हमारी समस्या हल हो जाती है।

इसीलिये यदि किसी समय कोई समस्या हल नहीं हो रही हो और बहुत उलझन पैदा कर रही हो तथा उसपर विचार आगे न बढ़ रहा हो या कोई नया विचार न आ रहा हो तो उस समय उसे वहीं छोड़कर इस प्रकार अन्य स्मृतियोंको ढूँढ़नेका अवसर देना और फिर कभी ताज़े दिमाग़ से उसपर विचार करना मनोविज्ञानके अनुसार एक अच्छा व्यावहारिक नियम है।

किन्तु यह सारी क्रिया हमारी चेतनाके नेपथ्यमें होनेके कारण उसकी दृष्टिसे छिपी रहती हैं और जब परिणाम उसके सम्मुख उपस्थित होता है तो हम इतना ही देखते हैं कि हमारी विचार शृङ्खलामें जहाँ पहले कुछ कमी मालूम होती थी वहाँ अब वह पूर्ण है, न जाने कहाँसे उसकी खोयी हुई आवश्यक कड़ियाँ प्राप्त हो गईं और उससे हम उपयुक्त परिणाम पर पहुँच गये हैं। ऐसी स्थितिमें अव्यक्तकी रचनाओंके व्यक्त होने पर एक विस्मयका भाव उत्पन्न होना और उनके परनिर्मित तथा अपनी अपेक्षा अधिक विभूतिमत् शक्तिका कार्य होनेका विचार उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है।

यह भी याद रखनेकी बात है कि मनोविज्ञानकी आधुनिक खोजोंसे यह सिद्ध हो गया है कि हमारा कोई भी अनुभव हमारे चित्तसे सर्वथा लुप्त नहीं होता। अव्यक्तमें सारे अनुभवोंकी स्मृतियाँ पड़ी रहती हैं। किन्तु किसी एक समयमें उनका एक भागही व्यक्त चित्तमें उद्‌बुद्ध हो सकता है। इस उद्‌बोधनके अनेक नियम हैं जिनके अनुसार स्मृतियोंके उद्‌बोधनके लिए विशेष विशेष सहायक और बाधक होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी एक समय विशेषमें व्यक्त चित्तके लिए जहाँ थोड़ी-सी स्मृतियाँ ही प्राप्त होती हैं, वहाँ अव्यक्त चित्तको सभी स्मृतियाँ प्राप्त हैं। इनमेंसे बहुतोंको किसी खास मौके पर याद करना अत्यन्त कठिन हो सकता है और ऐसा प्रतीत होता है कि वह तो हमें भूल ही गई थीं। यही कारण है कि अव्यक्त चित्तकी रचनाएँ, जो इन सब स्मृतियोंका उपयोग करती हैं और जिनपर हमारा प्रभुत्व नहीं-सा प्रतीत होता है, हमें अपनेसे बड़ी शक्ति और प्रतिभाशालिताका परिचय देती हैं। इस अर्थमें अव्यक्तमें अधिक योग्यता भी है। अकसर हम बौद्धिक या कलात्मक रचनामें व्यक्त चेतनाके भागको अत्यधिक महत्त्व दे देते हैं। कलाकार गेटे तथा वैज्ञानिक हेल्महोट्ज़-जैसे कुछ अत्यन्त सृजनशील व्यक्तियोंके कथनोंसे मालूम होता है कि उनकी रचनाओंके अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा मौलिक अंश उनकी चेतनामें अन्तःस्फूर्तिके रूपमें प्रायः पूर्ण होकर आते थे। हिन्दीके महान आधुनिक कवि 'प्रसाद'ने भी यही बात कही है:

कुछ रेखाएँ हों ऐसी, जिनमें आकृति हो उलझी ;
फिर एक झलक वह कितनी, मधुमय रचना हो सुलझी।

फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि मानसिक प्रयासके लिए अव्यक्तावस्था ही सदा सर्वश्रेष्ठ अवस्था होती है। कारण यह है कि जिस प्रकार अव्यक्त विचार-धाराके दबावसे व्यक्त विचार धाराकी शक्ति क्षीण होती है, उसी प्रकार व्यक्त भी अव्यक्तकी शक्तिको कुछ-न-कुछ बाँटता ही है चाहे अव्यक्त कितनी भी शक्ति क्यों न लिए हुए हो। इसलिए उत्कृष्ट विचारके लिए सबसे उपयुक्त अवस्था तो वही हो सकती है जब कि मन अविभक्त हो, अर्थात् किसी विचारको अन्य विचारोंके कारण चेतनाके क्षेत्रसे अलग होकर अधूरी शक्तिसे काम न करना पड़े और

वह स्वयं चेतनाके क्षेत्रमें रहकर मनकी सारी शक्तिका अकेले अपने लिए उपयोग करे। किन्तु इसके लिए प्रमाद और विषयान्तर-विक्षेपका अभाव होना आवश्यक है, अन्यथा मनकी शक्ति और समय अन्य विषयोंमें बँट जायगा। ऐसी ही स्थितिमें मन अल्प से अल्प समयमें अधिक से अधिक शक्तिका प्रयोग कर सकता है। यह निद्रा या किसी भी मानसिक शक्तिकी क्षीणावस्थामें नहीं हो सकता। इसके लिए मन पूर्ण रूपसे स्वस्थ और जाग्रत् होना चाहिए। ऐसी ही निर्विघ्न और एकाग्र जाग्रतिमें आवरण-विक्षेप-रहित चित्त समाहित होता है और समाहित चित्तकी अवस्था ही सफल विचार या रचनात्मक कल्पना और अन्तःस्फूर्तिके लिए अधिक स्वाभाविक है। जिन लोगोंके विचारोंको अथवा जिन विचारोंको अनेक कार्योंमें व्यस्तता, समयाभाव, शक्ति क्षीणता या बाह्य विघ्नोंसे मुक्त शान्तिका वातावरण अथवा समय न मिलनेके कारण यह अवस्था प्राप्त नहीं होती उन्हीं लोगोंके विचार या वे ही विचार अव्यक्त होकर अधिक शक्तिमत्ताका परिचय देते हैं। समाहित चित्त और निद्रामें इतनी समानता अवश्य होती है कि बाह्य विषयोंकी विघ्नकारक प्रतीति नहीं होती; किन्तु इसमें निद्राकी शक्ति-क्षीणता और प्रमाद न होकर इससे ठीक उल्टी स्थिति—मनमें पूरी पुष्टता और सतर्कता—होती है। कुछ कलाकारोंके अनुभव यह स्पष्ट कर देंगे कि इस अवस्थासे निद्रा तथा अव्यक्तावस्थाकी आन्तरिक तथा बाह्य स्थितिमें क्या भेदाभेद है।

एक चित्रकारने डिज़ाइनकी कल्पनाके समय अपनी कार्यशैलीका इस प्रकार वर्णन किया है—"किसी चित्रकी कल्पनामें एक ऐसा मार्मिक समय आता है जब चित्रकी डिज़ाइनको एक पूर्ण समग्रताके रूपमें ढालना पड़ता है। अकसर ऐसे समयमें यह

जरूरी होता है कि अपनेको अकेले बन्द कर लिया जाय, रोशनी कम कर दी जाय और मनको पूर्ण शान्तावस्थामें लाया जाय। रोशनीका कम करना महत्त्वपूर्ण है, न केवल इसलिए कि इस प्रकार डिज़ाइनकी तफ़सीलें दब जाती हैं, बल्कि इसलिए भी कि अन्धकारमें चित्त बाह्य उत्तेजनाओंसे कम विक्षिप्त होता है और आन्तरिक उत्तेजनाओंके लिए अधिक ग्रहणशील हो जाता है। चित्रकी निर्णीत बातोंकी उपेक्षा करके सीधे उस कल्पनाशील स्मृतिका उपयोग करना अधिक आसान हो जाता है जो स्वप्नों-को सामग्री प्रदान करती है।" यहाँ चित्रकारने समन्वित कल्पनाके लिए एकान्त, अन्धकार आदि निद्रा कालकी बाह्य परि-स्थितियोंको जरूरी पाया है, जिसमें बाह्य तथा गौण विषयोंकी अप्रतीतिके द्वारा अव्यक्तावस्थाकी तरह स्मृतियोंका स्वच्छन्द उपयोग होता है किन्तु मुख्य आन्तरिक विषयके प्रति मन अत्यन्त सचेत रहता है।

ल्योनार्दोने भी इसी प्रकारकी अवस्थाका वर्णन किया है और महान चीनी चित्रकार कक्षीने इस दशाको प्राप्त करनेके अपने तरीकेका, जिसे वह अपनी कलाके लिए आवश्यक पाता था, पूर्ण वर्णन इस प्रकार दिया है—"कुकाई चीने अपने स्टूडियोके लिए एक ऊँची मञ्जिलका शामियाना बनाया था ताकि उसके विचार अधिक मुक्त रह सकें। जब तक मैं एक शान्त घरमें न रहूँ और एक शान्त कमरेमें न बैठूँ, जिसकी खिड़कियाँ खुली हों, मेज साफ हो और धूप जल रही हो तथा मनमें हर वक्त आते-जाते रहनेवाले हजारों तुच्छ विचार बलपूर्वक निकाल और डुबो दिए गए हों, तब तक मुझमें सुन्दरता या चित्रकारीके लिए अच्छे भावोंका प्रादुर्भाव नहीं होता और मैं रहस्यका अद्भुत निर्माण नहीं कर सकता।" चीनी कलाकारने सौन्दर्यकी सृष्टिके लिए

वाह्य विघ्नोंसे मुक्त ही नहीं, वरन् सुगन्धित और स्वच्छ वातावरण द्वारा मनकी प्रसन्नता और स्वस्थता तथा आन्तरिक एकाग्रताको अनिवार्य पाया है।

अब जरा हम सम्मोहन जनित निद्राका मैक्डॉवेल द्वारा किया हुआ वर्णन भी देख लें जिसमें मानसिक शक्ति असाधारण रूपसे बढ़ी हुई पाई जाती है—"जब निद्रा आनेको होती है, हमारे विचारोंका प्रवाह क्रमशः मन्द होने लगता है और मस्तिष्ककी क्रिया बन्द हो जाती है। कुछ विचार और उन विचारोंसे सम्बद्ध नाड़ीचक्र अब भी सक्रिय रहते हैं। अब भी मस्तिष्कके लिए एक प्रवेश-द्वार खुला रहता है, और ऐसे समय जो प्रभाव या विचार मनमें डाले जाते हैं, वे असाधारण शक्तिसे काम करते हैं; क्योंकि वे खाली मैदानमें प्रतिद्वन्द्वी विचारों और प्रवृत्तियोंसे अबाधित रहकर काम करते हैं।" अर्थात् सम्मोहन-जनित निद्रा भी विषयान्तरके लिए ही निद्रा होती है, ताकि मनकी सारी शक्ति चारों ओरसे सिमटकर प्रस्तुत विचारपर ही केन्द्रित हो जाय और अभिमत विचारपर अधिक शक्तिसे काम करे।

ऊपर हम बहुत अधिक सामग्रीके स्वप्नमें अत्यल्प कालमें व्यक्त होनेका कारण देख चुके हैं। इसका उदाहरण भी देख लेना ज़रूरी है। मोरीका यह स्वप्न प्रसिद्ध हो गया है। एक बार वह बीमार था और बिस्तरपर पड़ा था। उसकी माँ उसके पास बैठी थी। उस समय उसने फ्रांसकी राज्यक्रान्तिके समयकी विभीषिका (Reign of terror) का स्वप्न देखा। उसने हत्याके भयानक दृश्योंमें भाग लिया और अन्तमें स्वयं न्यायालयके सम्मुख लाया गया। वहाँ उसने रॉब्सपियर आदि इस निर्दय कालके सब अभागे नायकोंको देखा। उसे अपने कार्योंका विव-

रण देना पड़ा और अनेक प्रकारकी घटनाओंके बाद, जिन्हें उसकी स्मृति स्थिर न कर सकी, उसे मृत्युदण्ड मिला। एक बड़ी भारी भीड़के साथ वह हत्याके स्थानको ले जाया गया। वह मचानपर चढ़ा, जल्लादने उसे तख्तेसे बाँधा, तख्ता खटका और गिलोटिनका छुरा गिर पड़ा। उसे प्रतीत हुआ कि उसका सिर धड़से अलग हो गया है और वह अत्यन्त भयसे जाग पड़ा। उसने देखा कि पलंगका सिरहानेका हिस्सा सचमुच उसकी गर्दनके पिछले भागपर इस प्रकार लगा है जिस प्रकार गिलोटिनका छुरा! स्पष्ट है कि फ्रांसकी राज्यक्रान्तिके समयकी यह पूरी कहानी स्वप्नमें इतने ही अर्सेमें व्यक्त हुई जितना अर्सा कि पलङ्गका सिरा गर्दनपर गिरने और जागनेके बीच गुजरा। क्योंकि यह सारा स्वप्न एक घटना-सूत्रमें सुसम्बद्ध है और जागनेपर स्वप्नद्रष्टा जिस चीजको निद्रा-भंग करनेवाले शारीरिक आघातके रूपमें देखता है, जिसे जागकर हटाए बिना वह पूर्ववत् बाधा-रहित स्थिरता और आरामकी शारीरिक स्थिति अतएव निश्चिन्त विश्रामकी मानसिक अवस्था निद्रामें स्थित नहीं रह सकता, उसके अर्थात् लकड़ीके टुकड़ेके गर्दनपर गिरने और स्वप्नकी कथाके स्वाभाविक अन्तिम लक्ष्य-स्वरूप उसके सबसे अधिक उत्तेजक भाग अर्थात् गिलोटिनके छुरेके गर्दनपर गिरनेमें आहत शारीरिक बिन्दुकी ऐसी एकता तथा आघातके स्वरूपमें ऐसी समानता है कि बाह्य आघात ही स्वप्नका जन्मदाता तथा निद्रा-भङ्गका कारण प्रतीत होता है। हम पहले देख चुके हैं कि स्वप्न किस प्रकार आकस्मिक बाह्य स्पन्दनोंको असाधारण योग्यताके साथ अपने ताने-बानेमें बुनकर एक क्रमशः विकसित मर्मस्थल (Catastrophe) उपस्थित कर देते हैं। ऐसे स्वप्नोंका एक वर्ग ही है जिनसे जागने पर कोई बाह्य उद्बोधक स्वप्नके एक

अंशके इतना अनुरूप दिखाई देता है कि वह स्पष्ट रूपसे स्वप्नका जन्मदाता प्रतीत होता है। यह विचार इस बातसे दृढ़ हो जाता है कि नियमित रूपसे बाह्य उत्तेजकोंका प्रयोग करके उनके अनुकूल स्वप्न सफलतापूर्वक पैदा किए जाते हैं। (दे० अध्याय ५)

अब स्वाभाविक प्रश्न यह होता है कि उपर्युक्त उदाहरणमें पलङ्गके सिरेके गर्दनपर गिरने और जागनेके बीचकी अत्यल्प अवधिमें इतने बड़े स्वप्नकी रचना और अभिव्यक्ति किस प्रकार सम्भव हुई ? जाग्रत् कालमें तो मानसिक क्रिया इतनी तेजीसे नहीं होती। क्या स्वप्न-कालमें विचारकी गति असाधारण रूपसे तीव्र हो जाती है ? यह कठिनाई उपर्युक्त सिद्धान्तानुसार यह मान कर हल हो जाती है कि स्वप्न-कथाकी रचना स्वप्न-कालसे पहले अव्यक्त चित्तमें हो चुकी थी और एक सूत्रमें बद्ध स्मृति मालाके रूपमें सञ्चित थी, जो मनोवैज्ञानिक अनुबन्ध-नियमके अनुसार समान उत्तेजककी प्रतीतिके साथ ही एकदम पूरीकी पूरी चेतनामें उद्‌बुद्ध हो गई। मोरीके मनमें अव्यक्त रूपसे इस कल्पनाका निर्माण और स्थिति अकारण या अस्वाभाविक नहीं है। यह बहुत सम्भव है कि यह कल्पना अपने पूर्ण सुसम्बद्ध रूपसे उसकी स्मृतिमें बरसोंसे सञ्चित रही हो ; क्योंकि मोरी एक फ्रासीसी था और सभ्यताके इतिहासका अध्येता भी। अतः यह स्वरूपतः ऐसी कल्पना है जो प्रबल प्रभावोंसे आन्दोलित एक युवकके मस्तिष्कसे स्वभावतः प्रसूत होगी। कौन ऐसा व्यक्ति होगा, खासकर यदि वह मोरीकी स्थितिका फ्रांसीसी और सभ्यताके इतिहासका विद्यार्थी है, जिसका हृदय उस भीषण युगके वर्णनोंसे उच्छ्‌वसित न हो उठेगा और जिसकी कल्पना अपनेको उन प्रभावशाली व्यक्तियोंके स्थानमें रखनेकी महत्त्वाकाङ्क्षासे प्रेरित न होगी, जो केवल अपने विचार और अग्निमय वक्तृताकी

शक्तिसे उस शहर पर शासन कर रहे थे, जिसमें मानव जातिका हृदय इतनी प्रबलतासे उद्वेलित हो रहा था और जिन्होंने यूरोप-के रूपान्तरकी बुनियाद डाल दी थी, किन्तु जो स्वयं अपना सिर हथेली पर लिए हुए थे और एक दिन उसे गिलोटिनके छुरेके नीचे रख सकते थे। स्वप्नमें एक बड़ी भारी भीड़के साथ हत्याके स्थानको जानेका दृश्य यह दिखलाता है कि मोरीकी कल्पना इस यशैषणासे ही अनुप्राणित हुई थी।

(८)

सामान्य स्वप्न

जिस प्रकार हमने स्वप्नोंमें सामान्य प्रतीकोंका प्रयोग देखा उसी प्रकार कुछ स्वप्न भी समान्य होते हैं जिन्हें हर मनुष्य एक ही तरहसे देखता है अर्थात् जिनकी समस्त व्यक्त सामग्री सदा एक सी रहती है चाहे उनके अर्थमें भिन्नता हो या न हो। इनकी समानताका कारण तो यही माना जा सकता है कि उनकी व्यक्त सामग्री एक ही प्रकारकी सामान्य स्थितियों से प्राप्त हुई है जो स्थितियाँ अनेक व्यक्तियोंके जीवनमें आती हैं। ये सामान्य स्थितियाँ स्वभावभेदसे विभिन्न व्यक्तियों-में विभिन्न मनोवृत्तियाँ उत्पन्न कर सकती हैं। और उनके भावी जीवनमें मनोवृत्तियोंके द्योतनके लिए आलम्बन बन सकती हैं। यही कारण है कि ये सामान्य स्थितियाँ विभिन्न व्यक्तियोंके स्वप्नोंको आवश्यक रूपसे व्यक्त सामग्री ही प्रदान करती हैं, समान अर्थ नहीं। इस प्रकार सामान्य स्वप्नों-के दो भेद हो जाते हैं। एक जिनमें व्यक्त सामग्रीके साथ-साथ अर्थ भी समान होता है और दूसरा जिनमें व्यक्त सामग्री ही समान रहती है, अर्थ नहीं, और जिनकी व्याख्याएँ अत्यन्त भिन्न होती हैं। इन्हीं सामान्य स्वप्नोंसे विभिन्न व्यक्तियोंकी विभिन्न जीवन प्रणालियाँ अर्थात् उनका स्वभावभेद उत्तम प्रकार-से समझा जा सकता है, क्योंकि इनमें अनेक प्रकारके स्वभावों-

के भेदको तुलनात्मक रीतिसे समझनेके लिए आवश्यक सामान्य आधार मिल जाता है और हम देख सकते हैं कि एक ही प्रकारकी स्थितिमें विभिन्न व्यक्ति किस प्रकार भिन्न भिन्न व्यवहार करते हैं। स्पष्ट है कि यह भिन्नता उनके स्वभावभेद-के कारण ही हो सकती है। यह बात भिन्न भिन्न स्थितियोंमें उन्हीं व्यक्तियोंको देखनेसे कभी असंदिग्ध रूपसे स्पष्ट नहीं हो सकती।

अब हम उपर्युक्त दो प्रकारके सामान्य स्वप्नोंमेंसे पहिले अर्थात् समानार्थक प्रकारके स्वप्नोंके कुछ उदाहरणों पर विस्तारसे विचार करेंगे, जिनकी व्यक्त सामग्री तो जीवन-की सामान्य स्थितियोंसे प्राप्त होनेके कारण समान होती है, साथ ही साथ जिनका अर्थमें भी एक समान आधार होता है।

समानार्थक सामान्य स्वप्नोंमें एक अति सामान्य स्वप्न नग्नता या अर्द्धनग्नताका स्वप्न है। यह स्वप्न प्रायः सभी-को अपने जीवनके किसी न किसी कालमें होता है। इसमें हम अपनेको अपरिचित जनसमूहमें नग्न या अर्द्धनग्न अथवा अवसरके अनुसार जैसे चाहिये वैसे कपड़े न पहने हुए देखते हैं। इसमें कभी कभी तो हमें बिल्कुल शर्म नहीं मालूम होती। किन्तु कभी कभी यद्यपि कोई हमें देखता हुआ या हम पर ध्यान देता हुआ नहीं प्रतीत होता, फिर भी हमें बड़ी परीशानी होती है। हम भागना और छिपना चाहते हैं, किन्तु हमें एक विचित्र बाधाका अनुभव होता है जो हमारा उस स्थानसे हटना असम्भव कर देती है और हम इस अप्रिय स्थितिको बदलनेमें अशक्त होते हैं। इस दूसरी स्थितिमें ही यह स्वप्न सामान्य होता है। अन्यथा इसका

सम्बन्ध शुद्ध व्यक्तिगत अनुभवोंसे हो सकता है। इसकी सामान्यता लज्जाके अनुभवकी अप्रियता और अपनी नग्नताको किसी प्रकार, खासकर भागकर, छिपा सकनेकी इच्छा तथा इस कार्यमें असमर्थ होनेमें ही है।

आम तौरसे नग्नता, अर्द्धनग्नता या अनुपयुक्त वस्त्र पहने रहनेका अनुभव अस्पष्ट होता है। अधिकतर स्वप्नद्रष्टा विकल्पसे 'या यह या वह' कपड़ा पहने रहनेका सन्दिग्ध वर्णन करता है। आमतौरसे पोशाकके दोषकी गंभीरता इतनी नहीं होती जितनी उससे शर्म लगती है।

जिन व्यक्तियोंसे शर्म लगती है, वे प्रायः अपरिचित ही होते हैं जिनके चेहरे अस्पष्ट रह जाते हैं। इस सामान्य स्वप्नमें ऐसा कभी नहीं होता कि वे स्वप्नद्रष्टाकी इस पोशाकके कारण भर्त्सना करें या उस पर ध्यान भी दें। इसके सर्वथा विपरीत वे उदासीन रहते हैं या अत्यन्त गम्भीर दिखाई देते हैं।

इन स्वप्नोंकी सामग्री प्रारम्भिक बचपनसे ली जाती है जबकि बच्चे स्वजनों और अपरिचितोंके सामने नङ्गे रहनेमें शर्माते नहीं, बल्कि विशेष आनन्द का अनुभव करते हैं। वे हँसते हैं, उछलते हैं और अपने अङ्गोंको पीटते हैं और माताएँ उन्हें मना करती हैं। मानसिक रोगियोंके बाल्य जीवनमें इतर जातीय बच्चोंके सामने नङ्गा हो जाना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। मोहोन्माद (Paranoia) के रोगियोंमें कपड़े पहनते और उतारते समय देखे जानेकी इच्छाका मूल सीधे इन्हीं बाल्यकालीन अनुभवोंमें देखा जा सकता है। विकृतचित्त लोगोंमें एक ऐसा वर्ग है जिनमें यही बालोचित इच्छा बढ़कर एक विवशता बन गयी है। ये ही लोग 'प्रदर्शन-कामी' कहलाते हैं।

बचपनकी यह अवस्था, जब कि नङ्गे रहनेमें शर्म नहीं होती, हमारे लिये स्वर्ग है। इसके बाद वह समय आता है जब कि हममें शर्म और भयका आविर्भाव होता है और काम-व्यापार तथा सांस्कृतिक विकासका आरम्भ होता है, और सामाजिक आदर्शोंके कारण हम इस स्वर्गसे पतित हो जाते हैं, किन्तु हमारे अव्यक्त चित्तमें बचपनके इस स्वर्गकी कामना अब भी (बड़े होने पर भी) बनी ही रहती है और स्वप्न हमें हर रात इस स्वर्गमें पहुँचा सकता है। जाग्रदवस्थामें भी बचपनके भावों पर हमारा प्रत्यावर्तन लक्षित होता है। आधुनिक वस्त्र-निर्माणकी सारी कला इसी बातमें है कि किस प्रकार स्त्री-शरीरके प्रदर्शनका कोई नया तरीका ढूढ़ निकाला जाय, जिसका अर्थ यह होता है कि किस प्रकार स्त्रीके उन अङ्गों की ओर ध्यान आकर्षित किया जाय जो पुरुषके लिए आकर्षक होते हैं। सामाजिक अवसरों पर बहुत ही सम्भ्रान्त महिलाओं-की पोशाक भी विशेषरूपसे प्रदर्शनकारी होती है। वास्तवमें अत्यन्त आरम्भिक बचपन अर्थात् चार वर्ष तककी अवस्थाके सभी अनुभव बिना किसी अन्य कारणकी सहायताके स्वभावतः अपनी आवृत्ति चाहते हैं, चाहे उनका विषय कुछ भी हो। और इस आवृत्तिकी इच्छा भी अन्य इच्छाओंकी भाँति स्वप्नका स्वाभाविक प्रेरक है। अतएव नग्नताके स्वप्न प्रदर्शनकामके स्वप्न हैं।

स्वयं स्वप्नद्रष्टाका व्यक्तित्व जो कि बचपनके रूपमें नहीं, वरन् अपने वर्तमान रूपमें दिखाई देता है, और अल्पवस्त्र जो बादकी नाना स्मृतियोंके नीचे गड़ जाने और दमनके कारण अस्पष्ट दिखाई देता है—यही दोनों बातें प्रदर्शन-स्वप्नका केन्द्र-बिन्दु हैं। इनके बाद वे व्यक्ति आते हैं जिनके सामने स्वप्न-

द्रष्टा लज्जित होता है। ऐसे किसी स्वप्नका उदाहरण नहीं मिला है जिसमें बचपनके प्रदर्शनोंके वास्तविक द्रष्टा दिखाई देते हों क्योंकि स्वप्न कभी भी शुद्ध स्मरण मात्र नहीं होता। विचित्र बात यही है कि जो बचपनमें हमारी कामैषणाके आलम्बन होते हैं वे स्वप्नमें फिर कभी नहीं आते। किन्तु स्वप्नमें उस अकेले घनिष्ट व्यक्तिके स्थान पर, जिसके लिये बचपनमें हमारा प्रदर्शन होता था, ठीक उससे उलटी चीज आती है, यानी "अनेक अपरिचित व्यक्ति" जो कि इस प्रदर्शन पर ध्यान भी नहीं देते। "अनेक अपरिचित व्यक्ति" अन्य स्वप्नों में भी इसी इच्छा-विरुद्ध रूपमें आते हैं और ऐसे स्थानोंमें वे सदा 'एक रहस्य'-का संकेत करते हैं। स्पष्ट है कि इस विरुद्ध–इच्छाका कारण दमन है और दमनके ही कारण स्वप्नमें 'परीशानी'का अनुभव भी होता है, क्योंकि जिस दृश्यको उसने बहिष्कृत कर दिया है वह फिर भी चेतनामें किसी न किसी रूपमें प्रविष्ट हो गया है। यह परीशानी तभी बच सकती थी जब कि इस दृश्यका पुनरुज्जीवन न होता। इच्छाओंका यह द्वन्द्व ही स्वप्न-में 'गतिरोध'के रूपमें व्यक्त होता है, और हम भाग कर छिपना चाहते हुए भी उस स्थानसे हट नहीं सकते। बात यह है कि हमारी अव्यक्त इच्छा प्रदर्शनको जारी रखना चाहती है, किन्तु दमन उसे रोक देना चाहता है। इसीलिए परीशानी पैदा होती है जो कि स्वप्नका वास्तविक अभिप्राय नहीं है।

"यदि स्वप्नमें मनुष्य अपने आपको मलमूत्रसे लिपटा हुआ, पीड़ित या भयभीत देखे अथवा दिगम्बर वेष (नङ्गा) या सिरके बालोंको गिरते हुए देखे, तो वह स्वप्न भी मिथ्या होता है।"—(भागवत स्वप्नाध्याय।)

दूसरा समानार्थक सामान्य स्वप्न पिता-माता, भाई-बहिन,

बच्चों तथा एतत्स्थानीय अन्य प्रियजनों या सम्बन्धियोंकी मृत्युका स्वप्न है। इसके भी दो भेद हैं। एक तो वह जिसमें प्रिय सम्बन्धियोंकी मृत्युके साथ दुःखका उदय नहीं होता और दूसरा वह जिसमें स्वप्नद्रष्टाको मृत्युके कारण गहरे शोककी अनुभूति होती है, यहाँ तक कि नींदमें आँसू गिरने लगते हैं। दूसरे प्रकारका स्वप्न ही सामान्य है। पहले प्रकारके स्वप्न वस्तुतः कुटुम्बियोंकी मृत्युके स्वप्न होते ही नहीं। उनका मुख्य तात्पर्य कुछ और ही होता है। स्वजनोंकी मृत्यु किसी और इच्छाकी पूर्त्तिको व्यक्त करनेके लिए अवसर मात्र देती है और इसीलिए इन स्वप्नोंमें शोकका उद्भव नहीं होता, क्योंकि स्वप्नका आवेग उसकी अव्यक्त सामग्री अर्थात् उन विचारोंके अनुसार होता है जो उसकी तहमें हैं न कि उसकी व्यक्त सामग्री अर्थात् उस रूपके अनुसार जो उसे दमनके प्रभाव और स्वप्नकी विशिष्ट कार्यप्रणालीसे प्राप्त हुआ है। और स्वप्नके प्रत्ययांशकी जो रूपविकृति होती है, आवेग उससे मुक्त रहता है। इसी कारण यद्यपि व्यक्त रूपसे इन स्वप्नोंमें बन्धु-बान्धवोंकी मृत्यु ही प्रमुख दिखाई देती है, किन्तु उसके अनुकूल उद्वेग अर्थात् शोकका अविर्भाव नहीं होता, क्योंकि यह मृत्यु स्वप्नके मौलिक विचारोंका मुख्य विषय नहीं है, बल्कि उन्हें व्यक्त करनेका साधन मात्र है। दूसरे प्रकारके स्वप्नोंमें मृत्यु ही स्वप्नके विचारोंका मुख्य विषय होती है। इसलिए उनमें उस मृत्युके अनुकूल भावोंका उदय होता है, यद्यपि अकसर इस भावके साथ साथ मनके द्वन्द्वात्मक स्वरूपके अनुसार उसका ठीक प्रतिकूल भाव अर्थात् स्वजनोंकी मृत्यु पर शोकके साथ-साथ सुख भी मिला हुआ रहता है, बल्कि यह सुख ही अकेला अव्यक्त चित्तका मूल

भाव होता है, दुःख तो व्यक्त चित्त या दमनसे उत्पन्न होता है।

यह प्रिय बन्धुओंकी मृत्युमें अव्यक्त रूपसे सन्तोषलाभ की बात पहले तो अजीब-सी मालूम होती है, किन्तु जरा विचार करने पर वह इतनी अस्वाभाविक नहीं रह जाती। यह तो स्पष्ट ही है कि प्रियजनोंसे हमारा सम्बन्ध शुद्ध माधुर्य-मय ही नहीं होता। उसमें कटुताके लिए काफी गुञ्जाइश होती है। जिस प्रकार हमारे निकटतम सम्बन्धी हमारे राग-के प्रथम आलम्बन होते हैं, उसी प्रकार हमारे द्वेषके भी प्रथम आलम्बन वे ही होते हैं। माता पिता आदि गुरुजनोंका प्रेम हमारी सब इच्छाओंकी तात्कालिक पूर्त्ति तो नहीं ही कर पाता, कौटुम्बिक जीवनके और तकाजे उसकी शक्ति और समयको बाँट लेते हैं। अतएव वह बच्चोंको वास्तविकता और दूसरोंका लिहाज करने, अपनी अनेक इच्छाओं पर संयम प्राप्त करने, आत्मनिर्भर होने और जीवन संघर्षके तकाज़ोंको पूरा करनेके लिए योग्य बननेकी शिक्षा भी देता है। यह शिक्षा हमारे लिए आसान नहीं होती, न हमें सर्वथा प्रिय ही होती है। यह समझ कि मातापिता हमें यह शिक्षा प्रेमवश और हमारे लाभके लिए ही देते हैं, बड़े होने पर आती है। इस शिक्षाको प्राप्त करनेके सिलसिलेमें हमें गुरुजनोंके कटु अनुशासनका पालन करना पड़ता है। हम इस अनुशासन-को बड़ी ही कटुतासे बर्दाश्त करते हैं। ऐसी स्थितिमें बच्चे-के मनमें इस भावका उदय होना अस्वाभाविक नहीं है कि यदि ये शासक न होते तो कितना अच्छा होता और बच्चेके लिए मृत्युका अर्थ 'अनुपस्थिति'से अधिक और कुछ नहीं है। अपने दादा या कुटुम्बके अन्य किसी व्यक्तिकी मृत्युका प्रायः

उसे प्रत्यक्ष या सुना हुआ ज्ञान भी प्राप्त होता है। इस मृत्युके स्वरूपका उसे यही प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि मृत व्यक्ति सदा अनुपस्थित रहते हैं। माता-पिताकी मृत्युसे किन किन बातोंसे वञ्चित हो जाना पड़ेगा, उसका जीवन और उसकी इच्छाओंकी पूर्त्ति कहाँ तक उनपर निर्भर करती है, मृत्युका वास्तविक अर्थ क्या है, वस्तुतः वह क्या चाह रहा है, इन सब बातोंका उसे ज्ञान नहीं रहता। इस स्वार्थमय इच्छाकी भीषणता और जघन्यताका ज्ञान तो बुद्धि और सामाजिक संस्कारके विकासका फल है। बालककी अनेक इच्छाएँ अनुभव और सामाजिक शिक्षाके प्रकाशमें परिष्कृत और पारस्परिक संघर्षसे संयत रूपमें व्यवस्थित नहीं होतीं। वे अपने शुद्ध नैसर्गिक रूपमें पूर्णतः स्वार्थमय होती हैं और बिना दूसरोंके सुख-दुःखका विचार किये हुए सभी अलग-अलग अपनी तृप्ति पूर्ण रूपसे और तत्काल चाहती हैं। डाक्टर भगवान् दासने अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'सायंस ऑव इमोशन्स' (भाव-विज्ञान) में यह सिद्ध किया है कि किसीके द्वारा अपनी किसी इच्छाकी पूर्तिमें बाधा पड़नेसे उस व्यक्तिके प्रति स्वभावतः उत्पन्न होने वाले क्रोधके भावका मूलस्वरूप यही है कि 'उस व्यक्तिका अस्तित्व न रहे'। इच्छाओंका यह शुद्ध रूप बचपनमें ही देखा जा सकता है। बादको सामाजिक शिक्षासे इनका रूप बहुत कुछ संशोधित और परिमार्जित हो जाता है और इनके असामाजिक तथा अनुपयोगी अंशोंका दमन हो जाता है। इस स्थितिमें ये भाव अपनी अन्तिम सीमा तक नहीं जाते और उनका रूप सङ्कुचित हो जाता है। प्रतियोगीके अनस्तित्वकी इच्छा उसके द्वाराकी हुई क्षतिकी पूर्ति या प्रतिकारकी इच्छाके रूपमें अथवा उपेक्षा या मानके रूपमें ही रह

जाती है। किन्तु इनका दमित अंश या रूप यद्यपि तिरोहित और अव्यक्त हो जाता है, फिर भी उसका सर्वथा उच्छेद नहीं होता। दमनसे निर्बल होकर वह प्रसुप्त संस्कारके रूपमें अव्यक्त चित्तकी तहमें पड़ा रहता है और ऐसी अवस्थाओंमें, जबकि दमनका जोर कम होता है और मन अपने विकासकी प्रारम्भिक स्थितिमें रहता है, किसी समान भावसे शक्ति पाकर वह पुनः उद्बुद्ध हो सकता है। स्वप्न एक ऐसी ही अवस्था है जिसमें दमन शिथिल पड़ जाता है और हमारा मन अपने विकास क्रमकी प्रारम्भिक मञ्जिलों पर प्रत्यावर्तित होकर बचपनकी स्थितिमें होता है। यही कारण है कि स्वप्न बिल्कुल ही आत्मनिष्ठ होता है। यदि कोई स्थिति स्वप्नद्रष्टाके स्वार्थके अनुकूल होती है तो वही उसके स्वप्नकी व्याख्याका आधार बनती है, चाहे वह हमारी व्यक्त चेतना और प्रियजनोंके प्रति कर्त्तव्य भावनाके कितनी भी प्रतिकूल क्यों न हो। क्योंकि स्वप्न हमेशा हमारी बिल्कुल ही निजी आन्तरिक भावनाओंके अन्तर्द्वन्द्वको व्यक्त करता है।

बचपनके बादकी पारस्परिक कटुताके अवसर भी प्रियजनोंके प्रसुप्त द्वेषको शक्ति प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त जाग्रत् जीवनमें उन्हीं प्रियजनोंके जीवनकी चिन्ताकी आड़में भी अकसर दबी हुई द्वेषमूलक इच्छाएँ दमनको धोखा देकर उठ खड़ी होनेका अवसर पा जाती हैं।

किन्तु यह सब तो माता पिता या एतत्स्थानीय गुरुजनोंके सम्बन्धमें अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है जिनसे हमें अनुशासन प्राप्त होता है। यह भी समझा जा सकता है कि हमसे बड़े भाई या बहिन भी अकसर हम पर हुकूमत करते हैं, किन्तु क्या छोटे भाई-बहिन भी हमारे द्वेषके आलम्बन हो

सकते हैं ? यहाँ पर हमें एक ऐसे कारण पर ध्यान देना होगा जो गुरुजनोंके लिए भी उपयुक्त है किन्तु वहाँ अन्य कारणों-के साथ मिश्रित हो जानेके कारण स्पष्ट नहीं होता। यह कारण वह पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा है जो प्रियजनोंका प्यार पाने-के लिए हममें होती है। माता पिताका प्यार पानेके लिए भाई-बहिनोंमें बड़ी प्रतियोगिता होती है। बड़ा बच्चा जब माता पिताके प्यारका एकाधिकारी रहता है, उस समय नये बच्चे-के आगमनसे स्वभावतः वह अपने स्थानसे पदच्युत हो जाता है। इसका कारण वह प्रत्यक्ष ही नये बच्चेको देखता है, किन्तु साथ ही माँ बाप भी उसे अधिक प्यार देनेके लिए दोषी होते हैं। अगर नया बच्चा कुछ दिनोंके लिए घरसे कहीं अन्यत्र चला जाता है या मर जाता है तो माँ बापका प्यार फिर बड़े बच्चे पर बरसने लगता है, इससे यह बात और भी पुष्ट हो जाती है कि छोटा बच्चा ही उसके मार्गका कण्टक है। और उसके लौटने पर या उसकी मृत्युके बाद दूसरा बच्चा पैदा होने पर पहला बच्चा स्वभावतः यह चाहता है कि दूसरा बच्चा पहले ही की भाँति गायब हो जाय और उसे पुनः माता पिताका वैसा ही प्रेम प्राप्त हो जैसा दूसरे बच्चेकी अनुपस्थिति-के अर्सेमें उसे प्राप्त था। इसी प्रकार माँका प्यार पानेमें पिता और पिताका प्यार पानेमें माता भी बाधक होती है। क्यों कि बच्चा निसर्गतः इनका कुल प्यार, सेवा और ध्यान अपने ही लिए चाहता है किन्तु माँ-बापको उसका समय काट कर कुछ न कुछ फिक्र तो एक दूसरेकी करनी ही पड़ती है। वे एक दूसरेको प्यार भी करते हैं। अतएव इस कारण भी वे बच्चेके द्वेषके पात्र होते हैं।

एक और चीज़ इस प्रेम और द्वेषको प्रभावित करती है।

यह है माँ बापकी अपनी सन्तानके प्रेममें इतर जातीय अभिरुचि। हमारे विकसित जीवनमें यह कामज इतर जातीय चुनाव इतना व्यापक प्रभाव रखता है कि यह हमारे सारे प्रेम-जीवनके दृष्टिकोणका अविच्छिन्न अङ्ग बन गया है। सामान्यतः स्त्रीका स्त्रीके मुकाबिलेमें पुरुषके प्रति और पुरुषका पुरुषकी तुलनामें स्त्रीके प्रति हमेशा ही अधिक आकर्षण होता है। इस इतर जातीय आकर्षणके कारण माताका पुत्रके प्रति और पिताका पुत्रीके प्रति अधिक स्नेह होता है। इसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया बच्चों पर यह होती है कि लड़की पिताको और लड़का माँको अधिक प्यार करने लगता है। और इस प्रकार सन्तानकी इतर जातीय रुचि विकसित होती है। 'उत्पन्न होती है' न कहकर 'विकसित होती है' हम इसलिए कह रहे हैं कि इतर जातीय काम विकास-क्रम में मनुष्यकी उत्पत्तिके बहुत पहलेसे चला आ रहा है। मनुष्यसे बहुत नीचेकी योनियोंमें ही नर-मादाका विभाजन हो चुका था। कामप्रवृत्तिका इस प्रकार अनेक जन्मसन्सिद्ध रूप मनुष्यको जन्मना प्राप्त होता है, यह तो बिल्कुल ही स्वाभाविक प्रतीत होता है। ऐसी जातिगत प्रवृत्तियाँ बचपनमें अन्य प्रवृत्तियोंसे अलग होकर स्पष्ट रूपसे तो नहीं दिखाई देतीं, किन्तु इनका बीज तो विद्यमान रहता ही है और अनुकूल परिस्थितिमें पनपने लगता है। इस प्रकार माँ बापका इतरजातीय विवेक बच्चोंमें भी इस प्रवृत्तिको प्रतिक्रियास्वरूप अङ्कुरित कर देता है। और लड़केका माँके प्रति तथा लड़कीका बापके प्रति अधिक प्रेम हो जाता है। इसका एक आवश्यक परिणाम यह होता है कि लड़केकी पितासे माताके प्रेमके लिए और लड़कीकी मातासे पिताके प्रेमके लिए

प्रतियोगिता हो जाती है क्योंकि प्रेमके साफियोंमें प्रतियोगिता प्रेम का एक अविच्छेद्य पक्ष है। जब बच्चोंमें माता-पितामें-से किसी एकके प्रति विशेष प्रेम होगा, तो दूसरेसे उसके प्रेम-को बाँटनेके कारण विशेष ईर्ष्या होगी। यह ईर्ष्या भावी जीवन-के एक और अनुभवसे और भी पुष्ट होती है। वह यह कि माँ-का लड़कीसे और बापका लड़केसे अधिक शारीरिक एवं मानसिक साम्य होता है। अतएव लड़कीकी चारित्रिक शिक्षा-की जिम्मेदारी स्वभावतः माँ पर और लड़केकी बाप पर ही अधिक होती है। और इतर जातीयताके कारण लड़कीको पितासे और लड़केको मातासे अपने आन्तरिक जीवनमें सङ्कोच होता है। अतएव इस चारित्रिक शिक्षाके सिलसिले-में उत्पन्न होने वाली कटुता लड़कीकी माँके प्रति और लड़के-की बापके प्रति अधिक होती है। यह बात भी सन्तानकी स्वजातीय ईर्ष्याको पुष्ट करती है।

यहाँ पर इस बात पर भी ध्यान देना चाहिये कि बच्चेकी बीजरूपसे प्रसुप्त इतर जातीय रतिको पहले पहल माँ-बाप ही उद्बुद्ध करते हैं। अतएव वे ही उसके प्रथम आलम्बन होते हैं और बादके कामज चुनावमें नमूनेका काम करते हैं। किन्तु यह प्रारम्भिक चुनाव परवर्ती जीवनके सारे चुनावको प्रभावित ही नहीं करता, स्वयं भी उससे प्रभावित होता है। यद्यपि प्रारम्भिक चुनाव मूलतः कामज ही है, किन्तु वह शुरू-में ही एकदमसे अपने पूर्ण रूपमें प्रस्फुटित नहीं हो जाता। प्रजनन सम्बन्धी शारीरिक संस्थानकी अपरिपक्वताके कारण उसका शारीरिक अर्थात् रति अंश आरम्भमें व्यक्त नहीं हो सकता। केवल शुद्ध मानसिक अर्थात् 'प्रीति' अंश ही व्यक्त होता है और इसका माता पिताके प्रति व्यक्त होना समाज

और संस्कृतिकी दृष्टिमें सर्वथा निर्दोष है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि प्रजनन-संस्थानके विकसित हो जाने पर इस प्रीति-का रति अंश भी स्वभावतः विकसित होता है और यह रति उस प्रीतिका ही विकसित रूप या अर्द्धांश होनेके कारण उससे अलग नहीं रक्खी जा सकती। अर्थात् बचपनमें लड़के लड़कीकी क्रमशः माता-पिताके प्रति जो प्रीति होती है, प्रज-ननेन्द्रियोंकी प्रौढ़ता और प्रजनन क्रियाके अनुभवके बाद स्वभावतः अपने पूर्ण रूपको अर्थात् रतिभावको प्राप्त होती है। किन्तु जहाँ पहले वह आहारैषणाजन्य प्रीतिसे अविविक्त रूपमें आकर निर्दोष थी, वहाँ अब उसके रति अंश पर समाज और सभ्यता अनेक प्रकारके प्रतिबन्ध लगाते हैं। एक तो विकसित होती हुई जटिल सभ्यतामें जीवन-संघर्षमें ठहरने और कामयाब होनेके लिए शिक्षाकी बढ़ती हुई जरूरतों-को पूरा करनेके लिए प्रजननकी प्रवृत्तिके विकासको प्रजननेन्द्रियोंके विकसित हो जानेके बाद भी काफी समय तक रोक रक्खा जाता है और दूसरे इस प्रवृत्तिके आलम्बनोंके चुनावमें सामाजिक आदर्शोंका खयाल रखना पड़ता है। सहज रूपसे मनमाने और निकटतम आलम्बनों-को ग्रहण कर लेनेमें समाज अनेक बन्धन लगाता है। निकटतम प्रारम्भिक आलम्बनोंका तो वह सर्वथा निषेध करता आया है, क्योंकि सगोत्र विवाहसे अन्य गोत्रोंके साथ सम्बन्ध स्थापित होनेका एक बड़ा भारी साधन छिन जाता है और सभ्यता तथा सामाजिक सङ्गटनकी क्षेत्रवृद्धिमें एक बड़ी भारी बाधा उप-स्थित होती है। अतएव रतिभावके उत्पन्न होनेके पहले ही सामाजिक आदर्श बच्चेके चित्तमें स्थापित कर दिये जाते हैं और उसके रति भावका रुख इस प्रकार फेर दिया जाता है कि

वह उसकी तृप्तिके लिए अपने कुटुम्बसे बाहर ही आलम्बन देखता है। इस प्रकार माता पिता तथा बहिन भाई आदिके प्रति रतिभावका दमन हो जाता है। किन्तु जैसा कि दमनके सम्बन्धमें हम ऊपर देख चुके हैं, यह दमित भाव अव्यक्त चित्तमें सञ्चित रहता है और यद्यपि वह स्वयं चेतनामें नहीं आता, किन्तु चेतनाकी व्यक्त धाराको अन्दरसे बराबर प्रभावित करता रहता है। इसके अतिरिक्त स्वप्नादिमें अर्थात् दमनके शैथिल्य और मनके ह्रासकी अवस्थाओंमें वह जरा-सा अपना रूप बदलकर दमनके प्रहरीको आसानीसे धोखा दे लेता है और इस प्रकार चेतनामें भी आ उपस्थित होता है। उसके निद्राकालमें चेतनाक्षेत्रमें प्रवेशसे कोई वास्तविक सामाजिक हानि भी होनेकी सम्भावना नहीं होती, क्योंकि निद्राकालमें मनके कर्मेन्द्रियोंमें प्रवेशका मार्ग अवरुद्ध रहता है—

मनो वहानां पूर्णत्वाद्दोषैरति बलैस्त्रिभिः।
स्रोत सां दारुणान्स्वप्नान्कालेपश्यत्यदारुणान्।

अतएव यह भाव कल्पना तक ही सीमित रहता है। कार्यरूपमें परिणत नहीं हो सकता। यही कारण है कि अगम्यगमन और पितृमृत्युके स्वप्न स्वाभाविक और निर्दोष समझे गये हैं।

आरोहणं गोवृष कुंजराणां प्रासाद शैलाग्रवनस्पतीनाम्।
विष्ठानुलेपो रुदितं मृतं च स्वप्नेष्व गम्यागमनं प्रशस्तम्॥
—(आचार मयूख)

अगम्यागमनके स्वप्नोंको प्रशस्त कहनेकी भी सार्थकता है। फ्रायडका यह अनुभव है कि जो व्यक्ति अपनी माताओंका प्यार पानेमें सफल होते हैं वे जीवनमें वह आत्मविश्वास

और दृढ़ आशावादिता रखते हैं जिससे अकसर वीरताका भान होता है और जो शक्तिके प्रयोगसे वास्तविक सफलता प्राप्त करती है। अतएव इन स्वप्नोंकी प्राचीन व्याख्यामें शुद्ध मनोवैज्ञानिक ज्ञानका परिचय मिलता है। क्योंकि ये स्वप्न इस बातकी सूचना देते हैं कि स्वप्नद्रष्टा बचपनमें माताका प्यार पानेमें समर्थ हो चुका है और उसका स्वप्न किसी वर्त-मान समस्याके प्रसङ्गमें बचपनकी स्थितिकी आवृत्ति करके भावी सफलतामें उसका विश्वास प्रकट करता है। क्योंकि बचपनकी यह स्थिति सारे जीवनके आत्मविश्वासका प्रतीक और चरित्रका आधार बन गयी है।

यहां पर यह शङ्का उठती है कि दमित भाव स्वप्नमें सदा कुछ न कुछ रूप-परिवर्तनके साथ आते हैं और प्रस्तुत स्वप्न तो अकसर बिल्कुल अपने नग्न रूपमें दिखाई देते हैं। फिर प्रहरी इनसे किस प्रकार धोखा खा जाता है? इसके दो कारण हैं। एक तो इन भावोंका दमन इतना दीर्घकालीन, ऐकान्तिक और व्यापक होता है कि उन्हें नग्नरूपमें देखने पर भी हमें यह खयाल ही नहीं होता कि ये कभी भी हमारे मनके भाव हो सकते हैं और प्रहरीके सतर्क होनेकी आवश्यकता है। ये हमसे इतनी दूर और असम्भव प्रतीत होते हैं कि प्रहरी उनके लिये बिल्कुल ही तैयार नहीं रहता। विस्मित और अवाक् रह जाता है और इस प्रकार ये उसपर अचानक आक्रमण करके विजय पा लेते हैं। इसी कारण ऐसे स्वप्न सदा भयानक स्वप्न-के रूपमें आते हैं। इनके साथ हमेशा अपनी पाप-भावनाकी ग्लानि मिली रहती है जो कि सामाजिक कर्तव्य-भावनाके प्रहरीके आहत और पराजित होनेका आर्तनाद है। यह भी याद रखना चाहिये कि ये स्वप्न नग्नरूपकी अपेक्षा प्रच्छन्न-

रूपमें बहुत अधिक देखे जाते हैं। पितृमृत्युके स्वप्नोंके लिये तो, जैसा कि ऊपर देखा जा चुका है, पिता माताके कुशलकी चिन्ताके अवसर एक ऐसा बहाना दे देते हैं जिससे चिन्ताकी आड़में प्रसन्नता छिप जाती है और इस प्रकार यद्यपि व्यक्त स्वप्नमें प्रत्ययात्मक सामग्रीका रूप परिवर्तित नहीं होता, किन्तु भाव विनियोगके द्वारा प्रहरीको धोखा हो जाता है और ऐसी अवस्थामें ही ये स्वप्न अपने नग्न रूपमें दिखाई देते हैं।

हम यह देख चुके हैं कि माता-पिता आदि निकटतम स्वजन ही हमारे द्वेष और प्रेमके प्रथम आलम्बन होते हैं। अतएव ये ही हमारे भावी जीवन के सभी द्वेष और प्रेमके लिये नमूने या आदर्शका काम करते हैं। और उनके प्रति प्रेम एवं द्वेषके भाव स्वयं दमित होकर अव्यक्त हो जाने पर भी हमारी व्यक्त चेतनाको प्रभावित करते रहते हैं तथा दमनके शैथिल्य और मानसिक ह्रासकी अवस्थाओंमें समान भावोंसे शक्ति पाकर पुनः उद्बुद्ध हो सकते हैं। यहां पर समान भावोंसे तात्पर्य सभी प्रकारके प्रेम और द्वेषसे है जिसके लिये ये प्रारम्भिक भाव ही अनुकरणीय होते हैं। अतएव पितृद्वेष तथा अगम्य गमनके स्वप्न देखनेके लिये यह जरूरी नहीं है कि प्रौढ़ावस्थामें माता-पिताके प्रति वस्तुतः रति और द्वेषका भाव हो। यदि हम अपने वर्तमान जीवन में किसी भी प्रेम या द्वेषको व्यक्त करनेका अवसर नहीं पाते तो हमारी यह स्थिति स्वप्नकी आदिम भाषामें बचपनके उन्हीं अनुभवोंके रूपमें व्यक्त होगी जो हमारे लिये इन भावोंके प्रतीक हो गये हैं।

अब हमें स्वजनोंकी मृत्युके पहले प्रकारके स्वप्नका एक उदाहरण देख लेना चाहिये। इस प्रकारके स्वप्नका, जो

वस्तुतः स्वकुटुम्बियोंकी मृत्युका स्वप्न नहीं होता वल्कि उसका वास्तविक तात्पर्य कुछ और ही होता है और इसलिये उसमें शोकका सञ्चार नहीं होता, फ्रायडने एक उदाहरण इस प्रकार दिया है :—

एक लड़कीने कहा कि "मेरी वहनके दो लड़कोंमेंसे अव तक छोटा ही लड़का जीवित है। बड़ा लड़का जिस समय मरा उस समय मैं अपनी वहनके घर ही रहती थी। उस पर मेरा बड़ा स्नेह था। मैंने ही उसे पाला-पोसा था। दूसरे लड़केको भी मैं चाहती हूँ, किन्तु उतना नहीं। एक दिन मैंने स्वप्नमें देखा कि 'छोटा लड़का मेरे सामने मरा हुआ पड़ा है। वह अपने छोटे जनाज़ेमें पड़ा था और उसके हाथ बँधे थे ; मोमबत्तियाँ चारों ओर जल रही थीं ; संक्षेपमें सव कुछ वैसाही था जैसा बड़े लड़केकी मृत्युके समय था जिससे मुझे बड़ा गहरा आघात पहुंचा था।"

इस लड़कीके माता पिता वचपनमें ही मर गये थे और उसका पालन पोषण बड़ी वहिनके यहाँ ही हुआ था। यहाँ पर आने जाने वाले मित्रों और मुलाकातियोंमेंसे एक प्रोफेसरने इस लड़कीके हृदय पर स्थायी प्रभाव डाला था। एक समय यह आशा होने लगी थी कि यह अव्यक्त सम्वन्ध विवाहके रूपमें परिणत होगा, किन्तु उसकी वहनने यह सुखद सम्वन्ध न होने दिया। इसके वाद प्रोफेसरने उस घरमें आना जाना वन्द-सा कर दिया। लड़की इस समय अपनी वहनके बड़े लड़केको वहुत प्यार करने लगी थी। उसकी मृत्युके कुछ ही समय वाद वह आत्मनिर्भर हो गई और अपनी वहनसे अलग रहने लगी। किन्तु उस प्रोफेसरके प्रेमसे वह अपनेको मुक्त नहीं कर सकी। उसका स्वाभिमान उससे मिलने-जुलनेमें वाधक

था किन्तु उसके सार्वजनिक व्याख्यानोंमें वह निरन्तर जाया करती थी और दूरसे उसे देखनेके अन्य अवसर भी वह कभी नहीं खोती थी। स्वप्न देखनेके दिन ही वह प्रोफेसर एक सङ्गीत-प्रदर्शनमें जाने वाला था और इसलिये वह भी वहाँ जाने वाली थी। यह पूछने पर कि क्या उसकी बहनके बड़े बच्चेकी मृत्युके बादकी कोई बात उसे याद आती है उसने फौरन जवाब दिया कि 'अवश्य, उस समय प्रोफेसर बहुत दिनोंके बाद वहाँ आया था और मैंने उसे उस बच्चेके जनाज़े-के पास एक बार फिर देखा था'। इन सब बातोंके प्रकाशमें स्वप्नकी व्याख्या यह हुई कि यदि उस लड़कीकी बहनका दूसरा बच्चा भी मर जाय तो फिर यही बात होगी। वह अपनी बहनके घर जायगी और प्रोफेसर भी वहाँ मातम पुरसीके लिये ज़रूर आयेगा। इस प्रकार वह फिर उसे उसी स्थितिमें देखेगी जिसमें उसने उसे पहले बच्चेकी मृत्युके बाद देखा था। स्वप्नका अर्थ इतना ही है कि वह लड़की प्रोफेसरको फिर देखनेकी इच्छा करती थी जिसके विरुद्ध वह अपने मनमें लड़ रही थी। उसका स्वप्न उत्सुकताका स्वप्न था और कुछ ही घंटे बाद होने वाली मुलाकातका पूर्वाभास-मात्र देता था। क्योंकि वह संगीत-प्रदर्शनका टिकट ले चुकी थी और उसमें जानेसे पहले ही उसने स्वप्न देखा था। अपनी इच्छाका वास्तविक रूप छिपानेके लिये ही उसके स्वप्नने एक ऐसी शोककी स्थिति चुनी थी जिसमें प्रकटरूपसे प्रेमका ख्याल ही नहीं हो सकता। यह बात नहीं थी कि वह अपनी बहनके छोटे बच्चेकी मृत्यु चाहती थी। यह मृत्यु तो स्वप्नकी आदिम और पूर्वानुभव पर आश्रित भाषामें उसे अपने प्रेमकी आंशिक तृप्तिका अवसर-मात्र देती थी। मृत्युके अवसर पर ही इस

प्रकारकी तृप्तिका अनुभव होनेके कारण दोनों अनुभवोंके साहचर्यानुबन्धसे उस प्रकारकी तृप्तिकी पुनरावृत्तिकी इच्छा स्वप्नकी आदिम और नैसर्गिक भाषामें मृत्युके दृश्यसे ही व्यक्त हो सकती है। केवल वास्तविक इच्छाकी पूर्तिका भाग दमनके कारण इस दृश्यसे निकाल दिया गया है। और जिस प्रकार कुछ अंशमें दमन स्वप्नमें काम करता है उसी प्रकार कुछ मात्रामें जाग्रति अर्थात् वास्तविकताका ख्याल भी रहता ही है। इसलिये उक्त स्वप्नमें बड़े बच्चेकी मृत्युकी पुनरावृत्ति नहीं होती क्योंकि वह हो चुकी थी और स्वप्न भावी इच्छापूर्त्तिका दिग्दर्शन करता है। एक और बात यह थी कि वह लड़की अपने बड़े भानजेको बड़ा प्यार करती थी और उसकी मृत्यु देखना उसके लिये बड़ा कटु अनुभव था। यद्यपि छोटे बच्चेको भी वह प्यार करती थी किन्तु उतना नहीं। अगर मृत्युका होना ज़रूरी ही है तो वह जहाँ तक कम कटु बनायी जा सके उतना अच्छा। और इस दृष्टिसे कितना अच्छा होता यदि बड़े बच्चेके स्थानमें छोटा बच्चा होता। इसी प्रकार स्वप्न अनेक स्रोतोंसे निर्दिष्ट होता है। इस प्रकार प्रस्तुत स्वप्नका यह अर्थ नहीं हुआ कि छोटे बच्चेकी मृत्यु हो जाय बल्कि उसका वास्तविक तात्पर्य केवल यह है कि पूर्वानुभूत मृत्युके समान ही, जब कि वह बहुत दिनोंके बाद मिला था, कोई अवसर बहुत दिनोंके वियोगके बाद प्रेमपात्रकी दर्शनेच्छाकी तृप्तिके लिये फिर मिले जिसमें उसी प्रकार अनायास ही कर्त्तव्यसे विवश होकर उसके सम्मुख आनेका अवसर मिले और दमन या स्वाभिमानको ठेस न लगे। इस इच्छाकी तृप्तिमें शोकका कोई कारण नहीं है, इसीलिये स्वप्नमें शोककी अनुभूति नहीं होती।

तीसरा समानार्थक स्वप्न परीक्षाका भयानक स्वप्न होता है। इसमें आदमी यह देखता है कि वह परीक्षा दे रहा है, वह अनुत्तीर्ण हो जायगा, उसे अपना काम दुहराना चाहिए, न जाने परीक्षामें क्या प्रश्न आ जाय इत्यादि। स्पष्ट है कि स्वप्नकी दृश्यात्मक भाषामें यह उन्हीं भावोंका द्योतक है जो परीक्षा देनेसे पहले उठा करते हैं। यह स्वप्न हम तभी देखते हैं जब हमें दूसरे दिन कोई ऐसा जिम्मेदारीका काम करना है जिसमें सफल होनेके सम्बन्धमें हम इसलिये सन्दिग्ध और भयभीत रहते हैं कि हमने अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं किया है और असफल होनेमें दण्डित या अपमानित होनेकी सम्भावना रहती है, अर्थात् जहाँ हम ज़िम्मेदारीका भार महसूस करते हैं। छोटी उम्रमें पाठशालाकी शिक्षा पाते समय माता-पिता, संरक्षकों या शिक्षकोंके दण्डका भय होता है; बादको हमारे कार्योंके दुष्परिणाम ही हमारे शिक्षक बन जाते हैं। किन्तु स्पष्ट है कि ऐसी स्थितियाँ शिक्षालयोंकी परीक्षा देनेके पहले भी जीवनमें आती हैं। अतएव, परीक्षा इनके लिये प्रारम्भिक उपमान नहीं है। बचपनमें हमारी शरारतोंके लिये माता-पिता द्वारा दिये गये दण्डके अनुभवकी स्मृतियाँ ही भावी जीवनमें हमारे कार्योंके कुफलके भयका आरम्भिक आधार होती हैं। यही स्मृतियाँ हमारे अध्ययन कालके सङ्कटस्वरूप कठिन परीक्षाओं-के समय उद्बुद्ध होकर परीक्षासे साहचर्यानुबन्ध स्थापित करती हैं और अपना आवेग परीक्षा पर विनियुक्त कर देती हैं जिससे परीक्षा ही भावी जीवनमें उनका उपमान बन जाती है। क्योंकि बचपनमें माता-पिताके भयकी स्थितियाँ प्रत्येक व्यक्तिके लिये भिन्न-भिन्न होती हैं। उस समयकी ऐसी कोई सामान्य स्थिति नहीं है जो दण्डकी प्राप्तिसे पहले उसके भयका प्रत्येक व्यक्ति-

के लिये इतना अच्छा मूर्त रूप उपस्थित करे और इस प्रकार सामान्य स्वप्नका आधार बन सके जितना कि परीक्षा होती है। इसलिये परीक्षाका अनुभव प्राप्त होनेके बाद बचपनकी ही स्थितियाँ परीक्षाका उन्नत रूप ग्रहण करती हैं। एक बात यह भी ध्यान देनेकी है कि हम उन्हीं परीक्षाओंका स्वप्न देखते हैं जिनमें हम कामयाब हो चुके हैं। जिन परीक्षाओंमें हम असफल रहे हैं उनके स्वप्न नहीं दिखाई देते। यह स्वप्नकी इच्छापूरक प्रवृत्तिका द्योतक है। स्वप्न हमें यह आश्वासन देना चाहता है कि 'जिस प्रकार तुम इस परीक्षाके समय व्यर्थ ही इतने चिन्तित और परेशान थे और अन्तमें उसमें सफल हुए, उसी प्रकार जीवनकी वर्तमान समस्या के मुकाबले भी तुम्हारी व्यग्रता व्यर्थ है और तुम उसी प्रकार इस बार भी सफल होगे'। इसलिये इन स्वप्नोंमें साथ ही यह भी विस्मय बना रहता है कि हम तो यह परीक्षा पास हो चुके हैं, हम तो वर्षों-से प्रोफेसरी, वकालत या डाक्टरी कर रहे हैं फिर हम क्यों इसमें बैठ रहे हैं और इतने परेशान हो रहे हैं।

परीक्षाके स्वप्नसे आवेगकी समानता रखने वाला एक दूसरा आश्वासनका भयानक स्वप्न रेलगाड़ी छूट जानेका स्वप्न है। यात्रा मृत्युका एक अत्यन्त साधारण और सहजप्राप्त प्रतीक है। अतएव यह स्वप्न मृत्युके भयसे बचनेका आश्वा-सन देता है। इसमें आदमी गाड़ीको पकड़नेके लिये जल्दीमें तैयारी करनेकी तमाम झंझट उठाता है, रास्तेमें उसे हर तरह-की बाधाएँ मिलती हैं और अन्तमें गाड़ी छूट जाती है। इन कार्यों-में जिस परेशानीका अनुभव होता है वह वस्तुतः मृत्युके भय की परेशानी है और स्वप्नका यही महत्वपूर्ण और निश्चित अर्थ सामान्य है,अन्यथा इसमें विभिन्न व्यक्तियोंके लिये अन्य

अनेक अर्थ हो सकते हैं। गाड़ीका छूट जाना इस बातका आश्वासन है कि परेशान होनेकी जरूरत नहीं है क्योंकि यात्रा (मृत्यु) न होगी। यह स्वप्न बचपनमें हमारे माता-पिताके हमें रोते छोड़कर चले जानेके अनुभवकी स्मृति पर आश्रित होता है। उनका चला जाना कभी मृत्युके कारण और कभी केवल यात्राके लिये होता था। किन्तु उस समय हम इन दोनोंमें भेद नहीं कर पाते थे। बादको रेलगाड़ीकी यात्रा इस प्रकारकी यात्राका प्रतीक इसलिये हो गई कि रेलगाड़ी अपनी भयानक गति के कारण बच्चे पर पहले पहल बड़ा आतङ्क उत्पन्न करती है।

अब हम दूसरे प्रकारके सामान्य स्वप्नोंके भी कुछ उदाहरणों पर विचार करेंगे जिनकी व्यक्त सामग्रीका आधार तो समान होता है किन्तु अर्थ सदा समान नहीं होता। अलग-अलग स्थितियोंमें इनकी अलग-अलग व्याख्या होती है।

सबसे पहले हम आकाशमें उड़ने और गिरने आदिके स्वप्नोंको लें जिनका आधार बचपनके उन गतिशील खेलोंकी स्मृतियाँ हैं जिनमें बच्चे बड़ोंके द्वारा ऊपर उछाले और झुलाते-झुलाते अकस्मात् निराधार छोड़ दिये जाते हैं। इस प्रकारकी गतिमें बच्चोंको एक अजीब भय मिश्रित आनन्द आता है। बादको नटोंके या सर्कसके खेल देखकर और स्वयं चर्खी या झूलेमें झूलकर ये बचपनकी सुप्त स्मृतियाँ पुनः जाग्रत् होती हैं। और ये गतियाँ नैतिक भयसे मिश्रित आनन्दकी उपमान बन जाती हैं। उड़नेके स्वप्न, जो कि प्रायः सुखद होते हैं, विभिन्न व्यक्तियोंमें कहीं महत्त्वाकांक्षाके, कहीं लम्बे होकर दूसरोंको देखनेके लिये गर्दन उठानेके बजाय दूसरोंको नीचे देखनेकी इच्छाके, कहीं मानव-सम्पर्कसे अस्पृश्य रहनेकी इच्छाके, कहीं पक्षीकी तरह स्वच्छन्द जीवन बितानेके और

स्त्रियोंमें चिड़िया या परी कहलानेकी इच्छा इत्यादि अनेक इच्छाओंके व्यञ्जक होते हैं। किन्तु पुरुषोंमें इस स्वप्नका प्रायः सामान्य अर्थ पक्षीकी तरह कामवासनाकी तृप्ति होता है। बहुत-से स्वप्नद्रष्टा अपनी उड़नेकी शक्तिका बड़ा अभिमान करते हैं।

नदीसमुद्रतरणं आकाश गमनं तथा।
भास्करोदयनं चैव प्रज्ज्वलन्तं हुताशनम्॥

× × ×

एवमादीनिसंदृष्ट्वा नरः सिद्धिमवाप्नुयात्॥

गिरनेके स्वप्नमें प्रायः भय प्रधान होता है। उपर्युक्त खेलोंके अतिरिक्त सोते समय चारपाईसे गिर जाने और उठाकर प्यार किये जानेकी स्मृतियाँ इस स्वप्नको आधार प्रदान करती हैं। स्त्रियोंमें यह स्वप्न सामान्य रूपसे नैतिक पतनका द्योतक होता है।

'रथ, गृह, पर्वत, वृक्ष, गौ, हाथी, घोड़े या गदहे परसे गिरना भी अशुभसूचक एवं विपत्तिकारक होता है।'— (भागवत, स्वप्नाध्याय)

अधोयो निपतत्युच्चाज्जलेऽग्नौ वा विलीयते

\+ + +

सस्वस्थोलभतेव्याधिं रोगीयात्येवपंचताम्
—(मार्कण्डेय)

कुछ ऐसे दृश्यों या स्थानोंके स्वप्न होते हैं जिनमें इस धारणाकी प्रधानता होती है कि 'यहाँ मैं पहले जरूर रहा हूँ।' यह स्थान सदा माताका गर्भ होता है। और किसी स्थानके बारेमें हम इतने विश्वासके साथ नहीं कह सकते कि हम यहाँ रहे हैं।

तङ्ग जगहोंसे गुजरने या पानीमें पड़े होनेके स्वप्न, जो

अकसर भयानक होते हैं, गर्भाधान, गर्भमें स्थिति और जन्म-सम्बन्धी कल्पनाओंके आधार पर आश्रित होते हैं। भयका पहला अनुभव मनुष्यको जन्म लेनेमें ही होता है। इसलिये जन्म जीवनके समस्त भयका प्रतिमान और स्रोत है। 'बचाने'के स्वप्न भी गर्भस्थितिके स्वप्नोंसे सम्बन्ध रखते हैं। स्त्रियोंके स्वप्नोंमें बचाने का, खासकर पानीसे बचानेका, अर्थ जन्म देना होता है। पुरुषोंमें यह अर्थ कुछ परिवर्तित हो जाता है। जन्मका लाक्षणिक अर्थ रोगमुक्ति ही ही होता है। गहरी बीमारीके बाद लोग कहते हैं कि 'हमारा दूसरा जन्म हुआ है'। इसीलिये पानीके स्वप्नों का सन्तान-प्रसव और रोगमुक्तिसे सम्बन्ध जोड़ा गया है।

समिद्धमग्निं विप्रांश्च निर्मलानि जलानि च।
पश्येत्कल्याणलाभाय व्याधेरपगमाय च॥
नदीनदसमुद्रांश्च क्षुभितान्कलुषोदकान्।
तरेत्कल्याणलाभाय व्याधेरपगमाय च॥
दर्पणामिषमाल्याप्तिस्तरणं च महाम्भसाम्।
द्रष्टुः स्वप्नेऽर्थलाभः स्याद्रोगमुक्तिश्च जायते॥

—(चरक)

और

मरणं वह्निलाभश्च वह्निदाहो गृहादिषु।
तथोदकानां तरणं तथा विषमलंघनम्॥
हस्तिनीवडवानां च गवां च प्रसवो गृहे।
आरोहणं गजेन्द्राणां रोदनं च तथा शुभम्॥

—(बृहद्यात्रा ग्रन्थमें वराहमिहिर)

उरगो वृश्चिको वापि जले ग्रसति यं नरम्।
विजयं चार्थसिद्धिं च पुत्रं तस्य विनिर्दिशेत्॥

—(आचारमयूख)

इनके अतिरिक्त इस प्रकारके और वहुतसे सामान्य स्वप्न होते हैं जिनकी व्यक्त सामग्री समान होती है, जैसे तङ्ग जगहोंसे गुजरने या कमरोंकी एक पूरी कतारमेंसे जानेके स्वप्न, रात्रिमें आने वाले चोरोंके स्वप्न, जङ्गली जानवरों (सांड़, घोड़ों) के द्वारा पीछा किये जाने या छुरे, खाँड़े और वर्छोंसे डराये जानेके स्वप्न। पिछले दो अर्थात् चोरों और जानवरों या हथियारों वाले स्वप्न भयानक स्वप्न होते हैं।

"यदि भैंसा, भालू, ऊँट, सूअर, गधा क्रुद्ध होकर स्वप्नमें किसी पर आक्रमण करते हुए दिखाई दे तो निश्चित रूपसे उस मनुष्य पर किसी रोग या विपत्तिका आक्रमण होगा।"

—(भागवत, स्वप्नाध्याय)

अभिद्रवन्ति यं स्वप्ने शृङ्गिणो दंष्ट्रिणोऽथवा।
वानरा वा वराहा वा तस्य राजकुलाद्भयम्॥

—(मार्कण्डेय)

चोरोंके भय तथा आक्रान्त होने या शस्त्राघात किये जानेके स्वप्नोंका उल्लेख भयानक स्वप्नके प्रकरणमें हो चुका है। रात्रिमें चोर-डाकुओं और भूतोंके भयका आधार वचपनके एक ही अनुभवकी स्मृति है। हमारी नींदके प्रथम वाधक हमारे माता-पिता ही हैं। मातायें वरावर विस्तरको गन्दा होनेसे वचानेके लिये वच्चेको उठाकर पेशाव पाखाना कराती हैं, या यह देखनेके लिये कि वह कैसे सो रहा है और उसके हाथ कैसे रखे हुए हैं, उसके ओढ़नेको हटाती हैं।

(९)

रोगभावि स्वप्न

यह तो हम देख चुके हैं कि वर्तमान शारीरिक प्रेरणाएँ भी तभी स्वप्न उत्पन्न कर सकती हैं जब वे मानसिक प्रेरणाओंको उत्पन्न करें, अन्यथा स्वप्न उनकी उपेक्षा करता है। अर्थात् निद्राकालमें बाह्य जगत् या शरीरके अन्दरसे आनेवाले शारीरिक प्रभाव उत्पन्न करने वाले सम्वेदन जबतक इतने प्रबल या इस प्रकारके न हों जिनसे निद्रामें बाधा उपस्थित हो, अर्थात् जिन कारणोंका निवारण शरीर या आत्मरक्षाके लिए तत्काल आवश्यक होनेके कारण ऐसा करनेके लिए तीव्र इच्छा उत्पन्न हो, तब तक वे स्वप्नके सफल प्रेरक नहीं बन सकते। अन्य ऐसे सम्वेदनोंकी निद्राकालमें उपेक्षा करना मनुष्यने निद्राकी आवश्यकतासे सीख लिया है। और स्वप्न यदि ऐसे सम्वेदनोंकी बिल्कुल उपेक्षा नहीं करता तो उन्हें परिवर्तित रूपमें ग्रहण करके अन्य पूर्वसञ्चित मानसिक प्रेरणाओंकी पूर्त्तिकी सहायक सामग्री बना लेता है जो निरुद्ध होनेके कारण निद्राके सीमित क्षेत्रमें ही व्यक्त होनेका अवसर पाती हैं जब कि अन्य साधारण इच्छाओंकी पूर्त्ति स्थगित रहती है। इस हालतमें शारीरिक सम्वेदनोंसे न तो स्वप्नका रूप निर्धारित होता है ओर न वे किसी प्रकार उसके प्रेरक कहे जासकते हैं। मूलतः या मुख्यतः पूवसञ्चित मानसिक प्रेरणाओं द्वारा प्रेरित स्वप्नके उन्हीं द्वारा

निर्धारित रूपमें वे तदनुकूल व्याख्याके साथ गृहीत होकर उपयुक्त हो जाते हैं। फार्सटरने लिखा है कि एक बार सोनेके पहले वे बहुत देर तक एक मित्रकी चिन्ताओंके बारेमें सोचते रहे जो कि सुश्रूषाके एक कठिन कार्यमें लगी हुई थी। रात्रिमें उन्हें भयानक सर्दी हो जानेके कारण हल्की-सी वात-पीड़ा हुई जो कि सोनेसे पहले महसूस नहीं हुई थी। यह पीड़ा उनके स्वप्नोंमें आई किन्तु उस मित्र पर स्थानान्तरित होकर। स्वप्न-में वह बीमार थी। और वे उसकी सुश्रूषा कर रहे थे और उनका ध्यान उन समस्याओं और व्यावहारिक कठिनाइयों पर केन्द्रित था जिन पर हालमें दोनों मित्रोंमें बातें हुई थीं। वह पीड़ा जो कि वस्तुतः उनकी थी उस बीमारीका एक लक्षण बन गयी थी जिससे स्वप्नमें उनकी मित्र पीड़ित थी।

स्पष्ट है कि पीड़ाकी प्रतीति स्वप्नका एक अङ्ग थी, किन्तु वह एक ही अङ्ग थी, क्योंकि जिन विचारोंने स्वप्नद्रष्टाके मनको दिनमें तथा सोनेसे पहले घेर रखा था, उन्हींने स्वप्नको रूप दिया था और करीब-करीब उसकी सभी घटनाएँ उन्हींसे प्रसूत थीं। यहाँ पर शारीरिक सम्वेदन मनः प्रेरित स्वप्नके ढाँचे-में बुन लिया गया था। उसने स्वयं स्वप्नका रूप नहीं निर्धारित किया था। किन्तु जहाँ तात्कालिक महत्वकी निद्राबाधक प्रेरणाएँ उपस्थित होती हैं वहाँ स्वभावतः वे सञ्चित मानसिक प्रेरणाओं-से मैदान छीन लेती हैं और स्वयं स्वप्नकी प्रेरक बनकर उसके रूपको अपने अनुसार निर्धारित करती हैं। इस प्रकारके स्वप्नों' के उदाहरण हम पहले भी देख चुके हैं जबकि, खासकर बच-पनमें, वर्द्धमान शरीरकी आवश्यकताएँ अधिक महत्त्व रखती हैं और निरोध पैदा ही नहीं हुए होते। निरोधके अभाव, तीव्रता और अत्यन्त परिचय तथा अपने पूर्णरूपमें साक्षात् प्रतीतिके

कारण भूख-प्यास आदि शरीरके अन्दरकी प्रतीतियोंसे उत्पन्न स्वप्नोंका विषय और तात्पर्य प्रायः स्पष्ट होता है। ये प्रकृत आवश्यकताको बिना रूपपरिवर्त्तनके सीधे और स्पष्ट रूपमें व्यक्त करते हैं। निद्राकी प्रवृत्ति उन प्रतीतियों पर पर्दा डालनेकी थोड़ी बहुत चेष्टा अवश्य करती है। किन्तु वह भी इनके निवृत्त हो जानेका धोखा देकर ही। वह इनके स्वरूपको छिपा नहीं सकती। किन्तु शरीरके बाहरसे आनेवाले प्रकाश, शब्द, स्पर्शादि सम्वेदन अपने कारणके अंशमात्र होनेसे तुरन्त ही अपने कारणके स्वरूपको स्पष्ट नहीं करते। इस कमीको मन अपनी व्याख्या द्वारा पूरी करता है जिसमें भ्रमके लिए अधिक अवकाश रहता है। हम पहले भी देख चुके हैं कि स्वप्नमें किस प्रकार बाह्य सम्वेदनोंकी मात्रा और उनके कारणका स्वरूप उनके वास्तविक कारणसे बिल्कुल ही भिन्न हो जाता है। सोते समय एक छोटी-सी चीज जमीन पर गिरकर हल्की-सी आवाज करती है, किन्तु सुप्त मन उस आवाजके ठीक स्वरूपको नहीं पहचान पाता, बल्कि उसमें वह दूरकी तोपोंकी आवाजकी कल्पना कर सकता है। एक मक्खी खिड़कीके शीशे पर भिनभिनाती है और स्वप्नमें वह आवाज हवाई जहाजकी आवाजमें परिवर्तित हो जाती है और सुप्त चेतना तुरन्त इस प्रकार प्रस्तुत घटनाको ही केन्द्र मानकर उसके चारों ओर स्वप्नको विकसित करने लगती है। इन स्वप्नचित्रोंकी मूलकारणोंसे इतनी ही समानता होती है कि एक तो कि इनमें शब्दादि इन्द्रियविषयरूपसम्वेदन अपने अत्यन्त साधारण रूपको कायम रखते हैं अर्थात् शब्द शब्द ही बना रहता है और स्पर्श स्पर्श ही। ऐसा नहीं होता कि बाहरसे शब्द आये किन्तु स्वप्नमें शब्दके स्थानमें सर्वथा रूप ही दिखाई दे, शब्दकी प्रतीति ही न हो। दूसरे ये स्वप्नचित्र मूल-

सम्वेदनके विघ्नकारी स्वरूपको भी कायम रखते हैं। यानी इनका मन पर पड़ा हुआ प्रभाव दुःखात्मक और निवृत्तिप्रेरक ही होता है, अर्थात् इन स्वप्नचित्रोंमें जो शब्दादि आते हैं वे खतरेके ही सूचक होते हैं और इनके चारों ओर स्वप्न जिन घटनाओंको खड़ी करता है वे स्मृतियोंसे ही ली हुई होती हैं। इसी प्रकार शरीरके अन्दरसे आनेवाली प्रतीतियाँ भी ऐसी हो सकती हैं जो भूख-प्यासकी तरह अत्यन्त परिचित न हों, जिसके कारण उनका स्वरूप स्पष्ट न हो और वे व्याख्याकी गुञ्जाइश रखती हों। इनसे उद्भूत स्वप्नचित्रोंमें भी इनसे उतनी ही और वही समानताएँ रहती हैं जितनी उपर्युक्त बाह्य सम्वेदनजन्य स्वप्नचित्रोंमें उनके मूल सम्वेदनोंसे होती हैं। कभी-कभी तो जाग्रतिमें आन्तरिक सम्वेदनोंके बारेमें इस प्रकारके भ्रम देखे जाते हैं। काशी विद्यापीठकी कुमार पाठ-शालाके एक विद्यार्थीने, जिसकी उम्र लगभग बारह वर्षके होगी, एक बार अध्यापकोंको यह कह कर चकित और परीशान कर दिया था कि उसकी खोपड़ीके अन्दर उसके दिमागके दो टुकड़े हो गये हैं। बादको मालूम हुआ कि जुकाम होने पर कभी-कभी कुछ इसी तरहकी प्रतीति सिरमें होती है, किन्तु हमलोग इस चीजसे परिचित हो जाने पर उसे इस रूपमें महसूस नहीं करते। नयी बीमारियोंसे पीड़ित लोग अकसर अपनी प्रतीतियोंको विचित्र-विचित्र रूपोंमें चित्रित करते हैं। इसी प्रकारकी प्रतीतियाँ स्वप्नमें भी होती हैं और सुप्त चेतना पूर्व परिचित समान पदार्थों और घटनाओंके रूपमें उन्हें चित्रित करती है। भारतीय आयुर्वेदमें वर्णित रोग-भावि स्वप्नोंमें इस प्रकारकी प्रतीतियाँ भी भाग लेती हैं, जैसे—

लताकण्टकिनी यस्य दारुणाहृदि जायते ।
स्वप्ने गुल्मस्तमन्ताय क्रूरो विशति मानवम् ॥

इस श्लोकमें स्वप्नमें मनुष्यके हृदयमें घोर काँटे वाली लताके उत्पन्न होनेको गुल्म रोगका सूचक कहा गया है, इसका कारण समझना कठिन नहीं है। गुल्मरोगी अपनी आन्तरिक शिकायतका चित्रण आमतौरसे यह कहकर करते हैं कि पेटके निचले भागसे वादीका एक गोला-सा उठता है और वह कोंचता हुआ कलेजे तक जाकर छिटक जाता है। इन शब्दोंमें वे वातकी गतिके सन्निकर्षसे उत्पन्न आन्तरिक स्पर्शका चुभनेवाला स्वरूप और उसकी गतिकी दिशाका चित्रण करते हैं। किन्तु इन शब्दोंको यदि जरा और मूर्त रूप देना हो तो कँटीली लता या वृक्षके अत्यन्त परिचित रूपमें वे बड़ी अच्छी तरह बैठ जाते हैं। नीचेसे उठकर ऊपर जाकर फैल जाना तो लताकी स्थिति और विकासकी गतिका स्वरूप है ही और चुभना काँटेका स्वाभाविक गुण है। यह भी याद रखना चाहिए कि 'शूल' शब्द चुभनेवाले दर्दका भी द्योतक है और काँटेका भी। गुल्म रोगके लक्षणोंमें इस प्रकारकी पीड़ा 'शूल' शब्दसे ही वर्णित हैं। इस प्रकार गुल्मशूलकी प्रतीति के लिए कण्टकिनी लताका रूपक अत्यन्त स्वाभाविक है। दर्दका काँटेसे चित्रण तो जाग्रत् भाषामें भी बहुत प्रचलित है। इसके अतिरिक्त स्वप्नकी मूर्त्तिमत्ताका खयाल करने पर गुल्मशूलकी सारी स्थितिका कण्टकिनी लताके रूपमें चित्रित होना बिल्कुल स्वाभाविक प्रतीत होता है। साथ ही यदि इस बातका भी लिहाज़ रखा जाय कि वात जब नीचेसे चढ़ना शुरू करता है उस समय वह इतना कष्टकर नहीं होता जितना हृदय पर पहुँचकर, और हल्की प्रतीतियोंकी स्वप्न उपेक्षा करता

है, तो स्वप्नमें लताका हृदयमें स्थापित होना भी समझमें आ जाता है। इसके अतिरिक्त हल्की और आन्तरिक प्रतीतियों-का ठीक-ठीक स्थान निर्देश भी कठिन होता है। मनमें शरीर-की बाहरी त्वचाके भिन्न-भिन्न खण्डोंके स्पर्शके स्थाननिर्देश-की शक्तिकी विभिन्न मात्राएँ मनोवैज्ञानिकोंने निर्णीत की हैं। जैसे शरीरके कुछ भागों पर यदि एक खास फासले पर किसी परकारके दो विन्दुओंका स्पर्श कराया जाय तो वे दो जगह पर छूते मालूम न होंगे, बल्कि एक ही स्पर्शविन्दु मालूम होगा। दूसरी जगह उसी फासले पर रक्खे हुए दोनों विन्दु दो जगह पर मालूम होंगे। आँख बन्द करके यदि त्वचाके कुछ भागों पर स्पृष्ट पदार्थका स्थाननिर्देश करनेको कहा जाय, तो स्पृष्ट स्थानसे कुछ दूर पर लोग अँगुली रक्खेंगे। यह फासला चर्मके भिन्न भागों पर भिन्न-भिन्न होता है।

इसके अतिरिक्त बीमारियोंमें तथा प्रमादकी अवस्थामें स्थाननिर्देश करनेकी शक्ति सामान्यतः कम हो जाती है। मैंने एक सज्जनको विक्षिप्तावस्थामें पैरमें दर्दकी शिकायत करते सुना था। किन्तु पैर दबाने पर उन्हें आराम नहीं मिलता था, और दबानेवालेकी वे शिकायत करते थे। अन्तमें सर दबाने पर उन्होंने कहा कि 'हाँ अब ठीक दबा रहे हो'। यह तो आत्यन्तिक उदाहरण है। साधारण अवस्थामें कोई सिर और पैरका अविवेक न करेगा। किन्तु बताये हुए स्थानसे पीड़ाका स्थान कुछ दूर होना तो बहुत सामान्य है। हमलोग खुद ही कई जगह हाथसे दबाकर पीड़ा का स्थान निश्चित करते हैं। चिकि-त्सक भी ऐसा करते हैं और मालिश वगैरहमें दूसरे लोग जब ठीक जगह पर दबाते हैं तब हमें भी मालूम होता है कि वास्तव में दर्द कहाँ है, हालाँकि पहले हमने दूसरी जगह बताया था।

काँटा गड़ने पर भी ऐसा अनुभव होता है। कभी-कभी तो फैले हुए दर्दका हम ठीक केन्द्र बता ही नहीं सकते। आन्तरिक प्रतीतियोंके स्थाननिर्देशका हमें इतना अनुभव भी नहीं होता, न इसके उतने अवसर मिलते हैं, न उसे बाहरी त्वचाकी तरह ठीक स्थानपर छूकर जाँचा जा सकता है, न देखा जा सकता है। फिर निद्रामें तो ज्ञानवाहिनी नाड़ियोंके स्रोत बन्द रहते हैं। उस समय स्थाननिर्देशमें गलती होनेकी अधिक सम्भावना है। आयुर्वेदका ही सिद्धान्त है कि—

मनोवहानां पूर्णत्वा दोषै रतिबलैस्त्रिभिः।
स्रोतसां दारुणान्स्वप्नान्काले पश्यत्यदारुणान्॥

ऐसी स्थितिमें स्वप्नमें गुल्मसूचक लताका हृदयमें उत्पन्न होना तो कोई विशेष बात है ही नहीं। सिरमें वृक्षका उत्पन्न होना भी समझमें आ जाता है जैसा कि अन्यत्र कहा गया है—

गुल्मेषु स्थावरोत्पत्तिः कोष्ठे मूर्ध्नि
(शिरोरुजि)

फार्सटरके उपर्युक्त स्वप्नमें हम यह भी देखते हैं कि आन्तरिक पीड़ाका स्थान अपने शरीरसे बिल्कुल बाहर भी निर्दिष्ट हो सकता है। किन्तु ध्यान देनेकी बात है कि स्वप्नमें उस पीड़ाका स्वरूप भी कायम है और स्वप्नद्रष्टाका उससे दुःखद सम्बन्ध भी बना हुआ है, किन्तु साक्षात् अनुभवकी हुई शारीरिक पीड़ा सहानुभूतिजन्य मानसिक दुःखमें बदल गयी है जो कि एक वास्तविक मानसिक चिन्ताका अङ्ग है। किन्तु इस स्वप्नसे हम यह समझ सकते हैं कि स्वतन्त्र शारीरिक स्वप्नोंमें भी—जहाँ शारीरिक पीड़ा किसी मानसिक पीड़ाका अङ्ग बन कर स्वयं स्वप्नको

प्रेरित और उसके रूपको निर्धारित करती है—शरीरके अन्दर-के सम्वेदन एक बाह्य वस्तुका रूप ले सकते हैं। जैसे हमलोग अल्प परिचयके कारण कभी-कभी अपने पेटकी गड़गड़ाहट-को पासके किसी औरके पेटकी या और कोई बाहरी आवाज समझ बैठते हैं, उसी प्रकार निद्रावस्थामें उत्पन्न आँतोंका दर्द कभी-कभी स्वप्नमें सर्पका रूप ले लेता है, जो स्वप्नद्रष्टाके शरीरसे सर्वथा पृथक् होते हुए भी सर्पभयरूपी मानसिक पीड़ा-के रूपमें उसके लिए दुःखद होता है। सर्पका आकार कुण्ड-लाकार अँतड़ियोंमें वातके घूमनेसे उत्पन्न होता है, जिस प्रकार लताका आकार गुल्मवातकी विशिष्ट गतिसे पैदा होता है। किन्तु उसका स्थान शरीरके बाहर निर्दिष्ट होता है और शारीरिक पीड़ा फार्सटरके स्वप्नकी भाँति सर्पभयकी मानसिक पीड़ाके रूपमें स्वप्नद्रष्टासे सम्बद्ध होती है। वास्तव-में मानसिक और शारीरिक पीड़ामें मात्राका ही भेद है। जिसे हम मानसिक पीड़ा कहते हैं, वह भी हल्के शारीरिक विकार (सात्विकभाव, अनुभाव) उत्पन्न करती ही है। और निद्राकी प्रवृत्ति बाधकपीड़ाको कम करके दिखानेकी ही होती है। इसी प्रकार नाड़ी-संस्थानके लिए शरीरके अन्दर और बाहर-से आनेवाले सम्वेदन तत्त्वतः समान ही हैं। इनका ठीक निर्देश तो अन्य सहायक अनुभवों तथा पूर्व परिचयसे होता है और इनके अभावमें उनका विवेक नहीं हो सकता। और बाधक अनुभवके अभावमें एकके स्थानमें दूसरेका निर्देश सर्वथा स्वाभाविक है। फिर यहाँ भी निद्राकी प्रवृत्ति आन्तरिक पीड़ाको बाहर दिखा कर उसकी बाधक तीव्रताका मार्जन करना चाहती है। इसीलिए स्वप्नमें इस प्रकारका वेषपरिवर्त्तन दिखाई देता है। मेरे एक साथीका एक बारका

अनुभव है कि वे स्वप्नमें साँप देखकर डरकर जाग गये, और चिल्लाकर रजाईके नीचे एक लम्बी चीजकी प्रतीति करके उन्होंने बाँयें हाथसे उसे रजाईमें ही पकड़ रखा। अपने भाईको बुलाकर जब उन्होंने उसे बड़ी सावधानीसे रजाई उठा-कर देखा तो वह उनका दाहिना हाथ ही था, जिसे वह बाएँ हाथसे पकड़े हुए थे, और जो एक करवटसे सोनेके कारण दब कर सुन्न हो गया था जिससे उन्हें वह अपना अङ्ग नहीं प्रतीत हो रहा था, जैसा कि झुनझुनीकी दशामें खूनकी दौरान बन्द हो जानेसे सदा होता है। वास्तवमें उनके लम्बे हाथकी नसोंकी सनसनाहट और उसे दूर करनेकी जरूरतने ही स्वप्नमें सर्पका दुःखद रूप धारण किया था।

इस प्रकारके स्वप्नोंके अतिरिक्त जिनमें शारीरिक पीड़ा एक बाह्य वस्तुके रूपमें प्रकट होती है, आयुर्वेद शास्त्रमें वर्णित अन्य शारीरिकप्रेरणाजन्य रोगभावि स्वप्नोंमें कोई विशेषता नहीं है। वे भूख-प्यास आदिके स्वप्नोंके समान ही उन आन्तरिक शारी-रिक आवश्यकताओंकी पूर्तिकी काल्पनिक चेष्टा मात्र होते हैं जो कि तत्तत् रोगमें होती हैं। जिस रोगमें जिन बातोंकी इच्छा होती है उसी इच्छाका तथा उससे उत्पन्न करनेवाली स्थितियों-का चित्रण स्वप्नमें होता है। चाहे यह इच्छा उन वस्तुओं-की वास्तविक शारीरिक आवश्यकताके कारण या उन वस्तुओं-के परहेजके कारण उत्पन्न हुई हो। जैसे—

मेहातिसारिणां तोयपानं स्नेहस्यकुष्ठिनाम्।
(गुल्मेषु स्थावरोत्पत्तिः कोष्ठे मूर्ध्नि) शिरोरुजि॥
शष्कुली भक्षणंछर्द्यामध्वा श्वास पिपासयोः।
शष्कुली रप्यपूपान्वै स्वप्ने खादति यो नरः।
सचेत्ताहक्छर्दयति प्रति बुद्धो न जीवति॥

अर्थात् 'प्रमेह रोगवाले और अतिसारी स्वप्नमें जल पीते हैं, कुष्ठ होनेवाले तेल पीते हैं। मस्तक रोग और छर्दि-रोग होनेवाला मनुष्य चनेकी तिल मिली पूरी खाता है। और श्वास रोग तथा प्यास रोगवाला मार्ग चलता है'। कुछ स्वप्नोंमें उपर्युक्त दोनों प्रकारकी क्रियाओंका सम्मिश्रण होता है, जैसे—

नग्नस्याज्यावसिक्तस्य जुह्वतोऽग्नि मनर्चिषम्।
पद्मान्युरसि जायन्ते स्वप्ने कुष्ठैर्मरिष्यतः॥

अर्थात् 'कुष्ठ रोगी स्वप्नमें नग्न हो घृतको देहमें लगाता है और ज्वालारहित अग्निमें प्रवेश करता है' जो कि चमड़ेकी जलनका कम दुःखद बाह्य रूप है। 'तथा उसके हृदयमें कमल प्रकट होता है' जो कि चमड़ेके सफेद दागोंका बाह्य तथा सीमित और सुन्दर रूप है, किन्तु हृदयमें प्रकट होनेके कारण दुःखद भी है। अथवा—

स्नेहं बहुविधं स्वप्ने चांडालैः सह यः पिबन्।
बध्यते सप्रमेहेण स्पृश्यतेऽन्ताय मानवः॥

अर्थात् 'प्रमेहरोगी स्वप्नमें अनेक प्रकारके घृत तैलादि स्नेहका पान करता है' और 'चांडाल (भंगी, डोम आदि) का साथ' शरीरकी गन्दगी और घिनौनेपनका बाह्य रूप है। अथवा—

नृत्यं रक्षोगणैःसाकं यः स्वप्नेऽम्भसिसीदति।
सप्राप्य भृशमुन्मादं याति लोकमतः परम्॥
मत्तं नृत्यं तमाविध्य प्रेतो हरति यं नरम्।
स्वप्ने हरति तं मृत्युरपस्मार पुरस्सरः॥

अर्थात् उन्मादरोगी और अपस्मार रोगी स्वप्नमें राक्षसों-के साथ उन्मत्त होकर नाचते हैं। क्योंकि इन रोगोंमें असफल निरोधका बाँध टूट पड़नेके कारण जाग्रदवस्थामें भी निरुद्ध प्रवृत्तियाँ इतनी तीव्रतासे फूट पड़ती हैं कि बिना मौका-महल देखे वे चरितार्थ होने लगती हैं जो कि बेमौके होने और अपनी अनियन्त्रित मात्रा तथा व्यर्थ वेगके कारण विचित्रता और उन्मत्तताका रूप ले लेती हैं और इन रोगोंमें जाग्रदवस्थामें भी 'अकस्मात् अनेक प्रकारके भयानक दुष्ट स्वरूप और दुष्ट शब्द दिखाई और सुनाई पड़ते हैं', जो कि वस्तुतः जाग्रदवस्थाके स्वप्न ही हैं। वास्तवमें उन्मादमें जागृत् और स्वप्नका बहुत कम भेद होता है।

असत्तमं पश्यति यः शृणो त्यप्यसतः स्वरान्।
बहून्बहुविधा ञ्जाग्रत्सोऽपस्मारेण बध्यते ॥

यहाँ इस बात पर भी ध्यान देना चाहिये कि उन्मादमें जो प्रवृत्तियाँ चरितार्थ होती हैं वे शारीरिक भी होती हैं और मानसिक भो।

इसी प्रकार इस बातका भी ख्याल रखना चाहिये कि उपर्युक्त कुष्टरोगीके शरीरकी गन्दगी जिसका बाह्यचित्रण 'चाण्डालके साथ' के रूपमें हुआ है अथवा प्रमेह रोगीके शरीर-के सफेद दाग जिनका बाह्य चित्रण 'हृदयमें कमल प्रकट होने' से हुआ है, सुप्तावस्थामें उत्पन्न होनेवाली शारीरिक आवश्यक-ताओंकी प्रतीतियाँ नहीं हैं, बल्कि जाग्रदवस्थामें इन लक्षणों-के अनुभवकी मानसिक स्मृतियाँ मात्र हैं जो स्वप्नमें क्रमशः शरीरके चिपचिपेपन और चमड़ेकी जलनसे उद्बुद्ध होती हैं। अर्थात् स्वप्नकी मूल शारीरिक प्रेरणाएँ तो शरीरका चिपचिपापन और चमड़ेकी जलन हैं। शरीरकी गन्दगी और

सफेद दाग तो इनसे अनुबद्ध अन्य अप्रिय अनुभवोंकी सञ्चित स्मृतियाँ हैं जो स्वप्नकी मूलप्रेरणाओंको पुष्ट करती हैं और उनके चित्रणके लिए सामग्री प्रदान करती हैं। यही कारण है कि ये मूल प्रेरणाओंके साथ ही स्वप्नमें आ सकी हैं। इससे यह भी परिणाम निकलता है कि ये जागृदवस्थामें रोगके अनुभवके बाद ही स्वप्नमें आ सकती हैं अर्थात् भावी रोगकी पूर्वसूचना नहीं दे सकतीं। आयुर्वेदमें भी जहाँ इनका उल्लेख है, वहाँ स्वप्नको रोग होनेका सूचक नहीं, बल्कि रोगके अनिष्टकर परिणामका सूचक कहा गया है। और यही बात उन वस्तुओंके बारेमें भी लागू है जो परहेजके कारण स्वप्नमें आती है, क्योंकि बिना रोग हुए कोई परहेज नहीं करता। और ऐसा ही उन रोगभावि स्वप्नोंके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये जिनमें इस प्रकारकी (जागृदवस्थाकी) पूर्वसञ्चित (रोग) स्मृतियाँ ही प्रेरक होती हैं, न कि (सुप्तावस्थामें) वर्त्तमान (शारीरिक) प्रतीतियाँ। इस प्रकारके मानसिक चिन्ताजन्य रोगभावि स्वप्नोंमें कोई विशेष क्रिया नहीं होती। ये अन्य मानसिकप्रेरणाजन्य स्वप्नोंके समान ही होते हैं और इन्हींकी कार्यप्रणालीका पालन करते हैं। इन्हें रोगीकी स्थितिसे चिन्तित उसके सुहृद् भी देख सकते हैं—

स्वप्नानतः प्रवक्ष्यामि शुभायमरणाय च।
सुहृदो यांश्च पश्यन्ति व्याधितो वा स्वयंतथा॥

किन्तु यहाँ पर शारीरिक तथा मानसिक स्वप्नोंका भेद न होनेसे यह विवेक नहीं हो पाता है कि यह बात सब स्वप्नोंपर नहीं, बल्कि एक विशेष प्रकारके स्वप्नों पर ही लागू है।

जैसे—

हारिद्रं भोजनं वापि यस्यस्यात्पाण्डु रोगिणः ।
रक्त पित्ती पिवेग्रश्च शोणितं सविनश्यति ॥

किन्तु शारीरिक प्रेरणाजन्य रोगभावि स्वप्न भी क्या सचमुच भावी रोगोंकी पूर्व सूचना देते हैं ? अर्थात् क्या वे सचमुच रोगोंकी उत्पत्तिके पहले आते हैं ? ऐसा माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है। बिना रोग उत्पन्न हुए कोई वैद्यके पास नहीं जाता। हाँ, शुरु-शुरुमें रोगका रूप स्पष्ट नहीं होता, कुछ अव्यक्त-सी बेचैनी और आनेवाले रोगके कुछ लक्षण हल्के रूपमें प्रकट होते हैं, जिनसे कुशल वैद्य ही आनेवाले रोगकी पूर्व सूचना ले सकता है। रोगके ये पूर्व रूप इतने स्पष्ट नहीं होते कि साधारण वैद्य भी आसानीसे उतने अल्प लक्षणसे, जो अनेक रोगोंमें आते हैं, रोगका ठीक निर्णय करके ठीक इलाज कर सके। और मरीज तो प्रायः अपरिचय और हल्की प्रतीतिके कारण इन अल्प लक्षणोंको न केवल समझ ही नहीं पाते, बल्कि दिनके कार्यमें व्यस्त होनेके कारण इनकी उपेक्षा भी करते हैं । और वैद्यके पूछने पर इनका ठीक-ठीक वर्णन भी नहीं कर पाते। ऐसी अवस्थामें कुशल वैद्यको ऐसे स्वप्नोंसे बड़ी सहायता मिल सकती है जिनमें ये लक्षण मरीजकी चेतनाके सामने स्पष्ट रूपसे आनेका अवसर पाते हैं। और इन्हें रोगीके बताए हुए जाग्रदवस्थाके पूर्व रूपसे मिलाकर यदि कोई व्यावर्त्तक लक्षण मिल जाय, तो रोगका निर्णय होकर चिकित्सा ठीक दिशामें और शीघ्र फलदायी हो सकती है। अतः इन स्वप्नोंको भावी रोगोंका सूचक नहीं, बल्कि वर्त्तमान रोगोंका पूर्व रूप ही जानना चाहिये जो कि जागृदवस्था और स्वप्नावस्था—दोनोंमें एक साथ ही प्रकट होते हैं, किन्तु स्वप्नमें

पहले स्पष्ट होते हैं। इसीलिए ये स्वप्न आयुर्वेदमें जागृदवस्थाके पूर्व रूपोंके साथ ही वर्णित हैं और स्वयं भी रोगोंके पूर्व रूप ही कहे गये हैं, यद्यपि आयुर्वेदमें इन शुद्ध पूर्व रूपोंके साथही अन्य अनुभूति तथा स्मृतिजन्य स्वप्नोंके भी कहे जानेसे गड़बड़ी उत्पन्न हो गयी है।

एतानि पूर्व रूपाणि यः सम्यगवबुध्यते।
स एषामनुबन्धं च फलं च ज्ञातुमर्हति॥
इमांश्चावरान्स्वप्नान् दारुणानुपलक्षयेत्।
व्याधितानां विनाशाय क्लेशाय महतेऽपि वा॥

और इनके साथ ही जो बहुतसे स्वप्न रोगके स्पष्ट होनेके बाद शारीरिक पीड़ा[1] अथवा उसके अनुभव-से उद्भूत मानसिक चिन्ताओंसे प्रेरित होने वाले भी वर्णित हैं, उनके लिए तो भविष्य कथनका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इसीलिए ये भी रोगके नहीं, बल्कि रोग-के दुष्परिणामके ही सूचक हैं। परिणामके सम्बन्धमें भी कई सीमाओंका ध्यान रखना चाहिये। एक तो यह कि रोगसूचक स्वप्न सदा दुष्परिणामका ही चित्रण नहीं करते। शुभ परिणामी रोगसूचक स्वप्न भी होते हैं। दारुण (खोटे) और अदारुण (शुभ) दोनों प्रकारके स्वप्न बताये गये हैं। वस्तुतः स्वप्नदृष्ट परिणाम रोगके सम्बन्धमें रोगीकी मनोवृत्ति (आशा, निराशा) के ही सूचक होते हैं। वास्तविक जीवन पर उनका प्रभाव उस रूपमें वहीं तक पड़ सकता है, जहाँ तक रोगीकी मनोवृत्ति वास्तविक आधार पर स्थित होती है। इसके अति-रिक्त रोगीकी मनोवृत्ति भी अपने अनुरूप मानसिक तथा

---

१ शूलाटोपान्त्र कूटाश्वदौर्बल्यं चातिमात्रया।
नखादिषु च वैवर्ण्यं गुल्मेनांतकरो नरः॥

व्यावहारिक प्रयत्न और अप्रयत्न पैदा करके रोगीकी वास्तविक दशा पर असर डालती है और स्वप्नोंकी भाविकताका विश्वास इस मनोवृत्तिको और पुष्ट करता है। किन्तु रोगीकी मनोवृत्ति बदली जा सकती है, अन्यथा दुःस्वप्नकी शान्ति अर्थात् उसके फलसे बचनेके उपायोंके निर्देशका कोई अर्थ नहीं था।

> जपेच्चापि शुभान्मंत्रान्गायत्रीं त्रिपदां तथा।
> दृष्ट्वा च प्रथमे यामे सुप्याद्धयात्वा पुनः शुभम्॥
> जपेद्वान्य तमंदेवं ब्रह्मचारी समाहितः।
> नचाचक्षीत कस्मै चित् दृष्ट्वास्वप्नमशोभनम्॥
> देवतायतने चैव वसेद्रात्रि त्रयं तथा।
> विप्रांश्च पूजयेन्नित्यं दुःस्वप्नात्परिमुच्यते॥
> (सुश्रुत)

इन उपायोंके स्वरूप पर ध्यान देने पर यह भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनका उद्देश्य शारीरिक तथा मानसिक शक्तिका सञ्चय करके और प्रतीप वचन द्वारा उल्टी भावना (प्रतिपक्षभावनम्—पातञ्जल योगसूत्र) मनमें उत्पन्न करके स्वप्नजन्य निराशाको दूर करना, दूसरोंसे दुःस्वप्नको न कह कर वायुमण्डलको उसी मनोवृत्तिसे भावित होनेसे बचाना तथा श्रेष्ठोंकी सहायता प्राप्त करना ही है। रात्रिके प्रथम प्रहरमें स्वप्न देखने पर फिर शयन करनेके विधानका उद्देश्य स्वप्नको भुला देना ही है जिससे तज्जन्य मनोवृत्तिका वास्तविक जीवन पर कोई प्रभाव न पड़े। इसीलिए वाग्भटने उपर्युक्त कथनमें कहा है कि 'जिस स्वप्नको देखा उसकी विस्मृति हो जावे तो वह भी निष्फल है'। स्वप्नोंके सम्बन्धमें (खासकर उसकी भाविकताके विषयमें) समीचीन ज्ञानकी प्राप्तिसे भी मन पर

उसका कुप्रभाव नहीं पड़ने पाता अथवा पड़ा हुआ कुप्रभाव दूर होता है। इसीलिये स्वप्न-शास्त्रके पठनका प्रभाव भी दुःस्वप्नके फलका नाश बताया गया है।

एतत्पवित्रं परमं पुण्यदं पापनाशनम्।
यः पठेत् प्रातरुत्थायदुःस्वप्नं तस्य नश्यति॥

इसके अतिरिक्त अन्य अवस्थाओंमें, अर्थात् यदि रोगीकी आशा-निराशा सर्वथा निराधार हो अथवा स्वास्थ्य एवं रोगकी शक्ति उसकी कल्पनासे इतनी अधिक प्रबल हो कि उसकी मानसिक स्थितिका उसपर कोई निर्णायक प्रभाव न हो सके अथवा अन्य लोगोंके प्रयत्न और परामर्शसे रोगके सम्बन्धमें रोगीकी मनःस्थितिसे उल्टा व्यवहार (चिकित्सा, परिचर्या आदि) किया जाय या परिस्थिति ही उसके प्रतिकूल हो और अनुकूल साधन न मिलें तो स्वप्न-दृष्टपरिणामसे उल्टा परिणाम भी वास्तविक जीवनमें हो सकता है। और ऐसी स्थितिमें स्वप्न परिणामकी सूचनाकी दृष्टिसे बिल्कुल विफल कहा जायगा। इसीलिये दारुण और अदारुण स्वप्नोंके विभाजनके बाद ही उनमें सफल और निष्फल स्वप्नोंका भेद भी किया गया है।

नाति प्रसुप्तः पुरुषः सफलानफलानपि।
इन्द्रियेशेन मनसा स्वप्नान्पश्यत्यनेकधा॥

तथा—

दृष्टः श्रुतोऽनुभूतश्च प्रार्थितः कल्पितस्तथा।
भाविको दोषजश्चैव स्वप्नः सप्त विधो मतः।
तत्र पञ्च विधं पूर्वमफलं भिषगादिशेत्।

इस तरह सात प्रकारके स्वप्न बताकर प्रथम पाँचको निष्फल बताया है। फिर वाग्भट लिखते हैं कि "प्रकृति-

सम्बन्धी स्वप्न अर्थात् जैसी दोषकी प्रकृति हो उसी प्रकारका स्वप्न देखा हुआ भी निष्फल हो। जैसे वातप्रकृति वाला वातप्रकृतिके अनुरूप स्वप्न देखे, पित्त प्रकृतिवाला पित्तप्रकृतिके और कफ प्रकृतिवाला कफप्रकृतिके एवं द्वन्द्वज और त्रिदोषज जो द्वन्द्वज और त्रिदोषज प्रकृतिके अनुरूप स्वप्न देखे तो निष्फल है और जिस स्वप्नको देखा उसकी विस्मृति हो जाय वह भी निष्फल है, शेष समान है"।

तेष्वाद्या निष्फलाः पञ्च यथा स्वप्रकृतिर्दिवा।
विस्मृतो दीर्घ स्वप्नोति पूर्वरात्रे चिरात्फलम्॥
दृष्टः करोति तुच्छं च गोसर्गे तदहर्महत्।
निद्रया चानु पहतः प्रतीपैर्वचनैस्तथा॥

और भी—

यथास्वं प्रकृति स्वप्नो विस्मृतो विहतश्चयः।
चिन्ता कृतो दिवा दृष्टो भवन्त्य फलदा स्तुते॥
आयुस्तृतीय भागे शेषे पतितः प्रकीर्तितः स्वप्नः।
अतिहास शोक कोपोत्साह जुगुप्सा भयाद्गुणोत्पन्नः॥
वितथः क्षुधापिपासा मूत्र पुरीषोद्भवः स्वप्नः॥

(पराशरसंहिता)

इन सातों प्रकारके स्वप्नोंमेंसे प्रथम पाँचका समावेश तो जाग्रदवस्थामें रोगादिकके दृष्टिश्रुति सम्बन्धी वास्तविक अनुभवों—जैसे कुष्ठमें दाग देखना तथा अपस्मारमें दुष्ट शब्दोंको सुनना आदि—तथा इच्छाओं और कल्पनाओं (आशा-निराशा आदि जो भी जाग्रदवस्थाकी मानसिक अनुभूतियाँ ही हैं) की स्मृतिसे प्रेरित स्वप्नोंमें हो जाता है और सातवें विभाग—दोषज—का समावेश उन स्वप्नोंमें हो जाता है जो सुप्तावस्थामें वर्तमान शारीरिक प्रतीतियोंसे प्रेरित होते हैं।

और जिन्हें हम रोगके शुद्ध पूर्वरूपोंमें गिना आये हैं। यही स्वप्नोंके छठे भेद—भाविक—में आ सकते हैं अर्थात् इन्हींके सम्बन्धमें भावी रोगोंकी पूर्व सूचनाका सन्देह हो सकता है। किन्तु जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं ये भी तत्त्वतः उतने ही भाविक हैं जितने कि अन्य प्रकारके स्वप्न। इनके परिणामसूचनके सम्बन्धकी एक और सीमा है। एकाध बार ही ऐसे अल्पलक्षणोंके जाग्रत् या स्वप्नमें उदय होनेसे ही आवश्यक रूपसे किसी रोगके होनेका निश्चय नहीं किया जा सकता। एकाध बार पेटमें दर्द होनेसे यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि कोई खास रोग होनेवाला है। यह दर्द अस्थायी कारणोंसे हो सकता है। उस हालतमें उसका कोई विशेष प्रभाव आगे नहीं पड़ता। वह वहीं तक रह जाता है। ऐसे स्वप्नोंके बार-बार आने पर, जैसा कि ऊपर कहा गया है, उन्हें जाग्रत्के लक्षणोंके साथ मिलाकर ही उनके रोगभावि होनेका अनुमान किया जा सकता है।

प्रश्न यह होता है कि फिर भाविक स्वप्न कौनसे हैं? और ऊपर उद्धृत भाविक स्वप्नोंमें जो सभी पूर्वोक्त छः प्रकारके स्वप्नोंमें समाविष्ट हो जाते हैं, फलाफलका विचार क्यों किया गया है और उन्हें रोगभावि स्वप्न क्यों कहा गया है? वास्तवमें भाविक स्वप्नोंका कोई अलग विभाग नहीं होता। जैसा कि ऊपर दिखाया गया है, पूर्वोक्त अन्य सभी स्वप्न कुछ सीमाओंके साथ भाविक होते हैं। इसलिए 'भाविक' की व्याख्यामें यही कहा गया है कि 'जो दृष्ट और श्रुतसे विलक्षण देखे और उसको उसका वैसा ही फल हो उसको भाविक जानना।' यह तो हम देख ही चुके हैं कि स्वप्नमें सभी अनुभूत वस्तुएँ अपने मूलरूपमें नहीं आतीं। उनमेंसे कुछ वस्तुएँ अपरिचय, निद्रा तथा इच्छापूर्त्तिकी

प्रवृत्तिके प्रभावसे तदनुसार परिवर्तित वेष और विकृत रूपमें आती हैं। स्वप्नका यही भाग परिणामदर्शी होता है जिसमें अनुभूत इच्छाओंकी काल्पनिक पूर्त्ति करनेकी सफल या विफल चेष्टा होती है। इसलिए स्वप्नोंके इस अंशया मुख्यतः ऐसे स्वप्नों-को ही भाविक कहा जा सकता है, जिनमें यह अंश प्रधान होता है। अर्थात् जिनमें अपरिचय तथा प्रतीकोंके आधिक्यके कारण विकृत स्वप्नचित्रोंमें पूर्वानुभूत तथा वर्तमान प्रतीतियोंको पह-चानना कठिन होता है।

भाविकताके प्रसंगमें एक और सिद्धान्त पर विचार कर लेना आवश्यक है जिसके अनुसार स्वप्नोंके फलकी मात्रा तथा उनके फलित होनेके समयका निर्धारण रात्रिके प्रहरोंके क्रमसे होता है।

स्वप्नस्तु प्रथमे यामे संवत्सरविपाकिकः।
द्वितीये चाष्टभिर्मासैस्त्रिभिर्मासैस्तृतीयको॥
चतुर्थं यामे यः स्वप्नो मासेन फलदः स्मृतः।
अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलं भवेत्॥
गोविसर्जनवेलायां सद्य एवफलं भवेत्।

(पराशर संहिता)।

टीकामें इतना और जोड़ा गया हैः—'परन्तु जो मनुष्य जिस समय जागता है उसको उसी समयका देखा हुआ फल देता है।' इससे यह प्रतीत होता है कि रात्रिके प्रहरोंका जो निश्चित निर्देश कर दिया गया है वह तो साधारण बोधके लिए एक सरल, सुबोध और निश्चत नियम उपस्थित करनेकी चेष्टा मात्र है, वास्तवमें रात्रिके प्रहरोंसे तात्पर्य निद्राकी मंजिलोंका ही है। जो जब सोये उसके लिए वही रात्रिका आरम्भ है और

जब जागे वही रात्रिका अन्त। इसी प्रकार स्वप्नोंके फलित होनेके समयके विषयमें भी समझना चाहिये। महीनों और दिनोंकी निश्चित संख्या सारल्यके निमित्त ही है। वस्तुतः इनसे फलप्राप्तिकी दीर्घ अथवा अल्प अवधिका क्रम ही सूचित होता है। इसीलिए अन्यत्र इसी बातको इतनी तफसील निकाल कर संक्षेपमें ही दूसरे प्रकारसे यों कहा गया है कि प्रथम रात्रि-का स्वप्न अल्प फलदायी होता है और जिस स्वप्नको देखकर फिर न सोये वह शीघ्र महाफल देता है।

दृष्टः प्रथमरात्रे यः स्वप्नः सोऽल्पफलो भवेत्।
नस्वप्याद्यं पुनर्दृष्ट्वा सद्यः स्यान्महाफलः॥

यहाँ रात्रिके प्रहरोंकी तफसीलका उसके आदि और अन्त-में ही संक्षेपकर दिया गया है। और फलप्राप्तिकी भिन्न-भिन्न निश्चित अवधिके स्थानमें शीघ्र तथा विलम्बसे फलप्राप्तिका ही उल्लेख है (साथ ही विलम्ब और शीघ्रताके साथ क्रमशः फलकी अल्पता और महत्ताका भी उल्लेख है। अब इस बात को समझनेके लिए कि रात्रि अर्थात् निद्राके आदि और अन्तके स्वप्नोंमें फलप्राप्तिकी अवधि तथा उसके परिमाणका भेद बतानेमें क्या हेतु हो सकता है, इस सूत्रका आश्रय लेना ही स्वाभाविक है कि निद्राके आदि और उसके अन्तमें निद्रा-के स्वरूपमें क्या भेद होता है। यह तो प्रसिद्ध ही है कि शुरूमें नींद गहरी होती है और बादको हल्की। इसी आधार पर यह कहावत प्रचलित है कि आधी रातके पहलेकी नींदका एक घंटा आधी रातके बादकी नींदके दो घन्टेके बराबर है। तो फिर नींदकी गहराईकी मात्रासे ही स्वप्नकी भावि-कताके परिमाण को समझना होगा। यह तो हम देख ही

चुके हैं कि स्वप्न अपने आदिम रूपमें निद्रा और जाग्रति-की प्रवृत्तियोंका द्वंद्व है। यह भी देखा जा चुका है कि निग्रह शक्ति निद्राकी पोषक और उसी दिशामें काम करने वाली है। अर्थात् दोनों ही जगाने वाली वासनाओंको दबानेका ही काम करती हैं। स्वप्न तथा जाग्रतिकी विचारशैली-में जो भेद है वह इन्हींके कारण होता है। फिर तो यह स्पष्ट ही है कि नींदकी गहराई जितनी कम होगी, स्वप्नकी विचारशैली जाग्रत् विचारशैलीके उतनी ही करीब होगी। यानी उसमें बाल्य-कालीनताकी ओर ह्रास, रूपपरिवर्तन और इच्छापूर्ति तथा तज्जनित सत्यासत्यके अविवेकका अंश उतना ही कम होगा, उसके अनुमान उतने ही अधिक साधार और विचार उतने ही अधिक सहेतुक और तर्कसम्मत होंगे। ऐसी स्थितिमें जाग्रति-के करीबके स्वप्नोंमें निद्राके आरम्भके स्वप्नोंकी अपेक्षा जीवनकी समस्याओंकी स्थिति और उनकी भावी संभावनाओंका ग्रहण ज्यादा ठीक होना स्वाभाविक ही है। स्वप्नोंके अल्पफलदायी और महाफलदायी होनेका यही तात्पर्य हो सकता है। क्योंकि सही अन्दाज़ा अधिक तफ़सीलोंमें सही होता है। इसीलिए भाविक स्वप्न देखनेका उपाय बताते हुए भी यही कहा गया है कि 'रात्रिके अन्तमें जैसा कुछ शुभाशुभ भवितव्यहो वैसा स्वप्न दीखे।'

एक वस्त्र कुशास्तीर्ण सुप्तः प्रयतमानसः।
निशान्ते पश्यति स्वप्नं शुभं वायदि वाशुभम ॥

(पराशर संहिता)

अवधिकी बात जरा दूसरी है। यहाँ निद्राकी मात्रा नहीं, बल्कि आवेगकी मात्रा कारण होती है। जहाँ निद्राकी

कमीके कारण नहीं, बल्कि आवेगकी तीव्रताके कारण जाग्रति उत्पन्न होती है, वहाँ दमित आवेगकी दुर्निवारता लक्षित होती है जिससे जीवनमें उसके शीघ्रही कार्यान्वित होनेकी संभावना अधिक रहती है। और जहाँपर दमन और निद्रा आवेगको दबानेमें सफल हो जाते हैं, वहाँ उसकी कमजोरी और दमनकी सफलता लक्षित होती है। ऐसी स्थितिमें व्यावहारिक जीवनमें उसके शीघ्र चरितार्थ होनेकी संभावना कम होती है, पीछे अन्य स्रोतोंसे पुष्टि पाकर वह भलेही कभी फिर सिर उठाये। इसी आधार पर वृद्धावस्थाके स्वप्नों तथा अतिह्रस्व और अतिदीर्घ स्वप्नोंकी निष्फलताका सिद्धान्त भी समझा जासकता है, क्योंकि शारीरिक क्षीणताके साथ आवेगकी वह प्रबलता नहीं रहती जो अपनेको कार्यान्वित कर सके। अतिह्रस्व और अतिदीर्घ स्वप्न आवेगकी कमजोरी जाहिर करते हैं। क्योंकि अतिह्रस्व स्वप्नसे यह लक्षित होता है कि आवेगको बहुत जल्द और आसानीसे निग्रह और निद्राने दबा दिया तथा अतिदीर्घ स्वप्नसे यह सङ्केत मिलता है कि आवेग इतना कम है कि पर्याप्त अवकाश पाकर बहुत देर और प्रयाससे भी आवेग निद्राको भंग नहीं कर सका। दोनों हालतोंमें परिणाम यही निकलता है कि आवेग तीव्र नहीं है।

आयुस्तृतीये भागेशेषे पतितः प्रकीर्तितः स्वप्नः।
वितथः क्षुधा पिपासामूत्र पुरी षोद्भवः स्वप्नः॥

(पराशर संहिता)

और

तत्रपंचविधं पूर्वमफलं भिषगादिशेत्।
दिवास्वप्नमतिह्रस्वं मतिदीर्घं च बुद्धिमान्॥

अब केवल दिवास्वप्न पर यह विचार करना बाकी रहा कि इन्हें भाविक स्वप्नोंकी कोटिसे क्यों बहिष्कृत किया गया है। ऊपर हम दिखा आये हैं कि मानसिक दृष्टिसे रात्रिका अर्थ निद्राकाल ही होता है। उसी दृष्टिसे दिवास्वप्नसे तात्पर्य उन मनोराज्यों या हवाई किलोंसे है जो हम जाग्रदवस्थामें ही बोधपूर्वक बनाया करते हैं। इनका स्वप्न नाम पड़नेका कारण निद्राकालीन स्वप्नोंसे इनकी मानसिक दृष्टिसे समता ही है। हम दोनोंको 'काल्पनिक इच्छापूर्ति' कह सकते हैं। किन्तु इन दिवास्वप्नोंमें इच्छा पूर्तिकी क्रिया बिल्कुल स्पष्ट रहती है। जैसा कि हम देख चुके हैं, रात्रिस्वप्न भी सदा इच्छापूरक होते हैं, यह बात आपाततः तो असम्भव मालूम होती है। स्वप्नद्रष्टाको अपने पचास प्रतिशत स्वप्न तो स्पष्ट रूपसे दुःखद मालूम होते हैं। इनके अतिरिक्त और बहुतसे यद्यपि सक्रिय रूपसे दुःखद तो नहीं होते किन्तु प्रत्यक्ष रूपसे किसी ऐसे पदार्थको उपस्थित नहीं करते जो किसी स्वस्थचित्त व्यक्तिकी इच्छाका विषय समझा जा सके। फिर भी, जैसा कि हम देखही चुके हैं, रात्रिस्वप्न और दिवास्वप्नकी इस प्रत्यक्ष असमानताका कारण यह नहीं है कि रात्रिस्वप्नोंमें इच्छापूर्तिका सिद्धान्त किसी प्रकारसे बाधित हो जाता है, बल्कि यह है कि दृष्टवस्तुको उपस्थित करनेका तरीका दोनोंमें भिन्न-भिन्न है। दिवास्वप्नमें यह काम सीधे तरीके पर होता है और दृष्टवस्तु या घटना इस तरहसे वास्तविक और वर्त्तमान रूपमें चित्रित होती है कि उसमें कोई सन्दिग्धता, श्लिष्टता या अस्पष्टता नहीं होती। इसके विपरीत रात्रिस्वप्नमें यह काम टेढ़े तरीकेसे इशारों, गूढ़ोक्तियों, अस्पष्ट रूपकों और प्रतीकों द्वारा होता है जिनके ही कारण स्वप्न निरर्थक और हास्यास्पद जान पड़ता है और जिनका

गूढ़ार्थ करके ही हम स्वप्नके तात्पर्य तक पहुँच सकते हैं और यह जान सकते हैं कि वह किस इच्छाकी पूर्ति करता है। इसप्रकार रात्रिस्वप्नका अर्थ उसके व्यक्त रूपमें नहीं पाया जाता, किन्तु दिवास्वप्नके प्रत्यक्ष रूपको ही प्रामाणिक माना जा सकता है।

दिवास्वप्न और रात्रिस्वप्नके इस भेदको समझ लेनेके पश्चात् हम आसानीसे यह समझ सकते हैं कि दिवास्वप्नको क्यों निष्फल कहा गया है। दिवास्वप्न प्रत्यक्षरूपसे इच्छापूर्तिका अर्थात् 'प्रार्थित' स्वप्न है। और प्रार्थित स्वप्न, स्वप्नके पूर्वोक्त सात प्रकारोंमें से उन प्रथम पाँच में है जिन्हें पहले ही निष्फल कहा जा चुका है। क्योंकि इनका समावेश तो वास्तविक अनुभवों तथा इच्छाओं और कल्पनाओंकी स्मृतिसे प्रेरित स्वप्नोंमें हो जाता है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि ये किसी विशेष अर्थमें भविष्यकी सूचना देते हैं। इनकी प्रेरणा तो स्पष्ट रूपसे वास्तविक अनुभवों और इच्छाओंमें दिखाई देती है, अर्थात् यदि हम किसी बातको यादकर सकते हैं या किसी बातकी इच्छाकर सकते हैं और उसे भविष्यवाणी नहीं कह सकते तो इस प्रकारके स्वप्नोंको भी भाविक नहीं कह सकते, क्योंकि उनकी शैली साधारण स्मृति या इच्छाकी शैलीसे कोई विशेषता नहीं रखती। हम यह भी देख चुके हैं कि ऐसे स्वप्नोंको ही भाविक कहा गया है जिनमें अपरिचय तथा प्रतीकों के आधिक्यके कारण विकृत स्वप्नचित्रोंमें पूर्वानुभूत तथा वर्त्तमान प्रतीतियोंको पहचानना कठिन होता है। यही कारण है कि रात्रिस्वप्न ही अपने वेष परिवर्तनके कारण भाविक कहे जा सकते हैं। दिवास्वप्नमें यह आवरण नहीं होता। इसलिए वह भाविक नहीं समझा जा सकता।

किन्तु ये सब बातें उन व्यक्त दिवास्वप्नोंके लिए ही कही गयी हैं जिनकी कल्पना बोधपूर्वक की जाती है, क्योंकि इन्हीं-का हमें अनुभव होता है। मनोवैज्ञानिकोंने ऐसे अव्यक्त दिवा-स्वप्नोंका भी अन्वेषण किया है जिनकी कल्पना अबोध-पूर्वक की जाती है और जो अपने विषय और मनकी दमित सामग्रीसे प्रसूत होनेके कारण अव्यक्तही रह जाते हैं। किन्तु स्वभावतः ही इनका अनुभव हमें नहीं होता।

ग्रन्थ-सूची

क्षितिमोहन सेन	भारतवर्षमें·जातिभेद
गिरीन्द्रशेखर वसु	स्वप्न (बंगला)
चरक	चरक संहिता, इन्द्रिय स्थान (अध्याय १२)
	चिकित्सा स्थान (अध्याय ५, ६, ७, ८, १०, १४, १५, २०, २१, २६, २४, २६ तथा २९)
रामचन्द्र विनायक कुलकर्णी	स्वप्न-मीमांसा (मराठी)
	श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय कृत 'स्वप्न-विज्ञान' नामक हिन्दी अनुवाद
व्यास	अध्याय २४२ (स्वप्नाध्याय)
	अध्याय ४३ (अरिष्ट कथन)
सम्पूर्णानन्द	चिद्विलास
सुश्रुत	सुश्रुत संहिता, प्रथम भाग तथा उत्तर तंत्र
हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी साहित्यकी·भूमिका
Adler, Alfred	Problems of Nuroses
	Individual Psychology
Aristotle	Concerning Dreams & their Interpretatims
Arnold–Forster, Mary	Studies in Dreams.
Baudouin, Charles	Studies in Psycho-analysis
Bhagavan Das	Science of the Emotions
Brill, A. A.	Fundamental Conceptions of Psycho-analysis
Freud, Sigmund	The Interpretation of Dreams
	Introductory Lectures on Psycho-analysis
	New Introductory Lectures on Psycho-analysis
Frink, H. W.	Morbid Fears & compulsions
Hoop, J. H. Van der	Character & the Unconscious
Jones, Earnest	Papers on Psycho-analysis
Jung, C. G.	Psychology of the Unconscious
Rivers, W. H. R.	Conflict & Dream

पर्याय-सूची

अचेतन	Unconscious
अतिनिर्देश	Over-determination
अध्यास	Introjection
अनुबन्ध	Associations
अनुयोजना	Secondary Elaboration
अव्यक्त	Unconscious
अव्यक्त सामग्री (स्वप्नकी)	Latent Content of Dreams
आत्मपीड़नरति	Masochism
आत्मरति	Narcissism
आरोप	Projection
आवेग	Affect
आश्वासनका स्वप्न	Reassurance Dreams
इच्छा	Wish
इतरजातीय रति	Heterosexuality
उत्तम स्व	Ego
उन्नयन	Sublimation
उपचेतन	Pre-conscious
उपव्यक्त	Fore-conscious
कामक्षेत्र	Erogenous Zone
कामज	Erotic
कामशक्ति	Libido
कल्पना	Phantasy
ग्रन्थि	Complex

चेतना	Consciousness
तर्काभास	Rationalisation
दमन	Repression
दर्शनकाम	Voyeurism
दृश्यात्मक वृत्ति	Visual Imagery
नाटकीयता, नाटकीय वृत्ति	Dramatization
निग्रह, निरोध	Repression
निद्राचार	Somnambulism
प्रतिरोध	Resistance
प्रतीक	Symbol, Symbolism
प्रत्यावर्त्तन	Regression
प्रदर्शनकाम	Exhibitionism
पुनरावर्त्तक स्वप्न	Recurrent Dreams
परपीड़नरति	Sadism
प्रहरी	Censorship
भयानक स्वप्न	Anxiety Dreams
भाविक स्वप्न	Prophetic Dreams
मर्षण काम	Masochism
मानस आघात	Trauma
रोगलक्षण	Symptom
व्यक्त चित्त	Consciousness
व्यक्त सामग्री (स्वप्नकी)	Manifest content
व्याख्या	Interpretation
विनियोग	Transference, Displacement
विरोध	Resistance
विश्लेषण	Analysis
शारीरिक	Somatic
शारीरिक संवेदन	Bodily Sensations

संक्षेपण,!सम्मिश्रण	Condensation
सादनकाम	Sadism
स्मृत्युद्बोधन प्रणाली	Free-association
स्वजातीय रति	Homosexuality
स्वप्न	Dream
स्वप्नकी कार्यप्रणाली	Dream-work
स्वप्न की प्रेरक, उत्तेजक	Stimulus of Dreams
ह्रास	Regression

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
ग	२२	कौ	को
ङ	२२	विचारा	विचारों
च	१०	हैं	थीं
छ	१२	काय	कार्य
ज	७	है	था
ज	९	है	था
ज	१६	जाती	जाती थी
ज	१७	की जाती है	कर दी जाती थी
ज	२०	हैं	थे
ट	८	आकपक	आकर्षक
ठ	६	'इच्छा'	'इच्छा' शब्द
२	२४	नींद आने	नींद न आने
८	२	जाती	जाता
८	२५	पर	पर यहाँ
१०	१३	हैं	है
११	४७	कवि	कलाकार
११	२४	फरशी	फरसी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	२६	पीकदानी	पीकदान
१२	४	खड़े	खड़े
१२	१७	जागने	जगाने
१३	१६	जागृति	जाग्रति
१४	१	रुपिणी	रूपिणी
१४	७	रुप	रूप
१४	२५	रिवर्स	(रिवर्स)
१५	१६	इसी	इस
१८	१	प्रेरणा	प्रेरणा का
२२	१९	होगा	हुआ होगा
२३	८	प्रकृति	प्रवृत्ति
२३	२३	अर्ध	अर्द्ध
२४	११	अर्ध	अर्द्ध
२८	४	अर्ध	अर्द्ध
३५	१	पृथक्	पृथक् पृथक्
३८	१९	साझीदार	साझेदार
३९	६	प्रतिद्वन्दी	प्रतिद्वन्द्वी
३९	१५	वदहोश होकर खेल की समाप्ति पर	खेलकी समाप्ति पर वदहोश होकर
४१	२०	तात्पय	तात्पर्य

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४२	६	प्रतिद्वन्दी	प्रतिद्वन्द्वी
४२	११	,,	,,
४४	७	बोध पूर्वक	अबोध पूर्वक
४८	१०	का आधार हो	के आधार हों
५०	फुट नाट १	की	के
५१	१८	अमुक अमुक	अमुक
५२	१७	प्रकट न हो	अप्रकट हो
५२	२३	इसके अतिरिक्त यह	यह
५८	६	प्रवृत्ति	प्रवृत्त
५८	१७	होता है	होगा
५९	९	उदबुध	उद्बुद्ध
५९	२०	मनोवज्ञानिक	मनोवैज्ञानिक
६०	१५	भय	मय
६१	४	अवस्थामें	अवस्थामें भी
६१	१५	अवान्त	अवान्तर
६१	१९	जाति	मानव जाति
२१७	व्यास	अध्याय २४२	व्यास मार्कण्डेय पुराण अध्याय २४२
२१७		अध्याय ४३	व्यास मत्स्य पुराण अध्याय ४३

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
२१८	—Reassurance Dreams	Reassurance Dream
२१८	उत्तम स्व Ego	उत्तम स्व Super–Ego
२१८	Pre-conscious	Fore-conscious
२१८	Fore-conscious	Pre-conscious
२२०	स्वप्नकी प्रेरक	स्वप्नके प्रेरक

हमारे अन्य प्रकाशन

१ हिन्दी-शब्द-संग्रह (चतुर्थ संस्करण), सम्पादक—श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव तथा श्री राजवल्लभ सहाय ८)

२ अफलातूनकी सामाजिक व्यवस्था, लेखक—श्री गोपाल दामोदर तामस्कर १।=)

३ अंग्रेज जातिका इतिहास (द्वितीय संस्करण) लेखक—श्री गङ्गाप्रसाद २॥)

४ पश्चिमी यूरोप २।)

५ ग्रीस और रोमके महापुरुष ३।।।)

६ हिन्दू भारतका उत्कर्ष, लेखक-श्रीचिन्तामणि विनायक वैद्य ३॥)

७ मीरकासिम, लेखक—श्री हरिहरनाथ शास्त्री १।।।)

८ इब्नबतूताकी भारतयात्रा, लेखक—श्री मदन गोपाल २)

९ जापान रहस्य, लेखक—श्री चमनलाल १॥)

१० समाजवाद, लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द (पञ्चम आवृत्ति) ३)

११ साम्राज्यवाद, लेखक—श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव २॥)

१२ संसारकी समाजक्रान्ति, मूल लेखक—डा० गजानन खेर १॥)

१३ ट्राटस्कीकी जीवनी, अनुवादक—श्री रामदास गौड़ तथा श्री राजवल्लभ सहाय १॥=)

१४ राष्ट्रीय शिक्षाका इतिहास, लेखक —श्री कन्हैयालाल शास्त्री २)

१५ भारतका सरकारी ऋण १=)

१६ सौन्दर्यविज्ञान, लेखक—श्री हरिवंश सिंह शास्त्री ।।।)

१७ अभिधर्मकोष, सम्पादक—श्री राहुल सांकृत्यायन ५)

१८ मनुपादानुक्रमणी, सम्पादक—डा० भगवान्दास तथा श्री राजाराम शास्त्री ।।।)

१९ योगकोष, सम्पादक—डा० भगवान्दास २॥)

२० गणेश, लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द २॥)

२१ योग-प्रवाह, लेखक—स्व० डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ३॥)

२२ मानव धर्मसारः, लेखक—डा० भगवान्दास ३)

२३ मानवार्ष भाष्य, लेखक—श्री इन्दिरारमण शास्त्री ३॥)

२४ अभिनन्दन-ग्रन्थ १५)

श्री काशी विद्यापीठ, प्रकाशन विभाग,

बनारस छाउनी ।